राजधानी प्रकाशन की द्वितीय किरण

पुजारी

लेखक

श्रीराम शर्मा 'राम'

सम्पादक

यज्ञदत्त एम० ए०

प्रकाशक
रघुनाथ सिंह
राजधानी प्रकाशन,
मालीवाड़ा, नई सड़क, देहली

मूल्य पाँच रुपया

मुद्रक
रामचन्द्र 'भारती' बी.ए.एल.टी.
सरस्वती प्रेस,
नई सड़क, देहली।

भूमिका

कभी कभी किसी व्यक्ति और उसकी रचनाओं के प्रति बिना पढ़े ही कहे-सुने ज्ञान के आधार पर जो गलत धारणा बन जाती है उसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे 'पुजारी' उपन्यास का सम्पादन करने में हुआ। सच यह है कि मैं श्रीराम शर्मा 'राम' जी की रचनाओं को किसी विशेष महत्वपूर्ण दृष्टि से नहीं देखता था परन्तु आखिर वहाँ एक लम्बे काल से हिन्दी गल्प-साहित्य की सेवा करते आ रहे हैं, यह सत्य है और कठोर सत्य, इसे भुलाना मेरे लिये असम्भव था।

मैंने रचना लेकर पढ़ी और प्रारम्भ करते ही मैं उसके तत्वों में इतना खो गया कि समाप्त किये बिना उसे एक ओर रखना मेरे लिये असम्भव हो गया। उपन्यास पुराना लिखा हुआ है, सम्भवतः उस काल का जब कि शरत् बाबू के साहित्य ने हिन्दी पाठकों के मस्तिष्क पर अपना साम्राज्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी लेखन-शैली का आभास इस रचना में है, वही भावुकता, वही टीस, वही कसक, वही करुणा और वही नारी का प्राधान्य देकर पाठक के भावना जगत में पैठ।

उपन्यास का प्रधान पात्र पुजारी और उसकी आराध्य-देवि रेणु है। पुजारी दीन दलित जनता का प्रतिनिधि है और रेणु एक बड़े जमींदार की कन्या, जिसके हाथ में उसकी तमाम जमीनदारी का स्वामित्व है। मानव की सेवा से परिचालित पुजारी के प्रति रेणु के हृदय में अनुराग है—श्रद्धा है और आदर का वह सुकोमल स्थान है कि जहाँ पर पुजारी ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। पुजारी का प्रतिद्वन्दी अपनी चमक-दमक, ठाट-बाट और कार्य-कुशलता के साथ उस साम्राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न करता है, परन्तु सब असफल, सब व्यर्थ, सब निरर्थक।

पुजारी रेणु से विवाह करना चाहते हुए भी उससे भागना चाहता है अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये, दीन दलित मानव की सेवा के लिये, अपने को बन्धन से मुक्त करने लिये। परन्तु रेणु उसे बन्धन-मुक्त नहीं होने देती। रेणु प्रेम और त्याग की कसौटी पर पूर्ण उतरती है और पुजारी को बन्धन में बाँध कर भी जन-सेवा के लिये मुक्त कर देती है।

स्वयं रेणु अपनी जमींदारी में जाकर काश्तकारों को अपनी जमीन बाँट देती है और इस प्रकार जमींदारी के रोग से अपने को स्वस्थ्य कर विविध प्रकार के उद्योग धन्दे प्रचलित करती है। गरीबों के लिये हस्पताल खोलती है और जन-सेवा में रत हो जाती है।

रेणु के प्रेम के इस वास्तविक रूप को देखकर पुजारी का भ्रम दूर हो जाता है और वह समझने में देर नहीं करता कि रेणु प्रेम और त्याग की देवि है, वासना की भिकारिणी नहीं।

'पुजारी' उपन्यास भावना प्रधान होने पर भी आदर्श और रचना की कसौटी पर खरा उतरता है। पात्रों में लेखक ने प्राण फूँक दिया है। भाषा आद्योपांत बहुत प्रांजल है तथा कथा-प्रवाह का निर्वाह लेखक ने बहुत ही सतर्कता के साथ किया है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-संसार इसे आदर के साथ अपनायेगा।

यज्ञदत्त शर्मा

पुजारी

मन्दिर के शून्य आँगन में बैठा हुआ पुजारी एकांत और एकमन से प्रतिमा की ओर देख रहा था। उसकी आँखों में अश्रु-जल भरा था। गले की नसों में उभार आगया था। बार-बार उसके होंठ फड़फड़ा रहे थे। वह कुछ कह रहा था। उसी समय उसने पीछे से सुना—'पुजारी—'

सुनते ही पुजारी के उठे हुए हाथ गिर गये। उसने प्रतिमा की ओर से मुँह फेर लिया—'रेणु—'

द्वार पर खड़ी हुई रेणु एक टक पुजारी की ओर देख रही थी। वह आगे बढ़ आई और मुसकराती हुई बोली— 'मैं यहाँ देर से आकर खड़ी हूँ, पुजारी।'

बात सुनने के साथ पुजारी ने देखा, वह रूप की परी सी, उसकी बचपन की साथिन रेणु, उस समय भी जाने कैसी अनुपम बन आई थी। वह जग-जग करती हुई दिख रही थी। क्षण भर पुजारी ने उसकी ओर देखा। उसने कहा-'आओ, बैठो, रेणु! बैठो!', यह कहते हुए वह एक बार आह्लाद से भर गया और मुसकरा दिया। अपनी उन हर्ष से भरी हुई आँखों को उसने रेणु की आँखों में डाल दिया और कहा—'दिखता है आज तुमने अपना विशेष शृंगार किया है। सच, तुम्हें देखकर लगता है कि इस मन्दिर की प्रतिमा से भी अधिक ठोस, इससे भी अधिक आकर्षण आज तुममें जाने कहाँ से समाविष्ट हो गया है! अपने रूप का बखान सुन रेणु लजा गई। उसने अपने गले में पड़े हुए जुही के हार को हाथ के अँगूठे के पासवाली अँगुली में लपेटा और फिर उसे छोड़ते हुए कहा—'मैं समझी, सुन्दरता को तुम भी पसन्द करते हो, पुजारी! इस रेणु ने आज ही सुना कि तुम भी नारी और उसकी सुन्दरता देखते हो।' उसने बाहर आसमान की ओर देखा और उसी

ओर मुँह किये हुए उसने फिर कहा—'इस रेणु को आज ही अवसर मिला है कि तुमसे कहे, तुमसे पूछे, क्या तुम आज की तरह और कभी भी ऐसा अनुभव नहीं कर पाए ? तुम नहीं देख पाए इस रेणु की ओर ?'—उसने फिर पुजारी की ओर देखकर कहा—'पुजारी, मुझे तो इस पाषाण-प्रतिमा की पूजा करते-करते वर्षों बीत गए। इसने एक दिन भी आशीष नहीं दिया, यह एक दिन भी नहीं बोल पाई। एक दिन भी नहीं मुसकराई और तुम तो हो ही चुप,—निरे प्रतिमा सरीखे ! जाने कितने वर्ष आए और गए। इसी प्रकार मैं नित्य ही पूजा के निमित्त आती हूँ और लौट जाती हूँ। जाने······जाने······'

बात सुनते-सुनते क्षण-भर पूर्व का पुजारी आह्लादित और हर्ष से भरा नहीं रह गया। वह रेणु की भरी आँखें देख गंभीर हो गया। सांत्वना और ममता-भाव लिये उसने कहा—'देवता ने तुम्हारी पूजा अस्वीकार कब की है, रेणु ! जो गाँव की मालकिन है, जिसके पुरखे इस मन्दिर के निर्माता हैं, भला उसे ही आशीष चाहिए, उसे ही········'

'मैं भी आत्मा और परमात्मा को मानती हूँ पुजारी ! सब की तरह, मैं भी जीवन और सुख चाहती हूँ। तुम मानो, मैं जो-कुछ हूँ, उससे सन्तुष्ट नहीं हूँ।' यह कहने के साथ ही उसका स्वर भारी हो गया।

आतुर और अधीर हुए भावों में पुजारी ने अपनत्व के साथ उस ओर देख कर कहा—'रेणु········'

'हाँ, पुजारी ! आज तुम मुझे वचन दो, आज मुझसे कहो कि तुम रेणु के ही, इसके अपने ही········'

'आओ, आओ, नदी किनारे की ओर चलें, रेणु ! वहाँ स्थिरता और शान्ति है।' पुजारी ने कहा और रेणु को अपने साथ लेकर वह सामने नदी की ओर बढ़ गया।

× × ×

गाँव में कोई नहीं जानता कि पुजारी का असली नाम क्या है। वह मन्दिर में प्रतिमा की पूजा करता है और पुजारी कहलाता है। पुजारी के पिता और प्रपितामह का मन्दिर से सम्बन्ध चला आया है। जिस दिन पुजारी अपने माता-पिता से छूट-कर निराश्रित हुआ, तभी से, उसे मन्दिर की सेवा का काम जमींदार की ओर से सौंप दिया गया। किंतु लोग कहते हैं, जाने कैसा है पुजारी, न कभी किसी से बोलता है, न हँसता है। वह कभी किसी के पास भी नहीं उठता-बैठता। बस मन्दिर में होता है या जंगल में,—गाँव में न किसी के पास आता है न जाता है।

कोई पूछता—'तुम विवाह नहीं करोगे पुजारी ?'

तो, पुजारी कहता-'एक काम ले लो, चाहे मन्दिर की पूजा करालो, या विवाह । मैं विवाह नहीं करूँगा ।'

यह सुन गाँववाले उसे सुझाते, 'तुम युवा हो, दुनियाँ में बसे हो, तुम इसकी भी रीति समझो, पुजारी !'

किन्तु यह सुन कर भी, जैसे पुजारी उस रीति के मर्म तक एक दिन भी नहीं पहुँच सका । तभी, जमींदार की लड़की, मन्दिर की स्वामिनी रेणु का सम्पर्क उससे और अधिक बढ़ गया । जिसके पिता ने अभी दो वर्ष हुए पुत्री को अपनी सारी सम्पत्ति सौंप कर परलोक-वास कर लिया था, जिस विवाह के प्रति वह झोंपड़ी में रहने वाला पुजारी, सदा उपेक्षित और उदासीन बना रहा, इसके विपरीत वह वैभव और सुखपूर्ण जीवन में पली-पोसी हुई रेणु जब भी अपने जीवन की गहराई में झाँकती तो वह अशांत और अधीर हो जाती । वह एक अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित हुई, जब अपने लिये वर चुन लेने की बात सुनती, तो तब ही, वह सारे विश्व की ओर से आँख मूँद कर केवल पुजारी को अपने सामने देखती और कहती, 'यह है, मेरा जीवन-साथी, मेरा······'

किंतु, तत्क्षण ही, जब उसे पुजारी के विचार और जीवन की रूप-रेखा का ध्यान आता, तो बरबस ही, उस अबोध, सुकुमारी और अक्षत जमींदार की बेटी का हृदय चीख उठता । वह दुराशाओं के गर्त में जा गिरता और उसी अंधकार में लीन, वह छटपटाता हुआ कहता---पुजारी को पाना कठिन है, वह दुष्कर है······ ?

रेणु के आग्रह पर वह युवक पुजारी जब भी उसके घर पहुँचता तो कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद ही वह लौट आता । लेकिन इसके विपरीत वह रेणु थी, जो नित्य मन्दिर में जाती और प्रतिमा-पूजा का आश्रय ले, उस पुजारी के साथ बैठ कर देवता की पूजा करती और लौट आती ! पुजारी अजान नहीं था । वह देखता था कि जमींदार की बेटी प्रतिमा की ओर नहीं देखती, वह उसकी ओर देखती है ।

इस प्रकार जब सदा की तरह, रेणु एक दिन मन्दिर में आई, तो पूजा हेतु लाये, फूल-बताशे, वह देवता पर नहीं चढ़ा पाई । पुजारी देवता के पास ही खड़ा था, उसे देखते ही, उसने एक बार भी नीचे को झुक कर उस नव-वैद्य को पुजारी के पैरों पर उँडेल कर कहा—'मैं अपनी बात का उत्तर चाहती हूँ, पुजारी ! वह मुझे दो ।'—और उसने पुजारी के पैरों को पकड़ते हुए भारी कण्ठ से कहा—'मुझे इन्हीं चरणों की पूजा करने दो, पुजारी, यह मेरी वर्षों की साध है, तुमसे अब कही । सोचती थी, तुम स्वयं समझोगे, पर तुम नहीं समझे । रेणु को तुम एक दिन भी नहीं समझ पाये । यह तुम्हें खोजते-खोजते हार गई है और अब थक गई । पुजारी ! तुम सोचते होगे, रेणु सम्पन्न है, रेणु सुखी है । यह जमींदार की बेटी है । पर यह

तो निरी शून्य है—निरी एकाकी। व्यथित और अशाँत है। यह मर जायगी, यह अब जीवित नहीं रह पायगी, पुजारी !'……

हठात् पुजारी ने रेणु को ऊपर उठा लिया। उसी की साड़ी का छोर लेकर उसने आँसू पोंछ दिये और तब देवता की प्रतिमा के पास रखे हुए हार को उठा कर वह उसके गले में डालता हुआ बोला—'पुजारी के पुरखों ने जिस जमींदार की बेटी के घर का अन्न खाया है, उसे यह पुजारी अपना जीवन—अपना सभी कुछ—दे पायेगा, रेणु ! तुम प्रसन्न बनो, तुम सुखी बनो, पुजारी तुम्हारा है, यह तुम्हारा अपना एक……'

'पुजारी……'

'हाँ, रेणु, मैं अनेक दिन और अँधेरी रातों में तुम्हारी बात पर टिका रहा हूँ। जिसके लिये मैं न कहीं पहुँच पाया हूँ, न कुछ निश्चय ही कर पाया हूँ। किंतु देखता हूँ, तुम्हारा यह आत्म-विसर्जन, तुम्हारे यह आँसू, यह पुजारी क्या, देवता के हृदय को भी हिला देंगे। जाने तुमसे कितनी बार कहा, जाने तुमसे कितनी बार सुन लिया कि यह भिखारी और जीवन में एकाकी पुजारी और है, तुम और। दोनों ही दूर हैं। दोनों ही विपरीत हैं और तुम इसी को जीवन-साथी चुनने चली हो। तुम इसी को अपना अक्षत-प्रेम प्रदान करने आई हो। भला इसमें संगति कहाँ है ? हीरे को घूरे के ढेर पर मत फेंक दो, उसे उपयुक्तता दो।'

क्षण भर के बाद पुजारी ने फिर कहा—'तुम सोचती होगी, यह पुजारी व्यर्थ का भावुक और आदर्शवादी बनकर जान-बूझकर अपने को मारता है। देखता हूँ सभी की तरह, मुझमें भी दुर्बलता है। आज नहीं तो कल मुझमें भी नारी की चाह आ सकती है। किन्तु मैं जीवन में जो भी भले संस्कार पा गया हूँ उन्हीं पर आश्रित हुआ मैं नहीं चाहूँगा कि तुम-सी कोमल और अक्षत युवती के प्रेम का मैं दुरुपयोग कर पाऊँ। रेणु आज की तरह, पुजारी तुम्हें सदा स्मरण करता रहेगा। तुम्हारी मीठी और कोमल स्मृतियाँ यह कभी भी नहीं भूल पायेगा। इसके जीवन में ऐसे अनेक वर्ष आ गये हैं, जिनकी उजली और मनोरम रातों में यह तुम्हारे साथ बैठा है और हँस-बोलकर सुख पा सका है। तुम इसे कृतघ्नता और उपहास की वस्तु मत बनाओ। यह जहाँ है, इसे वहीं रहने दो। इसे यों खींच-तानकर मत तोड़ दो। इसे मुक्त कर दो। यह जैसा-कुछ है, इसे इसी के भाग्य पर रहने दो रेणु…… !'

रेणु को चुपचाप दूसरी ओर मुँह किए देखकर पुजारी ने फिर कहा—'शायद तुमने सोचा होगा, पुजारी बुद्धू है, नादान है। पर यह कैसे कहे कि रेणु ने जो बात अब कह पाई है, वह पुजारी के पास वर्षों से टिकी है। वह जाने कब से पुजारी की आँखों में घूमती रही है। किन्तु यह तुम-जैसा साहस नहीं पा सका। यह कहना नहीं जानता, चाहता भी नहीं। सोचता है, बात मुँह से कही और इससे दूर

गई। यह इसी प्रकार तुम्हारी मधुर-स्मृतियों को सजाता और प्यार करता रहा है रेणु! यह कहते हुए पुजारी ने द्वार के बाहर दूर अंतरिक्ष की ओर देखा। इसके बाद ही, उसने देखा कि रेणु धीरे-धीरे पग बढ़ाती हुई मन्दिर के बाहर हुई और आगे बढ़ गई।

यह देख पुजारी ने आवाज दी—'रेणु! रेणु!' किन्तु रेणु ने नहीं सुना। उसने तब सुनकर भी जैसे नहीं सुन पाया।

इस प्रकार रेणु को जाते देख पुजारी एक बार मर्माहित हो, पीछे की ओर लौट पड़ा और देवता की प्रतिमा के सामने जाते ही, वह एक अपराधी बालक की तरह गिड़गिड़ाता हुआ रो पड़ा और उसी के चरणों में अपने मस्तक को रख कर बोला—'मेरे जीवन-देवता, तुम मुझे बचाओ। इस अपने पुजारी को बचाओ, मेरे देवता! रेणु असंतुष्ट हुई है। वह आज पुजारी से दुःखी होकर घर लौट गई है। अब मैं क्या करूँ? मैं उसे कैसे समझाऊँ, मेरे देवता! रेणु अंधी है, रेणु अनजान है।'

× × ×

अगले दिन अनायास रेणु के सामने फिर बात आई। प्रातः ही उसकी एक सहेली ने आकर कहा—'रेणु बहिन, इस मन्दिर के पुजारी को क्या हो गया है, कभी यह देवता की मूर्ति के सामने रोता और कुछ सोचता दिखाई देता है। मैं कई बार उसे इस तरह देख पाई हूँ। और कल ही मैं देर तक द्वार पर खड़ी रही और देखती रही कि वह मूर्ति के सामने बैठा हुआ रोता रहा और कुछ कहता रहा। वह जाने क्या कह रहा था? जाने क्यों रो रहा था ......?'

सहेली के जाने के बाद रेणु उस सुनी हुई बात को वैसे ही नहीं भूल गई। जिस समस्या पर वह टिकी थी और अपने से लड़ रही थी, जब उसी पर फिर आ गई, तो वह अधिक खिन्न और उदास हो गई। वह रात-भर जिस पुजारी के प्रति नाना प्रकार की दुराशाओं-भरी कल्पनाओं में लीन थी, अपनी सखी के आते ही वह उन बातों को भूल, यह सोचने लगी कि क्या सचमुच ही, अपने जीवन के अन्दर दुःखी और बेचैन है, पुजारी? तब तो व्यर्थ ही उसे छोड़ दिया। जो शांत और स्थिर जल दिखाई देता था, उसे झकझोर दिया गया। पुजारी को दुःखी कर दिया।

यह कहने के साथ रेणु एक नवीन ही दिशा की ओर पहुँच गई। वह पुजारी की उस गुरुता और भारीपन को देखने और समझने लगी, जो अब तक वह उसके पास बैठकर समझती आई थी। उसे दीखा, पुजारी निरा पत्थर नहीं है। उसमें भी प्रेम और ममता है, किन्तु वह व्यक्त नहीं करता। वह उसे भोगना और पाना भी नहीं चाहता। उसकी यही महानता है। पुजारी की यही श्रेष्ठता है।

इस प्रकार उस दिन और रात में रेणु के अन्दर जो भावनाएँ पुजारी के विष-

रीत आ गई थीं, वह पल मारते फिर दब गईं। बल्कि उसमें पुजारी के लिये जिज्ञासा जाग गई, कि वह फिर पुजारी को खोजे, वह उसे फिर पाए। पुजारी दुःखी है। वह अशांत है। आखिर क्यों? क्या मेरी बात के कारण? अपने इन प्रश्नों के साथ उसके मन में धारणा उठ आई कि वह अब पुजारी से कुछ नहीं कहेगी। बस, वह उसे देख लेगी और हर्षित होगी। वह नहीं चाहेगी, कि पुजारी दुःखी हो, वह अपना सर्वस्व खोकर भी पुजारी की निर्मल और ममतामयी आत्मा को प्रसन्न कर पायेगी।

इस निश्चय के साथ ही उसने विचार किया कि वह पुजारी के पास जायेगी, उससे क्षमा मांगेगी और कहेगी, 'पुजारी मेरी बात से जो तुम्हें कष्ट हुआ, उसके लिये मुझे दुःख है, मुझे लज्जा भी है।'

उस दिन रेणु के यहाँ कई मेहमान आ गये। उनमें फुवा, फूफा और एक अपरिचित युवक अनिल बाबू। इन अतिथियों के आने पर रेणु पुजारी के पास नहीं जा सकी। संध्या आते-आते उसने फुवा से सुना कि वह अपनी रेणु का विवाह करने आई है, और फुवा ने बताया कि यह अनिल बाबू इसी वर्ष बी. ए. पास कर चुका है। घर में माँ है और कोई नहीं है। सम्पन्न घर है। माँ की आज्ञा मिल चुकी है। बस, रेणु की स्वीकृति की देर है। फुवा ने कहा—और अनिल बाबू खूबसूरत हैं तो क्या मेरी रेणु भी तो हजारों में एक है, परी-सी सुन्दर और चाँद-सी निर्मल......।

जब रेणु ने यह सुना तो वह अपनी फुवा की वाक्-पटुता पर मुस्कराई भी और होठों से हँसी भी। फुवा ने फिर कहा—'तुम्हें मेरी बात स्वीकार कर लेनी होगी, रेणु बिटिया। मैं नहीं चाहूँगी कि मेरे भाई की सन्तान, यह जवान और स्यानी लड़की अब अधिक दिन अकेली और अविवाहित रहे। मैं अब तुझे ऐसे नहीं रहने दूँगी। अनिल को देखले, इसे समझले, आजकल यही तो रस्म है। और पढ़े-लिखों की तो बात ही यह है। तू भी पढ़ी-लिखी और अनिल भी।'

रेणु ने सकुचाए भाव में पूछा—'अनिल बाबू को यह सब मालूम है, फुवा?'

फुवा ने कहा—'शायद अभी नहीं! हो भी। उसकी माँ ने कहा होगा।'

'हूँ'—रेणु ने एकाएक बात पर रुक कर कहा—'और अगर अनिल बाबू विवाह के लिये सहमत न हुए तो?'

'यह कैसे होगा, बिटिया! वह तैयार हैं। जब उसकी माँ ने स्वीकार कर लिया तो फिर हाँ-ना कुछ नहीं, । अनिल बड़ा समझदार और नेक है। अपनी माँ का आज्ञाकारी है और मैंने कहा न, तेरे फूफा और मैं अनिल को लेकर आए ही इसीलिये हैं कि विवाह हो और जरूर हो। अपने भाई के मरने के बाद तेरी फुवा इतना भी नहीं करेगी तो और क्या! लड़का ढूँढ़ने तू तो जायेगी नहीं। यह मेरा और तेरे फूफा का ही काम है सुना!......'

उसी समय रेणु कुछ कहने चली थी कि देखा द्वार पर पुजारी आकर खड़ा हुआ है। अपनी बात छोड़कर उसने पुजारी की ओर देखकर कहा—'आओ, पुजारी! आओ, यह मेरी फुवा हैं, आज ही आई हैं। कहते वह खड़ी हुई और फुवा से बोली—'अच्छा फुवा, अब तुम आराम करो। तुम्हारी बात सुनली, जो और कहनी-सुननी है, वह आगे फिर।' कहते हुए वह कमरे के द्वार पर पहुँची और पुजारी को साथ ले अपने कमरे की ओर चल पड़ी। अपने कमरे को जाते-जाते उसने पुजारी से कहा—'मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आती, आज नहीं तो कल अवश्य आती। तुमसे क्षमा माँगती।'

कुर्सी पर बैठते हुए पुजारी ने कहा—'मेरी तरह तुम भी भावुकता में बह चली हो, रेणु।'

'नहीं पुजारी! सच, मेरी बात से तुम दुःखी हुए। तुम अप्रसन्न हुए।' यह सुनकर पुजारी ने कहा—'रेणु! जाने क्यों, पुजारी को सभी-कुछ विपरीत-सा लगता है। मैं स्वयं ही उलझ रहा था कि तुम मन्दिर से अपनी ठीक स्थिति में नहीं आई, मुझे लगा, कुछ रूठ कर, तुम कुछ मन में लेकर आई थीं। इसी से तो मैं अब आया हूँ। सोचा, तुमसे फिर कह आऊँ कि इस पुजारी में ऐसी कोई गुलझट नहीं हैं, जो न सुलझाई जा सके। यह देवता नहीं है, यह पुजारी है। इसका पूजने का काम है, सेवा और दूसरों के सामने नत होना ही इसका जन्मजात कार्य और अधिकार है।'

पुजारी की बात छोड़कर रेणु ने फुवा की बात लेकर उससे कहा—'तुमने कुछ और भी सुना पुजारी! यह फुवा मेरे विवाह की बात लेकर आई हैं, और साथ में वर भी है।'

पुजारी ने कहा—'ठीक तो है। फुवा बूढ़ी हैं, वह दुनियादारी को समझती हैं। तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।'

'इसके अपवाद तो तुम भी बन सकते हो, पुजारी, एक रेणु ही क्यों?'

यह सुन कर पुजारी मुस्कराया नहीं। उसने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'हाँ, ठीक तो है। पर जो पुजारी सदा अन्धकार और शून्यता ही देखता है, उसे यह सब क्यों? ना, रेणु, उसे यह उचित नहीं। वह अपने जीवन के साथ तो पाप करेगा ही, साथ ही, एक नारी, उस उमंगों और लालसा-भरी नारी के साथ भी अन्याय करेगा। निश्चय ही विवाह करके पुजारी उसे छलेगा।'

कहने के साथ ही पुजारी ने नहीं देखा था कि जो रेणु उसकी बात सुनने से पूर्व खिलती हुई कली-सी स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई देती थी, वह तब एकबारगी पीली और उदास हो गई। वह पुजारी की बातों में डूब गई। उसने एक

लम्बी साँस ली और छोड़ी । उसी प्रकार अनमनी-सी वह पुजारी को फिर टंकोरती हुई बोली—'तो यों कहो, तुम विवाह नहीं करोगे''तुम नहीं करोगे, पुजारी !'''

'रेणु'...

'अच्छा, पुजारी ! रेणु तो चाहेगी कि तुम जिस प्रकार भी सुखी और प्रसन्न रह पाओ, वही ठीक ।'—और उसने कुछ विलीन हुए भाव में कहा—'अब तक सुना था, कि किसी के भी मन-मन्दिर की सँजोई और प्रतिष्ठापित मूर्ति व्यर्थ ही नहीं जाती, वह खण्डित नहीं होती। पर नहीं, सभी झूठ है, सभी मिथ्या है। लगता है जैसे सब मन को समझाने की बात है, अच्छा।' कहते रेणु उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। वह उस सामने बढ़ते सन्ध्या के अन्धकार की ओर देखने लगी।

उसके पीछे पुजारी ने जाकर बड़ी कठिनता और दुःख लिये स्वर में कहा—'रेणु, मैं नहीं जानता था कि मेरे आने पर तुम फिर इस प्रकार बन जाओगी। अच्छा, अब मैं जाऊँगा। देखता हूँ, मैं तुम्हें नहीं समझा सका। जिस प्रवाह में तुम बह चली हो, मैं तुम्हें नहीं रोक सका।' कहते-कहते पुजारी कमरे से बाहर हो गया और मन्दिर की ओर चल दिया।

× × ×

अव्यवस्थित और अशान्त हुई रेणु को छोड़ पुजारी जैसे ही उसके द्वार से आगे बढ़ा था कि रेणु की फुवा ने उसे रोक कर कहा—'तुम मन्दिर के पुजारी हो भैया, भला कहीं इस तरह जवान और सयानी लड़की के साथ बैठते और बात करते हैं। ना, तुम्हें जो काम हो, मन्दिर से कहला भेजो। अब रेणु का विवाह हो रहा है। वर तुमने भी देखा, बड़ा योग्य और सुशील है।'

उस समय पुजारी स्वतः ही शान्त नहीं था। रेणु की फुवा से उस अप्रत्याशित बात को सुन वह और अधिक स्तब्ध हुआ। एकबारगी घृणा और लज्जा के भाव में बोला—'अच्छा, अच्छा, अब पुजारी नहीं आएगा। यह'''और वह रोमाँच से भर बात कहते-कहते रुक गया। वह तब शीघ्रता से आगे बढ़ लिया और मंदिर के पथ पर जाकर उस अन्धेरे में ओझल हो गया।

पुजारी चला गया। वह अपनी अंधेरी झोंपड़ी में जाकर चारपाई पर जा पड़ा, किन्तु फुवा द्वारा पुजारी से कही हुई बात से अपरिचित, और लाँछना से तड़पती हुई पुजारी की मनोदशा से अनजान, रेणु तब भी अपनी सभी दिशाओं को भूल, केवल पुजारी की सीमा में बँधी थी, वह उसी की बातों को फिर-फिर कर तोल रही थी और समझ रही थी।

सचमुच ही उस क्षण उसकी विचित्र स्थिति बन गई थी। वह सब कुछ भूल कर भी, यह नहीं भुला पाती थी कि उसने जो वर्षों पुजारी की कल्पना कर पाई,

वह ऐसे ही नहीं भूल जायगी। वह उसे नहीं छोड़ पायेगी। जो असह्य भी है और असभ्यता भी।

इस प्रकार रेणु के सामने एक प्रश्न आता था और जाता था। वह चाहकर भी पुजारी के प्रति उपेक्षा नहीं ले पाई। उसने एकाएक अपने से पूछा—'क्या पुजारी प्रेम की रीत नहीं जानता? फिर वह क्यों मुझे पूजता है? वह क्यों कहता है कि मैं तुम्हें पूजता हूँ? तुम्हें सदा ही पूजता रहूँगा' और उसने खिजलाहट-भरे स्वर में कहा—'वह खाक पूजता रहेगा। पुजारी बुद्धू है। वह जानता ही नहीं प्रेम की सार। वह मुझसे विवाह नहीं करना चाहता। वह विवाह नहीं करेगा।...'

उसी समय उसने द्वार पर देखा कि अनिल आकर खड़ा हुआ है, वह रेणु की ओर देख कर वही रुक गया है। उसे देखते ही रेणु ने कहा—'आइए, आइए।'

सुनते ही अनिल कमरे में आया। वह रेणु के सामने पड़ी कुर्सी पर आकर बैठ गया। दिन में जब वह आया था, तो उसके बाद ही वह बड़ी सुगमता से रेणु से बोल सका था और घनिष्ठता बढ़ा सका था। अब भी वह कुर्सी पर बैठते ही बोला—'मैं सोने के लिये जा रहा था कि आपको देख लिया। पर लगता है आप किसी विचार में हैं। तब तो जाऊँ मैं। मैं तो आजकल हूँ ही बेकार। कालेज क्या छूटा, जीवन का पहिला रंग-ढंग ही खत्म हुआ। आपकी फुवा ने कहा तो, यहाँ बाग है, नदी है, आपके साथ घूमना है। पर आज तो यहीं पड़ा रहा, दिन-भर खाया और सोया किया' यह कहते अनिल रुका। उसने अपनी बात कहते-कहते बरबस रेणु को भी हँसा दिया।

अनिल ने हाथ में ली हुई सिगरेट का कश खेंचकर फिर उठते हुए कहा—'अच्छा, आपका समय न लूँ तो ठीक। मैं चलूँ।'

सुनते ही, रेणु ने शीघ्रता से कहा—'नहीं, नहीं, अनिल बाबू, आप भी...'

अनिल ने कहा—'यह कहाँ की रीति है रेणु! कि व्यर्थ ही आपके बीच में आ पड़ा। पर जब आपका अकारण ही अतिथि आ बना हूँ, तब, जो कष्ट दूँ, उसे भूल अवश्य जाइयेगा। दिखता है, आप घूमने नहीं जातीं। शायद कहीं भी नहीं आती-जातीं।'

रेणु ने कहा—'मैं खूब घूमती हूँ। सब जगह आती-जाती भी हूँ। कभी घोड़े पर, कभी पैदल। आप शिकार खेलते हैं? घोड़े पर चढ़ते हैं आप?'

अनिल ने कहा—'शिकार कभी नहीं खेला। खेलने की इच्छा जरूर रखे रहा। कभी घोड़े पर नहीं चढ़ा।'

रेणु ने कहा—'तो अब आप उस इच्छा को अवश्य पूरी कीजिये।

कल मुन्शी जी से बन्दूक ले लीजिए और घोड़े पर चढ़कर शिकार खेल आइये।'

'और आप ?'

'मैं शिकार नहीं खेलती। बन्दूक भी नहीं चलाती। वैसे कई बन्दूक हैं, जो यों ही रखी हैं। हाँ, आपके साथ तो अवश्य ही चलूँगी। आपका निशाना लगाना भी देख लूँगी।'

यह सुन अनिल ने हँसते हुए कहा—'तब तो आप जरूर मुझे कम-से-कम नम्बर दे पाएँगी। निश्चय ही यह अनाड़ी शिकार पर बन्दूक चलाने के बजाय अपने ही मार लेगा।'

'क्यों ? क्यों ?' हँसते हुए रेणु ने पूछा।

अनिल कुछ और कहने चला था कि द्वार पर आ फुवा ने रेणु की ओर देखकर कहा—'अब सो जाओ बिटिया, अनिल भैया तुम भी।। देख, तू समय पर सो जाया कर भाई, तेरी मा ने जो सार-सम्भाल का बोझ मेरे ऊपर डाल दिया है, उसमें एक यह भी कि अनिल देर तक न जागे, ओस में न सोए और...'

अनिल ने बीच में ही कहा—'और कभी ज्यादा-कम खाना न खाए, आवारा न फिरे, क्यों ?' कहते वह हँसा और फिर बोला—'मा का कैदखाना तो अब छोड़कर आया हूँ। अब एक आप और—अच्छा।'

फुवा ने कहा—'बेटा, अब समय भी अधिक हो गया। शायद बारह से ऊपर, अब जाकर सो। बिटिया तू भी सो।'

रेणु ने कहा—'अच्छा, फुवा।'

अनिल खड़ा हो गया। वह रेणु और फुवा को छोड़ अपने सोनेवाले कमरे की ओर चला गया। तभी उसके पीछे ही फुवा ने रेणु से कहा—'क्यों बिटिया, तूने अनिल से बातचीत कर पाई। देखा, इतना पढ़-लिखकर भी अनिल गरूर नहीं रखता। अच्छा, अब सो तू। बहुत रात हुई। दिखता है, तू खाने-सोने के समय का ध्यान नहीं रखती। तभी ऐसी है, दुबली-दुबली।'

रेणु ने कहा—'अब तुम भी सो रहो, फुवा और मैं भी।'

फुवा चली गई। रेणु अपने कमरे में जाकर पलंग पर जा बैठी। उसने लैम्प की बत्ती को कुछ हल्का कर दिया। अपने हाथ की हथेली पर ठोढ़ी रखकर उसने अपने आप कहा—एक यह अनिल बाबू हैं, जो हँसना और हँसाना ही जानता है। दिखता है, इसने रोना और कुछ सोचना सीखा ही नहीं। उसने फिर कहा—अनिल भाग्यशाली है। यह सुखी जीवन पाए है, बोलता है, तो जैसे हँसता है। होठ खुलते हैं और फूल से झड़ते हैं।

रेणु ने पलँग पर पड़ कर चादर ओढ़ ली। वह आँख मूँदने के साथ उस क्षण फुवा से सुनी हुई बातों के साथ अनिल की कल्पना में डूब गई और सो गई। जब प्रातः हुआ तो वह नित्य के समय पर नहीं उठ सकी। वह दिन चढ़े तक सोती रही। फुवा आई, तब कहीं जाकर जग पाई। उसने जगते ही फुवा की ओर देखकर कहा—'फुवा, आज बड़े सपने देखे। बड़े ही···'

फुवा ने पूछा—'अच्छे तो देखे ?'

रेणु ने कमरे से बाहर जाते-जाते प्रसन्न और इठलाते हुए भाव में कहा—'हाँ, फुवा, सभी अच्छे और सुहावने।' तब वह जाती हुई अपने-आप बोली—'रात भर ही यह अनिल सामने बना रहा। यह हँसता रहा और मुझे भी हँसाता रहा।···'

दोपहर हुआ, सबने मंजन किया और तब रेणु ने स्वयं ही अनिल बाबू को सम्बोधित कर कहा—'आज नदी पर घूमने चलिएगा, जरूर।'

अनिल ने हँसते हुए कहा—'घूमने के नाम पर मैं सभी क्षण तैयार हूँ।'

'अच्छा, आइए, उस कमरे में बैठें। आपसे शहरों के हाल-चाल पूछें। और बताइये तो, भला शहरवाले ऐसे कहाँ, जो अपने अतिथि को इस प्रकार तंग कर पाएँ। हम तो ठहरे ही देहाती, यहीं जन्मे, यहीं पले-पोसे···'

यह सुन अनिल ने फुवा की ओर देखकर कहा—'फुवा देखो, अब सुन लो अपनी रेणु की बात। इन्होंने मुझे उल्लू बनाना शुरू किया।'

फुवा ने हँसते हुए कहा—'मेरी बिटिया भी शहर में ही पढ़ी-लिखी है, भैया। तुमसे पीछे नहीं रहेगी।'

'ओह! तो यों कहो, फुवा और भतीजी एक ही पाठ पढ़ी हैं। अच्छा जी फुवा और तुम भी सुनो रेणु, इस अनिल को जब तक रहना है, तब तक सोच लीजिए कि यह निरा अजान है। यह आँख मूँदकर तुम्हारी आज्ञाओं को सुनेगा, सिर पर उठाए चलेगा।'

रेणु ने हँसते-हँसते कहा—'आइये, आइये।' कहते वह अनिल को साथ ले अपने बैठने के कमरे में गई और बोली—'आपको जिन चीजों की आवश्यकता हो, बिना संकोच के कहिएगा अनिल बाबू! जैसे आपकी सिगरेट, पान आदि। यह सामान गाँव में नहीं मिलते।'

अनिल ने कहा—'यहाँ आकर तो लगता है, जैसे नई दुनिया में आ गया। कोलाहल से दूर, निरा शान्ति और अपनापन लिये जीवन दीखता है।' कितना सुहावना है यहाँ का प्रत्येक क्षण ?'

यह सुनकर रेणु ने कहा—'सब एक दूसरे को अच्छा समझते हैं अनिल बाबू! वही आप भी'

अनिल बात को सीधी कहते हुए बोला—'यहाँ के लोग सुखी है। अपने मे संतुष्ट हैं। यहाँ जीवन मे अधिक स्पष्टता और सात्विकता है।'

यह सुनकर रेणू ने अनिल की ओर देखा।

अनिल ने फिर कहा—'आपके प्रति भी जो फुवा जी से सुना, वही पाया।'

रेणू ने उतावली होकर पूछा—'आपने क्या सुना ?'

उसने कहा—'मै देखता हूँ, जो नारी की देन है और उसकी श्रेष्ठता है, वह सब आपमें है। वह आपमें स्पष्ट है। जो जीवन में पहली बार मैने यहाँ आकर देख पाया है। वैसे, जो नारी नाम की वस्तु है, इस अनिल ने वह अपनी माँ के पास ही देख पाई। उसी की गोद में पला-पोसा और फिर स्कूल में पढ़ता रहा। मैं आज तक अपनी एक बहिन को छोड़ न किसी नारी से बोल सका, न परिचय पा सका। अब मिली हैं आप, स्नेहमयी और प्रेममयी ......।'

रेणू ने कहा—'आप मेरी अधिक प्रशंसा मत कीजिए, अनिल बाबू ! मै इतने बोझ से दब जाऊँगी, मैं इसे नहीं सहार सकूँगी।'

उसी क्षण रेणु को याद आया कि जाने वह कितनी बार पुजारी से लड़ी, जाने कितनी बार वह पुजारी पर अपने स्वामिनी के स्वत्व का अधिकार प्रकट कर पाई, पर जैसे उसने कभी नहीं सुना। वह सदा हँस दिया और मुस्करा दिया। तभी उसने अनिल से कहा—'हाँ, अनिल बाबू, मैं किसी योग्य नहीं हूँ,—मैं, निरी अयोग्य हूँ।'

अनिल ने कहा—'अब घूमने चलिए। नदी की ओर ही चलिए। दिन चढ़ गया।'

रेणु ने कहा—'चलिये।' कहते वह खड़ी हुई और दूसरे कमरे में जाकर साड़ी बदल आकर बोली—'आइए, आपको हरे-हरे खेत और नदी की लहरें दिखा लाऊँ। बन्दूक भी लीजिएगा ? शिकार कीजिएगा ?'

अनिल ने कहा—'हाँ, हाँ, बन्दूक क्यों न ली जाय ? शिकार तो क्या, खाली बन्दूक चलाना ही बड़ा काम है।'

रेणु ने मुस्कराते हुए कहा—'अच्छा, अच्छा !' कहते वह अनिल को साथ ले दरवाजे पर गई और मुन्शी जी से बंदूक और कारतूस ले उन्हें अनिल को देती हुई बोली—'चलिए, कोई देखेगा, तो कहेगा, शिकार मारने जा रहें हैं, बाबू जी !' और इतना कह कर मुस्करा दी।

अनिल ने कहा—'मुझे यह उपाधि असंगत नहीं लगती।' कोई देगा तो सहर्ष ले लूँगा।'

दोनों चल दिए। जब वह गाँव के गलिहारे से आगे बढ़ लिए तो रास्ते में आए कुँए की पनिहारियों ने कुँए में फँसे अपने मटकों को रोक कर इन दोनों को देख

एक दूसरी से कहने लगी--'अरी, यह कौन आया है, जमींदार के यहाँ ? कोई बाबू है ! शहरी दीखता है, जमींदार की लड़की के साथ शिकार करने चला है।'

एक ने कहा--'उँह, होगा ही कौन, कोई होगा चहेता। देखती नहीं, खुद मालकिन कैसी झक-झक करती हुई साड़ी पहिने हैं।'

दूसरी बोली--'बड़े आदमी की बात, शरम न लिहाज। भला जवान लड़की इस तरह दूसरों के साथ ...... ।'

'अरी, चुप ! चुप !'--एक तीसरी ने कहा--'तू जानती नहीं,' सुन लेगी, तो जबान खिचवा लेगी, समझी ! अब देखना, नदी के पार गए नहीं कि हुई बन्दूक की धाँय-धाँय ...... ।'

उन्हीं के पास खड़ी एक जवान लड़की ने हँसते हुए कहा--'अजी, देखना, कहीं बाबूजी खुद न शिकार होकर लौटें। चले हैं बन्दूक लेकर, बाप ने चाहे चिड़िया भी न मारी हो, पर जमींदार के यहाँ जो आए हैं, बस, अब आए शेर मारकर।'

यह सुन एक और हँसते हुए बोली--'शेर क्या, गीदड़ ही मार लाएँ तो समझो।'

इतनी देर में अनिल और रेणु दूर निकल गए थे। इस प्रसंग को छोड़ उन पनिहारियों में से एक अपने काम में लगती हुई बोली--'क्यों जी, यह लड़की क्या बूढ़ी होकर ब्याही जाएगी ? यह उमर तो हुई।'

'उँह, तूने भी भली कही, चमेली, अरी, तू नहीं जानती, बड़े आदमियों की सार ! बस चुप रह, जो घर न देखे सो भला ...... ।'

'हाँ, जी हाँ।' चमेली ने कहा--'ऐसे घरों की माय राम ही जाने।'

उसी समय रेणु और अनिल मन्दिर के पास पहुँच गए थे। रेणु ने दूर से ही देखा कि पुजारी अपनी झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा है। वह नदी की ओर देख रहा है। पास पहुँचकर उसने चाहा कि वह पुजारी के पास पहुँचे। अनिल से पुजारी का परिचय कराये ! लेकिन जब उसने देखा कि पुजारी उन्हें देखकर भी अज्ञात व्यक्ति की तरह झोंपड़ी में चला गया है, तो यह उसे भला नहीं लगा। नहीं तो, उसने सोचा था, उसे देखते ही, पुजारी बुलाएगा और बैठने के लिये कहेगा।

उसने अनिल से कहा--'आपने यह मन्दिर देखा ?'

वह बोला--'मैं देवता की पूजा नहीं करता। मैं आदमी की पूजा को छोड़ अन्य की पूजा पसन्द नहीं करता हूँ।'

रेणु ने अनिल की बात पर ध्यान नहीं दिया। वह पुजारी को अन्दर जाते देख बड़ी वेदना लिये भाव में शीघ्रता से पैर बढ़ाने लगी और अनिल के आगे-आगे चल दी।

नदी के तट पर पहुँचते ही उसने अपने-आप कहा—'पुजारी का पथ अलग है, मेरा अलग है। पुजारी स्वतः ही खिंचकर दूर होना चाहता है।' और उसने तब उपेक्षा-भरे भाव में कहा—वह समझता है, मैं उसके प्रेम में डूब गई हूँ। मैं......

उसने पास खड़े और नदी की ओर देखते हुए अनिल को लक्ष्य करके कहा—'एक यह अनिल बाबू हैं। जो बरबस ही, अपने पथ का निर्माण कर मेरे पास आ गए हैं। एक पुजारी है, जो शून्य और एकाकी जीवन चाहता है। उसे यही पसन्द है। उसने यही पाया है, यही देखना सीखा है।

और अनिल ?—उसके अन्दर से फिर प्रश्न उठा। उसने फिर कहा—अनिल दुनिया का काम-काजी व्यक्ति है। यह ब्याह करेगा, सन्तान उत्पन्न करेगा और तब अपने भरे-पुरे गृहस्थ को बसाकर दुनिया की रीत निभायेगा।

उसी समय अनिल ने कहा—'क्या यहीं बैठ रहना होगा, रेणु ? वैसे जगह तो अच्छी है, यहाँ घास भी है।'

रेणु ने अपने विचारों को रोक कर कहा—'हाँ, हाँ, यहीं बैठिये अनिल बाबू।'

अनिल बैठ गया। वह नदी की ओर देखने लगा। हठात् उसने कहा—'नदी में पानी गहरा है। मैं ऐसे ही पानी में तैरना पसन्द करता हूँ।'

रेणु ने पूछा—'आप तैरते हैं, मैं डरती हूँ।'

यह सुन अनिल हँस दिया। वह बोला—'कभी मैं भी डरता था। पर अब नहीं, हाँ, अब नहीं।'

यह सुन रेणु अनायास मुस्करादी, वह होठों से हँस दी।

देर तक शाँत और मौन बने रहने के बाद उसने अपने ही विचारों में डूबते-उतराते हुए अनिल से पूछा—'अब चलिएगा ?' और चलने की भाव-भंगिमा बनाते हुए खड़े होने का प्रयास किया।

यह सुनते ही अनिल ने आश्चर्य से कहा—'अभी से !' वह बोला—'दीखता है, आप किसी बड़ी गाँठ की गुत्थी सुलझा रही हैं, रेणु ! मुझे पता होता, तो आपको यहाँ तक ले आने का भी कष्ट न देता। हम यहाँ आये और बेआये एक-से रहे। न आप से मैं बोल पाया, न एक क्षण को हँस पाया। बताइए तो, आप किस उधेड़-बुन में लगी हैं। आप गम्भीर भी अधिक हैं। वैसे ऐसा कभी-कभी बन मैं भी जाता हूँ, पर हर समय नहीं और ऐसे समय तो विशेषकर नहीं। मैं इसे मनहूसियत मानता हूँ। यह तो वही हुआ, 'आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।' हम दोनों नदी पर मन बहलाने, अपने परिचय को और अधिक परिष्कृत करने और उठती हुई लहरों का आनन्द लेने आए थे, पर हुआ कुछ और ही। मैं अलग चुप, आप अलग चुप ...... ।'

'नहीं, नहीं, अनिल बाबू आप बोलिए, आप हँसिए। सच, आज कुछ मन ही ऐसा हुआ है, सचमुच ही।'

'मैंने कहा न, आप किसी गहरी बात में उलझी हैं।'—अनिल बोला—'पर ऐसा भी क्या, यह तो स्वास्थ्य के लिये भी ठीक नहीं, रेणुबाई! वैसे, घर चलना है, चलिए।' कहते हुए अनिल खड़ा हो गया।

दोनों लौट चले। कुछ चलकर राह में फिर मन्दिर आ गया। उसके पास पहुँचते ही रेणु ने देखा कि पुजारी नीचे ज़मीन पर बैठा कुछ पढ़ रहा है। यह देख वह रुकी नहीं, वह उसी चाल से चल आगे बढ़ गई। घर जाकर वह सीधी अपने कमरे में चली गई, अनिल बाहर ही रह गया। जब कुछ देर बाद वह रेणु के पास पहुँचा, तो उसे देखते ही रेणु ने पूछा—आप मानते हैं, जीवन भी एक पहेली है··· एक समस्या है।'

अनिल ने कहा—'जाने क्या है, जीवन! मैं इस पचड़े में नहीं पड़ता। मैं तो जो देखता हूँ, उसे ही समझता और मानता हूँ।'

'और ईश्वर को मानते हैं आप?'

'जी, ईश्वर! कभी देखा तो है नहीं, अनुभव भी नहीं किया। पर सुना है कि ईश्वर है। हम-सब का मालिक, शायद हो। किन्तु मैं तो जिन आदमियों की बस्ती में बसता हूँ, जो करता और सुनता हूँ, वह सब ही ईश्वरीय शक्ति हो, तो हो, इससे अधिक न मैं सोचता हूँ और न मानता हूँ।'

'ओ, तो यों कहिए, आप ईश्वर को नहीं मानते। उसे नहीं स्वीकार करते।'

'हाँ, यही कहना अधिक उपयुक्त है, रेणु।'

'तो आप अपने जीवन में कुछ भी नहीं स्वीकार करते, क्यों?'

यह सुन अनिल ने हाथ में ली हुई सिगरेट का कश खींचकर कुछ सोचते हुए कहा—'कमाना और खाना, मैं इसे ही जीवन में मुख्य ध्येय मानता हूँ, बाद में कुछ और।'

'ओह, तब तो आप पूरे नास्तिक हैं।'

यह सुनते ही अनिल हँस दिया। उसने कहा—'नास्तिक और आस्तिक के बीच की जिस दीवार पर टिकी हुई तुम जीवन की यथार्थता देखती हो, शायद मैं उसे स्वीकार न करूँ।'

अनिल का मुख देखकर रेणु ने मुस्कराते हुए कहा—

'तो मैं विवाद थोड़े ही करने चली हूँ अनिल बाबू! मैं तर्क नहीं करती।' अनिल ने अपने पहले ही स्वर में फिर कहा—

'नहीं, यह आवश्यक है, जब हम-तुम मिले हैं, तो क्यों न एक दूसरे को

समझ लें ? जीवन की छोटी-छोटी बातें भी कभी कड़वी बन जाती हैं। वह प्रायः भली नहीं लगतीं और जब तुम जानती हो कि हमारे बीच में तुम्हारी फुवा की एक चाह है, तब वह असंगत क्यों ? हम दोनों ही जीवन-साथी की खोज में हैं। मैंने तो देख लिया और समझ लिया कि भाग्य मेरे, जो तुम्हें पाऊँ और कल को तुम्हें पत्नी के रूप में देख पाऊँ। तुम सचमुच ही अमूल्य हो, तुम अनुपम हो। तुम......'

यह सुनते ही रेणु ने तपाक से खड़े होकर कहा—'हाँ, हाँ, यह सब मैंने भी सुना, अनिल बाबू। मैंने भी। मैं अब थकी हूँ। सच, बड़ी क्लान्त हूँ।' कहते हुए वह कमरे से बाहर हुई और अपने दूसरे कमरे में जाकर पलंग पर गिर गई। तभी उसने बड़े खिन्न और वेदना-भरे स्वर में कहा—'यह जीवन है, जैसे जंजाल, जो न छूटता है, न छूटने देता है...... ?'

* * *

फुवा द्वारा जो विवाह की बात चली, आखिर वह रेणु को सहमत हुई। कई दिन के संघर्ष के बाद उसकी स्वीकृति मिल गई। अनिल और पुजारी की तुलना में जब वह कई दिन तक लगी रही और देखती रही, तो तब वह अनिल की ओर झुका गई। अनिल सांसारिक और व्यावहारिक व्यक्ति दीख पड़ा। वह प्रेम के बदले में प्रेम देता दिखलाई दिया, पुजारी नहीं। वह व्यावहारिक भी नहीं दिखाई दिया। वह तो यही कहता मिला, सांस्कृतिक बनो, देवता की पूजा करो और सदा दुनियाँ को छोड़ने और सन्यास लेने की ही बात सोचता रहा।

इसके विपरीत रेणु अपने जीवन की गहराई में दृष्टि डाल कर देखती कि वह पुजारी नहीं है। वह स्वयं ही पुजारी के अनुरूप नहीं है। वह यौवनमयी और प्रेममयी नारी के रूप में कुछ और चाहती है। वह मधुर और स्नेहमयी जीवन की उन घड़ियों को पुजारी की झोंपड़ी में नहीं, रंगमहलों में काटना चाहती है। वह चाहती है कि अपने जीवन-साथी के साथ, एकांत और एक मन होकर, सारे विश्व की ओर से आँख मूँद, जीवन का सोहाग भोगे और पाये। वह चाहती है कि इस नित-नित के बहते और खोते हुए जीवन में एक बार वह विभोर हो जाये, उसी में लय हो जाये।

जिस दिन उसने अनिल के साथ विवाह करने की सहमति दी, और उसी रात को जब वह अपने कमरे के अन्दर सोने के लिये गई, तो नित्य की तरह रेणु जाते ही न सो गई। वह पलंग पर बैठ गई और अपने सामने ही दीवार के आले में रखे पुजारी के चित्र को देखने लगी। उस चित्र में भी पुजारी का चिर-परिचित और चिर-अभ्यस्त वेष था। सिर के इस-उस ओर बिखरे हुए बाल और गाढ़े का कुर्ता पहिने हुए वह मुस्करा रहा था। जो बड़ा ही भोला और सुन्दर दीख पड़ता था।

क्षणेक उस ओर देखने के बाद ही रेणु ने अपनी दृष्टि को फेर लिया। उसने उस ओर नहीं देख पाया। उसने कहा—पुजारी कई दिन से नहीं आया है। उसने नहीं आना चाहा है।

और तब उसने फिर कहा—'पुजारी आये, आये, न आये। अब उसका न आना ही ठीक। वह सोचता होगा, रेणु दीवानी हो गई है। रेणु······! तब जाने कितने रोष और विषाद-भरे स्वर में उस पुजारी के चित्र की ओर देखकर कहा—यह मेरी जगह होता तो जानता कि स्त्री क्या चाहती है? एक कुमारी, जो अपने जीवन में निपट शून्य, इस यौवन का भार उठाये इन चाँदनी और सलोनी रातों में क्या चाहती है, वह जाने······

यह कहते ही वह पलंग से खड़ी हो गई और काँपने लगी। वह उसी विषाद-भरे हृदय को लिये पुजारी के उस चित्र की ओर बढ़ी और ठीक उसके सामने जाकर वह उसे अपनी तीव्र आँखों से घूरती हुई बोली—'वर्षों बीत गए। जाने कितने सावन-भादों आए और गए, पर तू एक दिन नहीं पिघला, पुजारी। तू इस रेणु को एक दिन भी नहीं पाया। इसने अपने को सभी तरह से सजाया, तेरे सामने जाने किस-किस प्रकार प्रदर्शन किया, पर तू एक दिन भी नहीं मुस्कराया, एक दिन भी नहीं हँसा। तू पत्थर है, पत्थर!' कहते ही उसने अपने अन्तस में उठी उत्तेजना के कारण उस चित्र को उठा लिया, उसे दाँत भींच कर पकड़ लिया और फर्श पर पटक दिया।

इसके बाद ही रेणु काँप गई। उस अधीर अशान्ति के आते ही, वह जैसे मूर्च्छित हुई-सी पलंग पर गिर गई। वह जोर-जोर से साँस लेती हुई अपने आप कहने लगी—'ओह! ओह! मैं व्यर्थ ही पागल बना दी। मैं······'

इसके बाद ही उसकी भरी आँखें गालों पर बह आईं। वह फूट-फूट कर रो पड़ी और उसी अवस्था में जाने कितनी देर के बाद वह बेजाने ही सो गई।

अगले दिन से विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। जमींदार के घर विवाह है, इसलिये जमींदारी के सभी अच्छे और भले आदमियों की दावत के निमित्त सामान की सूची बन गई। रेणु पर मोटर नहीं थी, कई हजार रुपये देकर वह भी मंगा ली गई। ड्राइवर भी रख लिया गया।

इस प्रकार अपनी मालकिन के विवाह पर जमींदारी और घर के नौकर-चाकर भी प्रसन्न और सुखी थे। वह अनुभव करते, जैसे उनकी मालकिन भी पहले से अधिक स्वस्थ और प्रसन्न दिखती है। वह अपने विवाह की प्रसन्नता में विभोर दिखाई देती है।

रेणु के उन नौकरों में एक ऐसा भी था, जो उसका विश्वसनीय और

सबसे पुराना था। वह 'बाबा' के नाम से पुकारा जाता था। रेणु को उसने गोद में खिलाया था। सभी नौकर जानते थे कि उनकी स्वामिनी किसी को भी फटकारेगी और नौकरी से हटाएगी, पर बाबा को वह कुछ नहीं कहेगी। वह उसे जैसे मानती है, उसी तरह मानती रहेगी।

इधर कई दिन से ही बाबा मौन और उदास दीखता था। वह कई दिन से रेणु से मिलने का प्रयत्न कर चुका था, पर सफल नहीं हुआ था। कमरे में वह जब जाता था तो रेणु को सदा ही फुवा या अनिल के साथ बैठी पाता था; जब एक दिन उसे अवसर मिला, तो वह रेणु के पास जाकर छूटते ही बोला—'बिटियारानी, तुम अपने इस बाबा को बताओगी कि पुजारी क्यों मन्दिर और गाँव से निकाल दिया गया है? सारा गाँव यह जानने के लिये उत्सुक है। गाँव-का-गाँव पुजारी को खोकर दुःखी है।'

बाबा की उस आकस्मिक बात को सुन, रेणु चौंक गई। वह व्यथित होकर बोली—'पुजारी निकाला गया है। मन्दिर और गाँव से निकाला गया है, पुजारी! कब गया? उससे किसने जाने को कहा? बाबा?......'

बाबा ने रेणु के उस अधीर भाव को देख, शान्त हुए स्वर में कहा—'बिटिया-रानी, दरबान कहता था कि जिस दिन पुजारी तुमसे मिलने आया, फुवा ने उससे कह दिया कि वह तुमसे न मिले—यहाँ मिलने न आये, और तभी उसके दूसरे दिन ही फुवा ने उसे मन्दिर छोड़ने के लिये भी कहला दिया।'—बाबा बोला—'बिटियारानी पुजारी तो देवता है। मन्दिर उसी से शोभता है। सुना है, जाने से पहिले ही, वह अपना सब कुछ गाँव के गरीबों को बाँट गया। अब जो भी सुनता है, वही कहता है, यह अच्छा नहीं हुआ। पुजारी के जिन बाप-दादों ने मन्दिर में चिराग जलाया, उसी पुजारी को निकाल दिया गया। उसी पुजारी को......?'

'बाबा!'—हठात् रेणु ने अधीर और व्यग्र होकर कहा—'फुवा ने यह क्यों किया? उसने यह क्यों करना चाहा?'

बाबा ने फिर कहा—'बिटियारानी! तुम्हारा यह बाबा तो बचपन से देखता आया है कि इस घर में तो पुजारी का ही आना शोभा देता है। यह उसी से दिपता है। जब कभी पुजारी तुम्हारे पास होता, बैठकर बात करता, तो तुम्हारे इस बूढ़े बाबा को तो लगता, जैसे ब्रह्मा ने एक समय ही तुम दोनों को बनाया हो, एक साथी बनाया हो। मैंने तुम दोनों में कोई भेद नहीं पाया। सदा यही लगा कि एक वस्तु है, जो दो जगह बँट गई है।'

उस समय रेणु कहीं जाने की तैयारी कर रही थी। किंतु बाबा की बात सुनकर वह निरुत्साहित और क्षीण पड़ गई। पल-भर में यह खोई-खोई-सी एकाएक

बाबा से कुछ भी न कह पाई। कुछ देर पूर्व तक जिस पुजारी के प्रति वह विरक्त और कुण्ठित बनी थी,—जिसे एक बार भूल भी गई थी, उसी के प्रति बाबा से इस प्रकार जाने की बात सुन, वह अपने आप में लजा गई। उसका हृदय चीख उठा। वह उसे प्रताड़ना और लांछना देने लगा। उस समय अपने बचाव के लिये उसे कुछ भी नहीं सूझ पाया। जो पहनने के लिये नई साड़ी निकाली थी, उसे वहीं छोड़ वह सीधी फुवा के पास जाकर बोली—'फुवा! पुजारी को तुमने जाने के लिये कहा? वह तुम्हारे कहने पर गया? तुमने बुरा किया फुवा। अच्छा नहीं किया। जाने क्या कहता होगा, पुजारी। जाने क्या सोचता होगा!'

फुवा ने रेणु की इस दशा को देख शांत और मीठे स्वर में कहा—'हाँ बिटिया मैंने ही कहा। कोई सुने तो सुने, पर फुवा नहीं सुनेगी कि गाँव-भर कहे तुम पुजारी को प्रेम करती हो, पर मैं तो जानती हूँ, राजा और रंक का क्या साथ? भला तुम पुजारी को प्रेम करोगी, छिः लोगों की यह कैसी बचपन की बात है? ऐसे लोग यह नहीं जानते कि रेणु बच्ची नहीं है! क्या पुजारी इसे नहीं सुनता था। वह मन्दिर में पड़ा-पड़ा तुम्हें बदनाम कर रहा था और खुश हो रहा था। गुण्डा कहीं का!'

तत्क्षण ही फुवा ने पूछा—'तुमसे किसने कहा? पुजारी आया था, क्या?

रेणु ने अपने भिंचे हुए और वेदना-भरे स्वर में कहा—'पुजारी नहीं आया।'

'तब किसने कहा?'

यहाँ से हटते हुए खिजते और प्रताड़ित हुए स्वर में रेणु ने कहा—'किसी ने भी नहीं फुवा। किसी ने भी नहीं।'

वह अपनी बात पूरी करती-न-करती सीधी अपने कमरे में जाकर धम्म से पलँग पर गिर गई। वह अपने-आप बोली—'पुजारी इस योग्य कहाँ! वह इतना अपमान नहीं सह पायगा। वह जरूर दूर हो जायगा। वह कहीं भी चला जायगा।'

रेणु की इस स्थिति के सामने कदाचित् एक क्षण के लिये पुजारी आ पाता, तो निश्चय ही, अपनी उन भावनाओं में भरी रेणु, उसे देखते ही, पैर पकड़ लेती और कहती, 'मुझे क्षमा करो, पुजारी! यह मेरा पाप हुआ। यह मेरा दोष हुआ, पुजारी!'

वह क्षमा नहीं करेगा! नहीं करेगा। उसने छूटते ही खुले स्वर में कहा—'वह स्वाभिमानी है। यही तो उसकी पूँजी है। इसे लुटा कर, वह जीवित नहीं रहेगा। वह तब कहीं भी नहीं रहेगा······। और इतना विचार कर रेणु का चित्त एकदम बहुत भारी हो उठा।

रेणु की आँखें भर आईं और वह रो पड़ी। उसके बाद ही उसने एक नौकर को

देख कर कहा—'मंगतू, किवाड़ बन्द कर दे। अनिल बाबू से कह दे, मैं नहीं जाऊँगी। आज कहीं भी नहीं जाऊँगी।'

नौकर चला गया। उसके जाते ही रेणु ने चादर ओढ़ ली और वह सो गई।

उसी समय अनिल ने उसके पास आकर कहा--'रेणु'-रेणु ने कहा 'हूँ।'

"सो रही हो, घूमने नहीं चल रही हो। मैं तो कपड़े पहन कर आया।'

रेणु ने मुँह ढके हुए ही कह दिया—'सिर में दर्द है, बाबू! मैं सोऊँगी। मैं नहीं जाऊँगी।'

उसी समय फुवा ने द्वार पर आकर पूछा—'क्या है? रेणु सो रही है?'

अनिल ने कहा—'सिर में दर्द है।'

यह सुन फुवा कमरे में आ गई। बोली—अभी तो ठीक थी, अरी रेणु—कहते फुवा ने उसके मुँह पर से चादर हटाई, उसकी आँख देखते ही बोली—रो रही है तू! किस लिये?

'सिर में दर्द है, फुवा! तुम जाओ किवाड़ बन्द कर दो।'

'तो रो क्यों रही है, बिटिया?'

यह सुन रेणु ने फिर मुँह पर चादर डाल ली। उसने दूसरी ओर करवट फेर ली।

यह देख फुवा ने अनिल की ओर देखकर कहा—'ठीक तो है, जरा नींद आई कि दर्द बन्द हो जायगा। आओ इसे सोने दो।'

बाहर आते हुए फुवा ने कहा—'अजब बात है, इस लड़की की? क्या बात थी और क्या हो गई।'

अनिल ने पूछा—'क्या हुआ फूवा?'

फुवा ने जल्दी से कहा—'कुछ नहीं, कुछ नहीं।'

यह सुन कर अनिल बोल तो कुछ नहीं पाया, पर कुछ हुआ है, विवाह के विषय में ही कुछ हुआ है, यह चोर क्षण भर में उसके मन में व्याप गया। जिसे देख वह अपने कमरे में चला गया और अनमना-सा हुआ इस-उस ओर देखने लगा। उस क्षण वह कितना उत्साहहीन था, कितना दीन, यह उसके चेहरे पर स्पष्ट हो आया था।

× × ×

तीन चार दिन हो गए, रेणु को बुखार है। वह इतनी दुर्बल हो गई, जैसे महीनों की बीमार हो। फुवा की कठिनाई में जान है कि रेणु बीमार है और दवा नहीं खाती, समझाने पर भी नहीं खाती, अनिल के कहने पर भी नहीं खाती।

एक दिन फुवा और अनिल जब रेणु के पास नहीं थे, वह अपने कमरे में

थे, तो तभी अवसर पा, बाबा ने रेणु के पास आकर कहा—'बिटिया रानी, रोते कब तक रहोगी। तुम दवा नहीं खा रही हो, अपने को देखती हो, दिन-पर-दिन घुलती जा रही हो। आखिर क्या कारण है! क्या सोचा है, तुमने? अपने बाबा को बताओ, बेटी!'

बात सुन कर रेणु ने कमरे की छत की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने क्षीणता भरे स्वर में कहा—'मैं जीना नहीं चाहती, बाबा!'

बाबा ने तुरन्त कहा—'जीना तो तुम जरूर चाहती हो, बिटिया रानी! जो सभी को चाहिए, वही मेरी बिटिया को चाहिए!'—कहते उसने रेणु के सिर पर प्यार और अपने-पन के साथ हाथ फेरते हुए फिर कहा—'मेरी बिटिया रानी क्या चाहती है, बाबा यह भी समझता है। जिसे गोद में खिलाया, नन्हीं मुन्नी से इतनी बड़ी देख पाया, उसी की बात को यह बूढ़ा कैसे न समझ पायेगा, बिटिया रानी! जिस देवी के मठ में पुजारी था और चला गया, वह सूना ही रहेगा। पुजारी के बगैर देवी कैसे प्रसन्न हो, कैसे उसका शृंगार हो। अब कौन सुन्दर और सुगन्धित फूलों की माला देवी को भेंट करे? बिटिया रानी, तुम पुजारी को याद करती हो। तुम अब तक जिस देवता की पूजा करती आई हो उससे दूर हो, तुम दूसरों के कहने से उससे छूट गई हो। तुम फिर उसी को पाना चाहती हो। तुम्हारा मन और आँखें उसी पुजारी की खोज में हैं, उसी के लिये आकुल हैं। बताओ बिटिया रानी यह झूठ है? यह······'

'बाबा!' एक हूक-भरे हुए कण्ठ के साथ रेणु ने कहा।

बाबा ने फिर कहा—'तुम बुलाओगी, तो बीमारी की खबर पाते ही पुजारी दौड़ा आएगा, वह जरूर आएगा, बिटिया रानी!'

'पुजारी का अपमान हुआ है, बाबा! वह नहीं आयेगा।'

बाबा ने कहा—'अपमान क्या, तुम्हारे लिये तो पुजारी मौत भी स्वीकार कर लेगा, बिटिया रानी!'

यह सुन रेणु ने कुछ नहीं कहा; उसने आँख मूँद कर बाबा की बात को गले के नीचे उतार लिया। दिखता था, उस क्षण उसने अलभ्य सुख का आभास अनुभव किया था। अपने गालों पर बह आई आँखों को उसने पोंछ लिया था और तब लम्बी साँस भर कर दूसरी ओर को मुँह फेर लिया था।

बाबा ने कहा—'सुबह आयेगा, पुजारी।'

यह सुन चौंकते हुए, हर्ष-मिश्रित भाव में उल्लास के साथ उसने फिर बाबा की ओर देखा।

बाबा ने अपनी आँखों में अगाध ममता-लिये उसकी ओर देखकर कहा—

'तुम्हारा बहुत कोमल और मुलायम दिल है, बिटिया रानी ! पुजारी बगैर तुम नहीं रह पाओगी। जाने तुम किस बात पर उससे रूठ गई। वह तुम्हारा पुजारी है ! तुमने जो वचन उसे दे दिया, भला तुम अब कैसे वापिस पाओगी। ना बिटिया, पुजारी की पूजा को मत छीनो। उसे अपना काम करने दो। पुजारी में कोई लालच नहीं है। उसके लिये जमींदार के महल हों तो क्या, झोंपड़े हों तो क्या, सभी एकसा है। वह तो अपनी जवानी में परमहंस है। दुनिया बदलती है, लोग बदलते हैं, पर पुजारी सदा से ऐसा ही, आज का-सा भोला और सीधा दिखाई देता है। उसने अपने को एक दिन भी नहीं सजाया। वह वैसे ही सुन्दर है, वह वैसे ही देवता-तुल्य है। वह अनिल बाबू नहीं है जो सुन्दर स्त्री और धन की चाह रखते हैं। तभी तो फुवा की चाह है, कि उसका निकट का रिश्तेदार यह अनिल, इस घर का और जमींदारी का मालिक बने और रहे।

रेणू ने एकाएक उद्विग्न होकर कहा—'तो मैं क्या करूँ, बाबा ?'

'यह तुम्हें पुजारी बताएगा, बिटिया रानी !' बाबा ने कहा—'तुम्हारे मन की बात देखकर मैं स्वयं ही, कल पुजारी के पास गया था। जाकर जब उससे गाँव चलने के लिये कहा, तो वह तैयार नहीं हुआ था। किन्तु जब मैंने तुम्हारी बीमारी और व्यथा की कहानी कही, तो सुनते ही उसने यहाँ आना स्वीकार कर लिया।'

'तो पुजारी आयेगा ? अवश्य आयेगा पुजारी ?' उल्लासपूर्ण स्वर में रेणू ने पूछा।

बाबा ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर मुसकराते हुए कहा—'हाँ बिटिया, सुबह पुजारी आयेगा, वह अवश्य आयेगा।'

बाबा दूसरी ओर चला गया। तब अकेली रह गई रेणु ने अपने-आप से कहा—'मैं पुजारी को आज तक नहीं समझ पाई, वह जाने कितना गूढ़ है, जाने कितनी गहरी समस्या है।……'

किन्तु सुबह होते ही, जब सचमुच ही पुजारी आ गया और वह बाबा के साथ रेणु के कमरे के द्वार पर जा पहुँचा, तो बाबा के कहे पर भी, रेणु ने एकाएक उसकी ओर नहीं देख पाया। उसने बाबा से सुना था, पैरों की ध्वनि से भी उसने अपने कमरे में पुजारी के आने की आहट को भी सुन लिया था, किन्तु जाने किस विवशता ने उसे पुजारी की ओर नहीं देखने दिया।

तभी पुजारी ने उसके पलंग के पास जाकर कहा—'रेणुबाई !' पुजारी का स्वर सुनते ही रेणु भभूखा खाकर रो पड़ी। वह एकबारगी तड़प गई। वह उठ कर बैठ गई और जाने कब की रोती हुई अपनी उन्हीं आँखों के साथ पुजारी के पैर पकड़ कर बड़ी दीनता और याचना के साथ बोली 'मुझे क्षमा करो पुजारी !'

पुजारी ने उसे उठा कर पलंग पर बैठाया और लिटा दिया। उसने रेणु की उस व्याकुलता को देख बिना आश्चर्य के, अपने कपड़े से उसके आँसू पोंछ कर कहा—'तुम अधिक कमजोर हो गई हो रेणु, तुम शान्त बनो।'

पास खड़े बाबा ने कहा—'इतने दिन में जाने क्या से क्या बन गई, बिटिया। इसे भ्रम है कि तुम जाने क्या सोचते हो, यहाँ से जाने पर जाने क्या-क्या कहते और मानते हो ?'

पुजारी ने मुसकराते हुए कहा—'कहने-सुनने की क्या बात है, बाबा मैं यह नहीं भूल पाऊँगा कि रेणु मेरे प्रति जो है, वही है। वह और नहीं है, वह बदल नहीं गई है। जैसी कल वैसी आज है रेणु !'

रेणु ने बाबा की ओर देखकर कहा—'जलपान लाने के लिये कहो, बाबा। जाने कहाँ से आये हैं, जाने कितनी दूर से...'

सुनते ही बाबा चला गया। उसके पीछे ही, फुवा और अनिल जो रेणु के कमरे मे आए, तो उसके पास ही पुजारी को बैठे देख वह दोनों अवाक् और अचम्भित हुए। क्षण भर को जैसे आए थे, आए के आए रह गए। पर आते ही रेणु या पुजारी से कुछ भी न कह-सुन सके। तब बाद में फुवा ने कठिनता से रेणु की ओर देखकर पूछा—'तबियत ठीक है ?'

रेणु ने तुरन्त ही कह दिया—'हाँ अब ठीक है फुवा।'

यह सुनकर भी फुवा को हर्ष नहीं हुआ। वह उपेक्षा और घृणा को लिये लौट चली। वह तब अनिल को भी बुलाती ले गई। उसके जाते ही पुजारी ने कहा—'मेरा आना रुचिकर नहीं लगा, फुवा को ठीक नहीं लगा।'

सुनते ही रेणु ने कहा—'यह देखना और सुनना, मुझे नहीं सोहायेगा, पुजारी !'

पुजारी चुप रहा, वह आगे एकाएक कुछ नहीं कह सका। उसने नहीं कहना चाहा।

रेणु स्वस्थ है। एक सप्ताह हुआ कि उसने पुजारी को रोक रखा है, लेकिन अब पुजारी जाएगा। कल रात ही, उसने रेणु से कह दिया कि वह प्रातः अवश्य चला जाएगा।

प्रातः होते ही रेणु ने पुजारी के कमरे में जाकर देखा कि वह कमरे की खुली खिड़की की ओर मुँह किए एकाग्र और मौन दृष्टि से नीले अम्बर की ओर देख रहा है। वह ध्यानस्थ है। एक पुस्तक उसके सामने रखी है, जिस पर लिखा है, 'कर्मयोग'। उन बड़े-बड़े चार अक्षरों को देखते ही रेणु ने मन में कहा—'अब जाने पुजारी किस कर्म का पाठ पढ़नेवाला है, जाने इसका कितना विशाल कर्म है, जो

अभी और बाकी है।' यह कहते हुए वह पुजारी को व्यस्त देख, लौट कर द्वार पर आई थी, कि उसने पुजारी से सुना—'रेणु, आगई, आगई।' और फिर मुस्कान-भरे नेत्रों से उधर देखा।

सुनते ही रेणु ने पुजारी को ओर देखा।

पुजारी ने कहा—'इतने प्रातः उठ आई', बहुत जल्दी।'

रेणु ने उसके पास ही जमीन के फर्श पर बैठते हुए कहा—'इसलिए कि तुम जा रहे हो। सोचा, तुम शायद मेरे कारण रुक पाओगे। मेरे आने की प्रतीक्षा करोगे।'

'ओ' तुम इसलिए उठ आई हो।' कहते पुजारी हँसा। वह हँसती हुई आँखों से रेणु की ओर देखने लगा।

इसके विपरीत रेणु सामने खिड़की के बाहर देखने लगी और अपने-आप ही जाने क्या-कुछ सोचने लगी।

पुजारी ने कहा—'मैं शीघ्र लौट आऊँगा, रेणु। यह मेरा वचन है।'

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा। उसने तुरन्त ही भर आई आँखों पर उठे हुए पलकों को डाल दिया।

गालों पर बह आए आँसुओं को देखकर पुजारी ने कहा—'रेणु तुम रोती हो! जाने क्यों रोती हो तुम?'—और उसने कहा—यह पुजारी जब-जब तुम्हारे पास आता है, तब-ही-तब इन बहते आँसुओं में तुम्हारे हृदय के दर्शन करता है और अपने आप को पखारता पाता है।'

यह सुनकर रेणु ने पुजारी की ओर देखा। उसने अपनी आँखों को पोंछ लिया और जो एक लिफाफा उसके हाथ में था, उसे पुजारी के सामने रख दिया।

उसकी ओर देखकर पुजारी ने पूछा—'यह क्या है?'

'मेरी वसीयत!'—रेणु ने कहा—'तुम जिस दरिद्रनारायण की सेवा में लगे हो; वहाँ यह जमींदारी भी लगा सकते हो और यह मेरे पिता की दी हुई पूँजी भी।'

यह सुनकर पुजारी मुसकराया। वह क्षणभर स्नेहमयी दृष्टि से रेणु की ओर देखकर बोला—'दरिद्रनारायण को जमींदारी की नहीं, तुम्हारी आवश्यकता है, रेणुबाई! उसे तुम्हारा हृदय चाहिए। तुम्हारा यह मनोरम और सुहावना जीवन चाहिए।'

रेणु ने बाहर आसमान की ओर देखते हुए कहा—'तब यह भी दे पाएगी, रेणु। यह अपना सभी-कुछ दे पाएगी।' यह कहते उसने झटके से अपनी गर्दन फेर कर पुजारी की ओर देखकर फिर कहा—'मैं सोचती हूँ, जमींदार की बेटी होकर तो मैं तुम्हें न पा सकूँगी। तब क्यों न सब-कुछ खोकर, सभी को लुटाकर मैं

तुम्हारे पास पहुंचूं। तब शायद तुम नहीं ठुकराओगे। तब तुम अपने हृदय के द्वार से मुझे वापिस नहीं होने दोगे……!

यह सुनकर पुजारी हँसना चाहकर भी नहीं हँस सका। वह पूर्ववत् गंभीर होकर बोला--'क्या जाने, इस प्रकार तुम कब तक भ्रम में रहोगी ? रेणु ! दिखता है, तुम अपने मन की आँखों से एक दिन भी इस पुजारी को नहीं देख पाओगी। रेणु, पुजारी पत्थर नहीं है। यह देवता भी नहीं है। यह मनुष्य है। मानव की दुर्बलताएँ इसके भी पास हैं और तुम सब ओर से छूट कर इसे बाँधने पर तुली हो। तुम इसके प्रवाह को सीमित करना चाहती हो ! भला क्यों ? इस लिए कि पुजारी दूर हो जायगा, यह तुमसे छूट जायगा ! न, न, मैं कहता हूँ, यह सम्भव नहीं है। हाँ, नहीं है। मैं तुमसे याचना करता हूँ कि इस दुर्बल और हीन पुजारी को पाये हुए अवसर से काम लेने दो। इसे मुक्त होकर जीवन की धारा में बहने दो। मैं तो चाहूंगा कि तुम भी प्रोत्साहित करो। तुम सोचती हो, यह जीवन है, जो आता और चला जाता है,—फिर आने के लिये। पर मैं तो कहता हूँ, जो जीवन है, वह एक ही बार मिलता है। उसे एक ही बार सँजोया जाता है। यह विवाह, यह बच्चे, यह भोग की क्रियाएँ ही जीवन नहीं हैं। एक मा असह्य वेदना सहकर भी जब बच्चों को पालती है, तो क्या यह पुजारी तुम्हारे पास से कुछ भी नहीं पाएगा ? अब तुम्हीं इसे बल दो। अब तुम्हीं इसका साथ दो, रेणु ! जो हाहाकार और कोलाहल इस भरे-पूरे विश्व में नित्य ही उठता और बैठता है, इस पुजारी को उसी में लीन हो जाने दो। इसे देखने दो कि समाज में जो धनिकों की जूठन से पलते आए, ये निरे कंकाल, मा और बच्चे, निराधार और निराश्रित हुए नियति की किस विडम्बना पर अभिशापित हैं। मैं जानना चाहता हूँ, आदि काल से शोभित और निर्मित ईश्वर क्या है, इसका अस्तित्व क्या है ? जिस देवता की पूजा करते-करते यह मानव लाखों और हजारों वर्ष पार कर गया, क्या कभी भी उसका आशीष इसे मिला ? इन कंकालों ने कभी भी उसका आश्रय पाया ?' कहते हुए पुजारी का मुँह लाल हो गया। उसी दशा में उसने फिर कहा—'रेणु ! पुजारी के हृदय में आग है, इसमें टीस है और रोदन है। इस जीवन को पाकर मैं आज की तरह सदा चाहूँगा कि मानव में मानव की मूर्ति को खोजूँ और पाऊँ। मैं उसी में एक दिन लय हो जाऊँ, रेणु !…'

रेणु ने पुजारी के पैरों को छू लिया और अपने सिर को उन्हीं पैरों पर झुका दिया।

पुजारी ने उठते हुए कहा—'मैं शीघ्र लौट आऊँगा, बहुत शीघ्र।' कहते हुए उसने अपना झोला उठा लिया और मुसकराकर रेणु से बिदा ले बाहर की ओर चल दिया।

× × ×

पुजारी के जाने के बाद ही, बाबा कमरे में आया। रेणु खिड़की के पास खड़ी हुई अन्यमनस्क भाव से उस दूर जाते हुए पुजारी को देख रही थी। उसके पीछे ही बाबा ने खड़े होकर कहा—'मुँह-हाथ धो डालो, बिटियारानी!' और एक ओर खड़े हो गये।

इतनी देर में पुजारी ओझल हो गया। बाबा की बात सुन, रेणु ने उसकी ओर देखकर कहा—'पुजारी गया, बाबा!'

बाबा ने कहा—'पुजारी फिर आयगा। वह जहाँ गया है, उसे जाना ही चाहिए था। वह निर्धनों और अपाहिजों की सेवा करने गया है, बिटियारानी!'

यह सुनते हुए रेणु बाहर की ओर चली थी कि तभी फुवा ने उसके सामने आकर कहा—'रेणु, मैं आज जा रही हूँ।'

'क्यों, फुवा?'

फुवा बोली—'मुझे आए बहुत दिन हुए, बेटी और देखती हूँ, तू अभी विवाह नहीं करेगी, शायद अभी नहीं करना चाहेगी।'

यह सुनकर रेणु ने सूखे दाँतों से हँसते हुए कहा—'तुम इसके लिये अधिक चिंता मत करो, फुवा। जब होगा, हो जायगा।'

फुवा ने ऊपरी मन से कहा—'अब तू जान। जो मेरा काम था, वह किया मैंने।'

उसी समय अनिल उस ओर आ गया। उसकी ओर देखकर रेणु ने कहा—'आप तो रहेंगे, अनिल बाबू। जरूर, आप नहीं जा पाएँगे।'

अनिल ने कहा—'नहीं रेणुबाई, मुझे जाना है।'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं, अनिल बाबू!' इतना कह रेणु तपाक से दूसरी ओर चली गई। कुछ देर बाद ही जब वह लौट कर आई तो सीधी अनिल के पास जाकर बैठ गई।

अनिल ने कहा—'अब मेरा लौट जाना ही ठीक है।'

रेणु ने कहा—'फुवा जाती है, तो आप भी इस रेणु से नाता तोड़ जाना चाहते हैं। बताइए, यह उचित है, क्या?'

यह सुनकर अनिल चुप हो गया।

रेणु ने फिर कहा—'अनिल बाबू, बाबा कहता है कि पुजारी निर्धनों और अपाहिजों की सेवा करने गया है। तुमने तो देखा, इस बीच में उसने मेरे लिये क्या-कुछ नहीं किया? वह दिन-रात लगा रहा।' और तब उसने कहा—'अपने जीवन में पुजारी सेवा को मानता है। हम जो रात-दिन वैभव और सुख की कल्पना में डूब कर निरन्तर असन्तोष और झँझटों के गर्त में पड़ते दीखते हैं, पुजारी इन-सबसे बचा

है—वह इन सब से दूर है। वह अपने जीवन की वास्तविकता को ढूँढने निकला है, अनिल बाबू !' कह कर रेणु खड़ी हुई और अपने कमरे की ओर चली गई।

इसी समय खोए-खोए से बैठे हुए अनिल के पास आकर फुवा ने कहा—'इस रेणु को पहचानने में तुम्हें अभी देर लगेगी।'

अनिल ने दूसरी ओर देखते हुए कहा—'रेणु पुजारी की पूजा करती है। उसे मानती है, बस मैं इतना जानता हूँ।'

बात सुन कर फुवा ने कहा—'पर वह पुजारी से विवाह करना पसंद करेगी, यह मैं नहीं मानती।'

यह सुन, अनिल ने अपने हाथ में की सिगरेट जमीन पर डाल दी और पैर के जूते से मसल दी। तभी उसने फुवा की ओर देख कर कहा—'पर अनिल क्यों बँधे। वह क्यों उलझन में फँसे?'

फुवा ने उसकी ओर देखकर कहा—'अनिल, मैं जानती हूँ, तुम जीवन में रुपया चाहते हो, सुन्दर और सुदक्ष स्त्री चाहते हो। भला यह सब कहाँ पाओगे? मैं कहती हूँ तुम यहाँ पाओगे।'

'यह झगड़े का सौदा है, फुवा, मुझे नहीं चाहिए।'

फुवा ने वहाँ से जाते हुए कहा—'पगले मत बनो। जब रेणु ने कहा है, तो तुम रहो। जब बहू चाहते हो, तो प्रयत्न और धीरता से काम लो।'

यह सुन कर अनिल चकित-सा जाती हुई फुवा को देखता रह गया।

दोपहर होते-होते फुवा चली गई। जब शाम आई तो रेणु घूमने के लिये तैयार हुई और अनिल के पास जाकर बोली—'आइए, नदी पर घूम आएँ, अनिल बाबू !'

अनिल निरुद्देश्य हुआ बैठा था। सुनते ही खड़ा हो गया और कपड़े पहन कर चल दिया।

नदी की ओर जाते हुए मन्दिर के पास जाकर रेणु ने अनिल से पूछा—'आप आदमी की पूजा पसन्द करते हैं, क्यों? पत्थर को आप नहीं पूजते?'

अनिल ने उस आकस्मिक प्रश्न पर टिकते ही कहा—'मैं पूजा नाम के शब्द पर ही विश्वास नहीं करता। यह नहीं शोभता। यह ढोंग है। एक व्यर्थ का आडम्बर है।'

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा। दोनों नदी पर पहुँच गए। नदी के पानी की तेज धार को देखते हुए रेणु ने फिर कहा—'मैं समझती हूँ, पत्थरों में हम मानव की पूजा करते हैं और यह पूजा हमें समर्पित होने का पाठ देती है, अनिल बाबू! पर आप नहीं मानते। आप पूजा को स्वीकार नहीं करते,—अच्छा।'

अनिल ने कहा—'इस पूजा ने हमें एक दिन भी मानव को नहीं समझने दिया है, रेणु ! और यह पत्थर तो बिल्कुल ही व्यर्थ ! मैं इस प्रयोग का क़ायल नहीं ।'

यह सुन रेणु मुसकराई । वह नदी की ओर देखकर बोली—'आदमी भी पत्थर है, यह भी सख्त है । आप इस नदी की लहरों को देखते हैं, कितनी सुन्दर और मोहक हैं, पर सख्त यह भी हैं । यह भी कठोर हैं ।'

अनिल ने कहा—'यह मानता हूँ, यह मैं तुम्हीं को देख कर स्वीकार करता हूँ, रेणु ।'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'मुझे देखकर ?'

'हाँ, रेणु ! इतने दिन से मैं अनुभव करता रहा हूँ कि तुम भी कठोर हो । तुम भी......'

रेणु ने तब और अधिक ज़ोर से हँसते हुए कहा—'मैं आपके इस आरोप को सिर-माथे पर लेती हूँ, अनिल बाबू !'

'पत्थर यह नहीं जानता कि पत्थर कितना सख्त है ।' अनिल ने अपनी बात को फिर दोहराया ।

नदी के किनारे-किनारे चलते वह मुड़ चले और घर आ गये ।

घर आते ही रेणु ने भोजन लाने के लिये कहा और अनिल को साथ ले अपने कमरे में जा कुर्सी पर बैठते हुए—'आखिर आज आपने निर्णय दे दिया कि रेणु पत्थर है, —क्यों ?'

एकाएक इस प्रश्न को सुन अनिल को अनुभव हुआ जैसे रेणु नदी से घर आने तक की मौनता पर खाली नहीं रही है । वह उसकी बात पर कुछ-न-कुछ सोचती और निर्णय करती रही है । तभी उसने कहा—'हाँ, रेणु, मैं तुम्हें नहीं समझ पाता,—तुम्हें नहीं समझा जायगा ।'

'पर मैं तो कहती हूँ, आप भ्रम में हैं । रेणु में ऐसा क्या-कुछ है, जो नहीं समझा जायगा । ना, अनिल बाबू, यह जो-कुछ है, आपके सामने है । यह ठोस नहीं है । इसमें भारीपन नहीं है ।'

नौकर दो थालों में खाना ले आया और उन दोनों के बीच में रखी हुई मेज पर रख दिया ।

खाना आरम्भ करते हुए रेणु ने कहा—'अब तक आपकी खातिरदारी का भार फुवा पर था, पर अब मुझ पर । कोई त्रुटि हो, तो क्षमा कीजिएगा । रेणु पत्थर तो है ही, अनाड़ी और मूर्ख भी है ।'

यह सुनकर अनिल ने समझा कि रेणु व्यंग के भाव में बोल रही है । उसके

होठों पर मुसकराहट है। वह भोजन समाप्त कर उठ खड़ा हुआ और तब रेणु से बिदा ले अपने कमरे की ओर चला गया। वह तब सचमुच ही एकाएक ऐसी स्थिति में हो आया जो किसी प्रकार भी उसे रुचिकर नहीं थी, जो उसे भली भी नहीं लग रही थी।

जब अनिल चला गया तो उसके कुछ देर बाद बाबा ने रेणु से आकर पूछा—'तुम आजकल का खर्चे का हिसाब भी देखती हो, बिटिया ?'

रेणु ने कहा—'नहीं तो। देख लूँगी। क्यों ?'

'आज मुन्शी कहता था, इस बीच में कई हजार रुपया खर्च हो गया है। जो सब फुवा के हाथों खर्च हुआ है।' बाबा ने कहा—'घर में तो कुछ आया नहीं। फिर इतना क्यों, बिटिया ?'

रेणु ने कह दिया—'फुवा ने कुछ खर्च किया होगा।'

बाबा—'पर तुम्हें भी तो पता चलना था। ऐसे तो एक दिन सभी-कुछ मिट जायगा।'

सुनते ही रेणु ने कहा—'बाबा, तुम सोचते होगे, रेणु कुछ नहीं जानती। वह सभी कुछ जानती है। बस, वह कहती नहीं। हाँ, नहीं कहती।'

बाबा ने फिर कहा—'ऐसे कब तक ?'

'जब तक चले।'

यह सुन बाबा ने कुछ रोषपूर्ण स्वर में कहा—'तुम क्या हो चली हो, मैं कुछ नहीं समझ पाता।'

यह देख रेणु ने मधुर स्वर में कहा—'जिस बात को तुम्हारी रेणु नहीं समझ पाती, तब उसे कैसे समझाए। और अच्छा तो है, इस नासमझी में ही अपनी जिंदगी के रास्ते को पार करले, तो ठीक।'

बाबा वहाँ से जाता हुआ बोला—'ऐसी बात तो मैंने न देखी, न सुनी, ऐसे कोई अपना घर नहीं लुटाता।'

यह सुनकर रेणु ने चाहा कि वह बाबा को रोक ले और कुछ कहे। पर वह तब कुछ नहीं कह सकी। उस क्षण वह अपनी स्थिति की विषमता में एकबारगी डूब गई और खो गई।

× × ×

पुजारी के गाँव से जाने और अनिल के आने के बाद से ही रेणु का मन्दिर जाना और देवता की पूजा करना छूट गया था। एक दिन फिर एकाएक उसे इच्छा हुई और मन्दिर की पूजा का सामान ले वह चलने के लिये प्रस्तुत हुई। जब चली तो उसने अनिल को देख चलने के लिये कहा। वह साथ हो लिया। इस बीच में

वह पहिले से अधिक रेणु के समीप आ गया। इस बढ़ती हुई निकटता को देख नौकर आपस में बात करते और बाबा से पूछते, तो वह उदासीन हो, बात को टाल जाता और उसे अनसुनी कर जाता।

और सचमुच ही, उन दिनों बाबा रेणु की ओर से विरक्त हो चला था। वह देखता था और अनुभव करता था कि रेणु सीधी राह पर नहीं चल रही है। उसे जिस अनिल से दूर होना था, वह अब और उसके निकट हो गई है। वह पहिले से अधिक उससे हँसती-बोलती है। यही बाबा के लिये असह्य था। वह यह नहीं चाहता था।

किंतु जब उस दिन अनिल को साथ ले रेणु मंदिर में पहुँची, तो उसके अन्दर जाते ही, उसकी निगाह पहिले पुजारी की कोठरी पर गई, जो अब खाली पड़ी थी। पुजारी के बैठने की झोंपड़ी भी शून्य थी। यह देख अनायास ही रेणु के सामने पुजारी की मूर्ति आ गई। तभी उसे अनुभव हुआ, जैसे मन्दिर की प्रतिमा भी, रूखी-सी, निस्तेज-सी जानेकैसी-कुछ बन गई है। उसने प्रतिमा के सामने जाकर चरणों में पुष्प चढ़ा दिए। दीपक की जोत जलाकर रख दी। उसने नये पुजारी से प्रसाद ले लिया। यह सब था, किंतु जैसे रेणु को सभी-कुछ नया-नया असम्भावित-सा दीख रहा था। प्रसाद लेने के बाद उसका गला भिंचने लगा था। वह अपने आतुर और भारी हो आए मन के साथ फिर एक बार प्रतिमा के सामने खड़ी हो गई और सिर नवाकर झुक गई। अनिल वहीं द्वार पर खड़ा हुआ कभी प्रतिमा की ओर देखता था, कभी मंदिर की सजावट देखता था।

उसी समय शीघ्रता से बाबा ने आकर रेणु से कहा—'पुजारी आया है, बिटिया!'

प्रतिमा के सामने झुके हुए ही रेणु ने सुना और हठात् अपना सिर उठा लिया। उसने आतुर हो बाबा की ओर देखकर कहा—'पुजारी आया है?'

'हाँ, बिटिया, वह आया है, और अभी जाएगा।'

रेणु खड़ी हो गई। वह द्वार पर खड़े हुए अनिल बाबू को साथ ले इस प्रकार जल्दी से पैर रखती हुई घर की ओर बढ़ चली, जैसे उसकी बहुत दिन की साध के रूप में आज आया था, पुजारी। घर की ड्योढ़ी के पास ही पुजारी बैठा था और मुंशी से बात कर रहा था। उसी समय अपने सामने आई रेणु को देखकर वह खड़ा हो गया और बोला—'रेणु, मैं एक आवश्यक काम से तुम्हारे पास आया हूं।'

यह सुनने के साथ रेणु ने देखा और अनुभव किया कि पुजारी वाणी और मन दोनों तरह से खिन्न और अव्यवस्थित है। पुजारी चिंतित है। तब वह अधीर हुए ममत्व को लिये उसकी ओर देखकर बोली—'आओ, अन्दर चलो!'

पुजारी साथ हो लिया। वह रेणु के साथ चलकर उसके कमरे में जा बैठा। सामने बैठकर रेणु ने कहा—'तुमने यह रूप क्या बनाया है? लगता है, महीनों से स्नान नहीं किया। दुर्बल भी कितने हो? आँखें माथे में धँस गई हैं। देह काली पड़ गई है। आखिर हुआ क्या? बुखार आया है? जब से गए, तुम्हें रेणु की याद थोड़े ही आई होगी? तुम्हें नहीं आई होगी!'

'नहीं रेणु! तुम भ्रम में हो। पुजारी तुम्हें सदा याद करता रहा है।' उसी क्षण पुजारी ने कहा—'यह मृतकों को कंधे पर उठाते और फूँकते, अपाहिजों और पराश्रितों के लिये भिक्षा माँगते समय भी तुम्हें याद करता रहा है। बीमारों की सेवा करते समय भी यह तुम्हें नहीं भूला।'

इसके बाद ही पुजारी ने फिर कहा—'यहाँ से कोई दस कोस पर गाँव है, जहाँ बीमारी है और अकाल है। गाँव वाले नित्य ही भूख से और बीमारी से मरते हैं। इसी निमित्त मैं आज तुम्हारे द्वार पर भी आया हूं, अब तक सभी जगह माँग आया, जिसने जो सहायतार्थ दिया, वह ले भी आया। पर वहाँ एक तो आदमी नहीं, पूरा गाँव ही विपत्ति में आ गया है।'

रेणु ने कहा—'स्नान और भोजन करो। थके हो, कुछ आराम करो।'

पुजारी बोला—'मुझे अभी लौट जाना है, रेणु! यहाँ आवश्यकतावश आ पाया हूं। मैं कई मृतकों के ऊपर डालने के लिये कफन और ईंधन का प्रबन्ध करने आया हूं, जो बीमार हैं, उनके लिये औषधि और पथ्य के प्रबन्ध की भी आशा साथ लाया हूं।'

'तो अभी लौट जाओगे?'

पुजारी ने पूर्ववत् आतुर हुए भाव में कहा—'हाँ, रेणु, अभी। मैं कैसे बताऊँ, यहाँ आते-आते, जाने कितनी माताओं के बच्चे, जिन्हें मैं भूख से छटपटाता छोड़ आया हूं, जाने बचे हों या मरे हों। मैं उन्हीं के लिये तुमसे भीख माँगने आया हूं।'

रेणु को चुप बैठी देख पुजारी ने फिर कहा—'अपने अवलम्ब पर सभी भरोसा करते हैं। यही मेरी बात है। चारों ओर की निराशा और विवशता को देखकर ही, यह पुजारी यहाँ आ गया। तुम्हारे पास से जो कुछ मिलेगा, यह उसको पाकर अपना परिश्रम सफल समझेगा। उन बुभुक्षितों की तरह यह पुजारी भी तुम्हारा ऋणी रहेगा।'

यह सुनते ही रेणु ने तपाक से कहा—'ओह, तुम तो इतनी-सब बातें सीख आए हो। इन्हें कहीं और के लिये रखो ना, काम आयेंगी। पुजारी तुम…… ।'

उसी समय अनिल ने आकर दस रुपये का नोट पुजारी की ओर बढ़ाकर कहा—'पुजारी जी, रेणु की ओर से आपकी यह भेंट है।'

पुजारी ने आश्चर्य से अनिल और उस दस रुपये के नोट की ओर देखकर रेणु से कहा— 'बस इतना ही मिल पाएगा, रेणु! ऐसे तो, पुजारी जैसे आया है, चला जाएगा।' और तब उसने अनिल बाबू की ओर देखकर कहा—'धन्यवाद, अनिल बाबू। इससे कुछ नहीं हो पाएगा।'

अनिल ने कहा—'आप एक पर ही क्यों भार डालते हैं, पुजारी? कहीं और भी जाइए।'

यह सुन उस थके हुए परिश्रम से क्लान्त पुजारी ने कुछ उपहास के साथ कहा—'जी, मैं इसी प्रकार अनेक द्वारों पर घूम आया हूं।' उसने रेणु से कहा—'जो व्यक्ति अपने जीवन के क्षण-क्षण को दूसरों के लिये देता है, वही किसान, आज जब जीवन की पीड़ा से व्यथित है, तो कोई भी उसकी ओर नहीं देखना चाहता। कोई भी उसके प्रति ममता और सहानुभूति दिखानी नही पसन्द करता। इस अहंमन्यता की कोई सीमा नहीं है। मैं जिन जमींदारों और रईसों के द्वारों से वापिस फिर आया हूँ, वह सभी किसानों द्वारा पोषित हुए हैं। वह किसानों को ठगकर ही महलों और दुमहलों वाले बने हैं। पर आज इतना भी नहीं कि वह उस ओर देख पाएँ, सहानुभूति दिखा पाएँ या कुछ सहायता कर पाएँ। यह है उस मानव का दम्भ, यह है इसकी स्पर्धा का मूल। रेणु, तुम भी स्त्री हो, तुम भी ममतामयी हो, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, आज जो उस गाँव में मा-बेटे और पति-पत्नी एक-दूसरे से दूर हो रहे हैं, वह अपनी आँखों के सामने ही, अपने आत्मीय का भूख से या रोग से तड़पते हुए अन्त देखते हैं, क्या उस वेदना को तुम एक क्षण के लिये भी अनुभव नहीं कर पाओगी? मेरा अनुरोध है, तुम भी उस गाँव में चलो, तुम भी अपने जीवन में एक बार जीवन और मृत्यु को देख आओ। इस ईश्वरीय-साम्राज्य के नीचे ही आज जो भैरव-राग सुनाई देता है, निश्चय ही वह तुम्हें मानव के और ईश्वर के असली रूप को दिखा पाएगा।'

रेणु ने एकाएक आर्त्त होकर कहा—'हाँ, हाँ मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, पुजारी, अभी चलूँगी।'

तभी उसने बाबा को बुलाकर मोटर लाने को कहा और स्वयं दूसरे कमरे में जाकर पुजारी के साथ चलने की तैयारी में अपने को लगा दिया। उसने तिजोरी खोलकर तीन-चार हजार के नोट अपने बटुए में रख लिये। साड़ी बदल ली और तब पुजारी के पास आकर वहीं बैठे हुए अनिल की ओर देखकर बोली—'आप भी चलिए, अनिल बाबू। चलिए!'

अनिल ने कहा—'तुम ही जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।'

'चलिए भी, घूमना ही सही। जब पुजारी आए हैं, तो कहा मानिए। बाबा को भी ले चलिए।'

इसके बाद ही, जब बाबा ने गाड़ी आने की सूचना दी, तो सब चल पड़े। रेणु ने बाबा को भी साथ ले लिया। रेणु, पुजारी, अनिल और बाबा, यह सभी गाड़ी में बैठ लिये और पुजारी के बताए पथ की ओर बढ़ लिये।

लगभग एक घण्टे के बाद वे सब एक गाँव में जा पहुँचे। पुजारी के साथ वह सभी एक चौपाल पर उतरे। वहीं पर पुजारी ने सबको बैठा दिया और स्वयं चौपाल पर बैठे हुए गाँव के लोगों से पूछताछ में लग गया।

देखते-देखते वहाँ पर गाँव के व्यक्तियों का समूह जुड़ गया। बहुत से बच्चे भी आ इकट्ठे हुए। इस प्रकार उत्सुक हुए लोगों को देखकर पुजारी ने कहा—'यह लोग भी गाँव के हैं, भाई! तुम्हीं जैसे।' और तभी उसने पास के घर से आये चीत्कार को सुनकर रेणु से कहा—'दीखता है, लड़का मर गया। एक ही था, अपने माँ-बाप का इकलौता, जो कल बीमार पड़ा और आज मर गया। मैं जब सुबह गया था, तो दस मुर्दे छोड़ गया था, रेणु!'

यह सुनते ही रेणु खड़ी हो गई। वह एकबारगी वेदना से भर गई। अपने बटुए को पुज़ारी की ओर बढ़ाकर बोली—'इसमें जो-कुछ है, उस सभी को तुम खर्च कर डालो।'

बटुआ लेकर पुजारी ने कहा—'अब मुझे इन रोते हुओं को समझाना है। चाहो तो आओ तुम! जब आई हो, तो सबसे मिलती और बोलती जाओ।'

रेणु को साथ लेकर पुजारी एक घर की ओर चल दिया। रास्ते में उसने फिर कहा—'ऐसे तो, इस जीवन को एक दिन भी नहीं समझ पाएँगे। यह नियति जो इस विश्व की—इस स्त्री-पुरुष के संसार की-रचना करती है, जाने, मुस्कराने के बाद, ऐसा वीभत्स और रोमांचित अट्टहास क्यों कर बैठती है?'—उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'तुम देखोगी, तो [illegible]ोगी, नियति की यह कैसी विडम्बना है? जो लड़का पा[illegible]-पोसा और बड़ा किया, वह माँ-बाप और स्त्री को छोड़कर पलभर में लोप ही गया—वह उड़ गया। सब हा-हा करें, चीखें—चिल्लाएँ, सभी व्यर्थ, सभी बेकार ...... ।'

एक लक्षित घर के द्वार पर जाते ही, पुजारी ने रोते हुए पिता को समझाया, उसे शान्त किया। रेणु के बटुए से वह उस पिता को दस रुपये देकर घर में गया। देखा, मृत की पत्नी विक्षिप्त हुई अचेत पड़ी थी। मा जैसे अब रोते हुए थक गई थी। रेणु का ध्यान मृत की पत्नी पर था। जिसने रोते-रोते सिर में खून निकाल

लिया था। तभी उसकी ओर बढ़ते हुए रेणु ने कहा—'जाने ईश्वर क्या सोचता है!......'

पुजारी ने कहा—'अभी साल-भर ही हुआ कि इन दोनों का सम्बन्ध हुआ था। अब मौनिहायी आई और विधवा हो गई।'

उसके पास जाकर रेणु ने अपने आँचल से माथे के खून को पोंछ दिया।

उसी समय पुजारी ने फिर कहा—'लोग धन को ही श्रेष्ठ और जीवन की निधि समझते हैं, रेणुबाई! पर वह धन नहीं है, धन सेवा है। जो सेवक है, जो दूसरे के प्रति श्रद्धालु है, वही धनवान् है, वही सम्पन्न है।'

उस मृत की पत्नी की ओर झुके हुए ही रेणु ने कहा—'तुम्हारे हाथ में जो कुछ है, तुम उस सबको खर्च करदो, पुजारी। इन गाँव वालों को बाँट दो।'

पुजारी ने कहा—'आओ चलो, ईश्वर करे, तुम सदा इसी भावना पर टिकी रहो। इसी पर स्थिर रहो। तब सब की तरह, यह पुजारी भी तुम्हारे चरणों को धो-धो पियेगा, रेणु।'

यह सुन रेणु ने सीधी होकर पुजारी की ओर देखा।

पुजारी ने फिर कहा—'आओ, आओ, काम अधिक है। तुम्हें लौटना भी तो है।'

रेणु को साथ लेकर वह एक ओर घर में गया। वहाँ जाकर पुजारी ने कहा—'बस, केवल मा ही शेष है। तीन लड़के थे, तीन बहुएँ, जो सभी गए, जो सभी......'

'पुजारी हूँ......!'

'हाँ, रेणु; युग बीत गए, जिस ईश्वर की महिमा और दया के ऊपर आश्रित हुआ यह मानव, भूल-भुलैयां में मंडराता रहा, यह आज तक नहीं समझा, यह नहीं समझ पाया इस रहस्य का भेद।......'

रेणु ने देखा, घर के आँगन में दो स्त्री और एक पुरुष जमीन पर लिटा दिए हैं। वह सभी कपड़े से ढक दिए हैं। उन एक-एक के मुँह को खोलकर रेणु को दिखाते हुए पुजारी ने कहा—'मै वैराग्य और दुनिया को छोड़ने की बात नहीं सोचता, पर यह सब देखकर वैभव और सुख में रहने की भी मैं कल्पना नहीं कर पाता, रेणु! मैं नास्तिक भी नहीं हूँ। मैं ईश्वर को मानता हूँ। पर इस कठोरता और हृदयहीनता को देखकर, मैं सचमुच उसे भी भूल जाता हूँ। मैं उसे भी अपने से छोड़ पाता दीखता हूँ...... ।'

उन तीनों मृतकों की ओर देखकर रेणु ने अपनी भर आई आंखों को पोंछ लिया। मृत स्त्रियों में से एक की ओर संकेत करते हुए उसने कहा—'लगती है, जैसे सो गई है, बेचारी!......'

पुजारी ने कहा—'यह सभी रात को मरे थे, जो अभी नहीं गए, और न ही फैंके जा सके। तुमने देखा, कैसी अपवशता और दीनता है? इस पैसे बगैर आदमी भूखा मरता है। मुर्दा न फूँका जा सकता है, न उठाया जा सकता है!'

उसने पास खड़े आदमी को कफ़न और अर्थी के लिये रुपये दिए और तब रेणु को साथ लेकर फिर एक अन्य मकान की ओर चलते हुए बोला—'इस बीमारी में कोई बीमार के पास भी नहीं आता। सेवा-सुश्रूषा भी नहीं करता। सभी डरते हैं कि छूत लग जाएगी, कहीं बीमारी उन पर न आजाएगी।'—यह कहते उसने नीले आसमान की ओर देखकर वेदना लिये हुए स्वर में कहा—'आश्चर्य है, यह मानव अपने पर एक दिन भी नहीं लजाया। यह उन्नतिशील मानव, जाने क्या-कुछ बन गया है। हमें बताया गया है कि यह पशु से उच्चतर हो गया है। कहा गया है कि यह सचेत और जागरूक हो गया है। पर मैं तो कहता हूँ, हम पशु ही रहते तो ठीक था। वहाँ प्रेम और अपनापन तो पाते! वहाँ हमें जीवन-उत्सर्ग तो दिखाई देता। यहाँ कुछ भी नहीं, हा, कुछ नहीं।'

उस घर में जाकर पुजारी ने बीमार को शान्ति दी और उसकी स्त्री को दस रुपये देकर वह फिर चौपाल की ओर चलता हुआ रेणु से बोला—'तुम कहोगी, रेणु, पुजारी कहाँ खींच लाया, तुम्हें कहाँ ले आया, पर यह तो पुजारी के लिये और इन गाँववालों के लिये अच्छा ही हुआ। तुम्हारी इस कृपा को पाकर कुछ जीवित हो जाएँगे और जो मर गए हैं वह मानव की तरह, कफ़न से ढक कर फूँक दिए जाएँगे।'

यह सुनकर रेणु चुप थी। वह पुजारी के साथ फिर चौपाल पर आ गई। उसे देखते ही अनिल ने कहा—'तुमने किसी को छू तो नहीं लिया। यहाँ छूत का रोग है। जो भयंकर है।'

यह बात सुनकर रेणु न मुस्कराई, न कुछ बोली ही। वह फिर पुजारी की ओर देखकर बोली—'इन सब के खाने और दवा आदि का प्रबन्ध करो, पुजारी।'

पुजारी ने बटुए से रुपये निकाल कर गिने और गाँव के चौधरी को बुलाकर दिए। इसके बाद ही जब वह लोगों के पथ्य और भोजन के प्रबन्ध की बातें कह रहा था कि तभी उसको उल्टी हुई, सिर में चक्कर आया और वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

पुजारी की उस आकस्मिक दशा को देख लोगों में बेचैनी छा गई। वहाँ आए गाँव के सभी व्यक्तियों ने एकस्वर में कहा—'पुजारी को बचाओ। पुजारी देवता है। पुजारी का गाँव पर ऐहसान है।'

उसी समय गाँव के चौधरी ने अधीर होकर रेणु की ओर देखकर कहा—'आप डाक्टर को बुलाएँ। पुजारी को यहाँ से ले जाएँ।'

यह सुन और देखकर रेणु एकटक हो पुजारी की ओर देखती रह गई थी। लोगों में से कुछ पुजारी की हवा कर रहे थे, कुछ उसे घेरकर खड़े हो गए थे किंतु रेणु थी, जो तब सभी-कुछ भूलकर मौन हुई इस प्रकार पुजारी की सीमा में बँध गई थी, जैसे वह अकल्पित और अप्रत्याशित बात को अपने सामने साकार और मूर्तिमान् देख रही थी ; जिससे वह डर रही थी और मन-ही-मन काँप रही थी।

तभी बाबा ने पास आकर कहा—'बिटिया रानी······'

'हाँ बाबा !' कहते हुए उसने झटके से अपने मुँह को आँचल में कर लिया। उसने उसी प्रकार रोते हुए कहा—'बाबा, पुजारी······'

तब क्षण भर के लिये बाबा भी अधीर और भारी हुआ न कुछ बोल सका था, न कुछ कह सका था। वह स्वयं तब पुजारी की ओर देख फूट-फूटकर रो पड़ा।

× × ×

किंतु कुछ देर के बाद ही पुजारी सचेत हो गया। उसने अनुभव किया कि जैसे वह एकबारगी शक्तिहीन हो गया है। वह उठ नहीं सका। रेणु ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर देखा तो उसे बुखार था। पुजारी की ओर झुककर उसने कहा—'तुम गाँव चलो, पुजारी ! तुम्हें बुखार है।'

यह सुनकर पुजारी ने कठिनाई से कहा—'जिस गाँव के लोग मृत्यु और जीवन के बीच में पड़े हैं, मैं उन्हें कैसे छोड़ दूँ, रेणु। तुम जाओ। पुजारी को छोड़ दो। इसके भाग्य पर छोड़ दो, तुम।'

'नहीं, पुजारी, नहीं ! तुम बिटिया का कहा मानो। तुम गाँव चलो।' हठात् पास खड़े हुए बाबा ने कहा।

उसी समय गाँव के चौधरी ने कहा—'तुम गाँव से चले जाओ, पुजारी। तुम जिये, तो गाँव के फिर भी काम आओगे।'

उसी समय अनिल ने रेणु से कहा—'तुम दूर से बात करो, रेणु ! यहाँ का रोग पुजारी को भी लग गया।'

चौधरी ने कहा—'हाँ ठीक तो है ! छूत का रोग है, बचा जाय तो जरूर बचिये।'

इतना सुन बड़ी खिन्नता और पीड़ायुक्त स्वर में रेणु ने फिर पुजारी से कहा—'पुजारी चलो ! उठो तुम !'

पुजारी ने अपनी तपती हुई आँखों से रेणु की ओर देखकर अपार ममता के साथ कहा—'रेणु, तुम मुझे इसी गाँव में मरने दो। जब तक साँस हैं, मुझे यहाँ के स्त्री-पुरुषों की मृत्यु और जीवन की पीड़ा देखने दो। तुम मरने से डरती हो।

तुम पुजारी से मोह करती हो,—क्यों ? आखिर पुजारी को मरना तो है ही एक दिन। वह दिन आज ही आये तो! कल आये तो! तुम जाओ।'

यह सुनकर रेणु कुछ नहीं बोली। वह निरुत्तर हो गई। वह अपनी आँखों में याचना लिए कभी पुजारी को देखती, कभी पास खड़े व्यक्तियों को।

उसी समय अनिल ने कहा—'संध्या आ गई है, रेणु। रास्ता कच्चा है। जल्दी निर्णय करो।

रेणु ने आँखों में आँसू भरे हुए अनिल की ओर देखकर कहा—'क्या निर्णय करूँ, अनिल बाबू! पुजारी को ले चलो। इनसे तुम्हीं कहो।'

अनिल ने उपेक्षा और ऊपरी भाव से पुजारी की ओर देखकर कहा—'क्यों नहीं चले चलते, पुजारी। चाहो तो चलो।'

पुजारी ने आह भर कर कराहते हुए कहा—'मेरी कहीं जाने की चाह नहीं है, अनिल बाबू। रेणु को ले जाओ।'

पास खड़े हुए गाँव के एक और व्यक्ति ने कहा—'तुम सबका कहा मानो, पुजारी, तुम जाओ।'

तब अज्ञात भाव में पुजारी ने पूछा—'तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं ?'

'बीमार और अशान्त पुजारी की नहीं, स्वस्थ पुजारी की है।'

'अच्छा, अच्छा, तो पुजारी चला जायगा। रेणु के साथ ही चला जायगा।' कहते हुए रेणु की ओर देखकर कहा—'तुम व्यर्थ ही पुजारी का बोझ उठा रही हो, रेणु! अच्छा, तुम खुशी से उठाओ!'

रेणु ने बाबा की ओर देखकर कहा—'बाबा, इन्हें उठाओ। हाथ का सहारा दो।'

यह सुनकर पुजारी स्वयं ही उठ लिया। वह रेणु और बाबा का सहारा पाकर मोटर में बिठा दिया गया। गाँव वालों ने अपार कृतज्ञता के साथ उन सबको बिदा दी। मोटर की पिछली सीट पर पुजारी कपड़ा ओढ़ कर पड़ गया। उसी के पास ही रेणु बैठ गई, आगे अनिल, बाबा और ड्राइवर। जब गाड़ी गाँव से दूर निकल आई तो रेणु कुछ देर के लिये अनायास ही पुजारी को भूल गाँव में अपनी आँखों-देखी विपन्नता और बेबसी पर पहुँच गई। जिसके साथ ही, उसे पुजारी से सुनी एक बात याद हो आई। एक बार उसने पुजारी से कहा था—'आखिर आदमी भिखारी क्यों है! विपन्न और मोहताज क्यों है ?'

तब पुजारी ने उत्तर में कहा था—'तुम्हारे पास यह दौलत, यह लम्बी जमींदारी आखिर आ कहाँ से गई ?—इसको समझने के लिये तुम चोर और डाकुओं की स्थिति का ज्ञान करो, रेणु! दोनों की एक ही परिपाटी है। यदि कुछ भिन्नता

हैं, तो इतनी कि चोर और डाकू मजबूरी में,—रोटियों के लिये चोरी और डाके जैसे कठोर व्यवसाय में अपने को डालते हैं। जो शौकिया और जीवन-सुख के चाहक हैं, वह कम हैं, वह अधिक नहीं हैं। किंतु इसके विपरीत धनवान् भी एक ही दिन में धनपति नहीं बन जाता। वह अपने-आप ही नहीं बन पाता। वह दूसरों को ठगता है। पर दूसरों की मजबूरी और कमजोरी से लाभ उठाता है। वह धूर्त है, वह छद्मवेशी है।......'

रेणु को याद आया कि तब उसने पुजारी की बात को स्वीकार नहीं किया था। किंतु आज वह माँ जो अपने जवान पुत्र को आँखों के सामने मरता हुआ देख चीख मार-मार कर सिर धुन रही थी, अपनी छाती पर घूँसे मार रही थी,—कितना वेदना-युक्त था, वह दृश्य! तब रेणु काँप गई थी। वह सिहर गई थी।

उसे यह भी स्मरण हुआ कि तभी पुजारी ने फिर कहा था—'इस मानव ने मावन में विभिन्नता डाल दी है। एक, दूसरे से दूर हो गया है। यह दुनियाँ की रंग-बिरंगी शाला कहने को सबकी है, पर इसका उपभोग केवल अमीरों और शक्तिशालियों के लिये है। दुनियाँ का तीन हिस्सा जन-समाज जूठन पर जीवन व्यतीत करता है,—वह उसी से मरते हुए प्राणों को बचाता है। एक छोटी-सी धनिक जमात बड़ी निर्भयता और स्वतन्त्रता से सारे विश्व पर शासन करती है और जीवन भोगती है।' तभी पुजारी ने कहा था—'रेणु, तुम कहोगी, एक गडरिया भी तो हजारों गौओं और भेड़ों पर नियन्त्रण रखता है। एक मिल का मैनेजर हजारों मजदूरों पर शासन करता है,—वैसे ही एक राजा लाखों और करोड़ों व्यक्तियों का भाग्य-निर्माता है। पर इसमें संगति कहाँ है? यह अन्याय और पाप है। यह शक्ति का दुरुपयोग है। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की जिस प्ररिपाटी पर यह विश्व चल पड़ा है, निःसन्देह यह अशांति और दुःखों का एक समूह है, जो निरीह और अपंग प्राणियों को भोगना और सहना पड़ता है। ईश्वर की जिस परम्परा को इस धनिक और राजसी-समाज ने जनसाधारण के सामने रखा है, वह सत्य नहीं है। वह ग्राह्य भी नहीं है।

इसके बाद ही रेणु ने जाने कब के रुके हुए साँस को छोड़ दिया और सन्ध्या के धुंधले तथा कोहरे के आवरण के पार धुँधले-अँधियारे आकाश को देखते हुए उसने अपने मन की आँखों से देखा कि जो पुजारी ने कहा था वह निरा सत्य है। उसे स्मरण हुआ कि जब पुजारी ने कहा था, तो उसे अच्छा और रुचिकर नहीं लगा था। उसने पुजारी को रोक कर कहा था—'तुम निर्धन हो, इसलिये ही अमीरों से घृणा करते हो। धन आए तो कल को तुम भी वही होगे, जैसे कि सब।'

तब यह सुन कर पुजारी मुस्कराया था। वह आगे कहना चाह कर भी, रेणु को विपरीत देख और कुछ नहीं कह सका था।

उसी समय पुजारी ने मुँह पर से चादर हटाई। उसने पास बैठी हुई रेणु की ओर देखा।

तभी बाहर की ओर देखती हुई रेणु ने अपने विचारों के तारतम्य में उलझे हुए मुँह को खोल कर कहा—'और आज? आज तो आँखों के सामने देख लिया कि जो पुजारी ने कहा वही सत्य था।' यह कहते वह लजा गई। वह कहने लगी 'जब जाने पुजारी ने क्या कहा होगा। उसे क्या समझा होगा।—निरी पत्थर! निरी संग दिल!......'

उसी क्षण उसने पुजारी से सुना—'अब गाँव कितनी दूर है, रेणु! मुँह सूख रहा है। प्यास से दम निकला जा रहा है, बड़ी वेदना है। प्राण खिंचे जा रहे हैं।'

सुनते ही रेणु सभी कुछ भूल कर पुजारी की ओर झुक गई। वह उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बड़े कोमल और मधुर स्वर में बोली—'गाँव पास आ गया है, पुजारी! बस, अब पहुँचे। घबड़ाओ मत।'

'अच्छा!' कहते हुए पुजारी ने फिर मुँह ढक लिया।

रेणु ने अपने-आप कहा—'पुजारी को बुखार अधिक तेज है। बेचैनी भी है।' साथ ही जब उसे गाँव में सुनी छूत की बीमारी की भयंकरता का ध्यान आया, तो झटके से वह रास्ते के अन्धकार की ओर देखने के साथ अपने-आप में खो गई। वह मौन हुई; उस धुँधले अन्तरिक्ष की ओट में बैठे जगन्नियन्ता की कल्पना में रत हुई मन-ही-मन में बोली—'अपने इस पुजारी को जीवन-दान दो, प्रभु! इसे बचाओ! तुम मेरा सर्वस्व लेकर इसकी रक्षा करो!......'

इसके बाद ही, वह दुराशाओं के गहरे गर्त में लीन हुई, इतनी गहराई में चली गई कि जब मोटर उसके द्वार पर जाकर रुकी, तो वह संज्ञा और ज्ञान से हीन बन अनिल और बाबा के उठने के बाद भी बैठी की बैठी रह गई। जब बाबा ने कहा—'उतरो बिटिया'—तो, रेणु ने चौंक कर चकित हुए भाव में कहा—'गाँव आ गया,—ओह!' कहते हुए उसने खिड़की खोली और मोटर से उतरने लगी।

बाबा ने कहा—'देखो, धीरे से। साड़ी सम्भालो।'

किन्तु रेणु ने तब भी पूर्ववत् स्थिति में कहा—'तुम पुजारी को उतारो।'

'हाँ, हाँ, तुम चलो। हम पुजारी को लाए।' कहते हुए बाबा ने आगे बढ़कर पुजारी को सहारा दिया और उतार लिया।

घर के अन्दर जाकर जब बाबा ने पुजारी के स्थान के लिये पूछा, तो रेणु ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—'यहाँ लाओ, बाबा यहाँ।'

पुजारी को रेणु के पलंग पर लिटा दिया गया। वह पड़ने के बाद ही, कुछ

देर में सो गया। वह रात भर सोता रहा। किंतु उस रात को स्वयं सोते-जागते में काट कर जब प्रातः को रेणु ने पुजारी की दशा देखी, तो वह आशा के विरुद्ध पाई। पुजारी रात से अधिक अचेत था। उसे बुखार भी पूर्ववत् था।

दोपहर होते-होते शहर से डाक्टर आ गया। वह दवा दे गया। वह रोगी के प्रति सावधानी रखने को भी कह गया। वह दूसरे दिन आया, फिर तीसरे दिन। किन्तु रोगी की दशा दिन-पर-दिन विषम होती गई। इधर दो दिन से पुजारी बोल भी नहीं रहा था। रोगी की उस दयनीय और शोचनीय दशा को देख, रेणु के साथ सब घर-का-घर बेचैन और उदास हो गया था।

चौथे दिन पुजारी की दशा और बिगड़ गई, डाक्टर को बुलाने आदमी चला गया था। दो दिन हुए कि रेणु न सो सकी थी, न कुछ खा सकी थी। वह प्रतिक्षण पुजारी के पास बैठी हुई उसे देखती और उसके जीवन की आशा करती थी।

उस दिन प्रातः से बाबा भी पुजारी के पास बैठा था। जब दिन ढल गया, तो बहुत देर से पुजारी की गति-विधि को देखते हुए बाबा ने समझा-अब जैसे पुजारी ने अपना रास्ता देख लिया है। यह अपने जीवन के नाते की अन्तिम गाँठ को खोल देने के लिये प्रस्तुत हो गया है। तभी उसने उद्वेग भरे स्वर में रेणु की ओर देखकर कहा—'पुजारी जा रहा है। हाँ, अब जा रहा है।' कहते बाबा एकबारगी फूट कर रो पड़ा। उसने तत्क्षण ही दूसरे नौकरों की सहायता से पुजारी को पलंग से उतार लिया। उस समय कौन क्या कर रहा था और कह रहा था, रेणु को इसका कोई ज्ञान नहीं था। वह जैसे बैठी थी, उसी प्रकार बैठे ही, जाने कब की घोंटे पर मुँह रखे रो रही थी और उन्हीं आँखों से पुजारी को देख रही थी।

उसी समय बाबा ने उसके पास जाकर कहा—'पुजारी का अब अन्तिम साँस है। इसके मुँह में गंगा-जल डाल दो, सोने का टुकड़ा डाल दो।'

यह सुनते ही, रेणु ने आँचल से मुँह छिपाए हुए फूट कर रोते हुए कहा—'मेरा सभी-कुछ दे दो। पुजारी पवित्र हो, पुजारी यहाँ से जाकर भी सुखी हो, जो चाहो, इसे अर्पण कर दो!......'

बात सुन कर बाबा कुछ नहीं कह सका। वह गंगा-जल और तुलसी-जल लेने चला गया।

उसी समय डाक्टर आ गया। वह पुजारी को नीचे देखकर अवाक् रह गया।

उसे देखकर एक नौकर ने कहा—'अभी साँस है।'

'साँस है?'—कहते हुए डाक्टर आगे बढ़ा और देखा कि सचमुच साँस है। तब वह रेणु की ओर देख कर बोला—'डाक्टर का काम है, रोगी जब तक जिए, उपचार करे। आप रोइए मत। मैं एक और इन्जेक्शन देता हूँ। शायद......?'

'अजी डाक्टर !' हठात् उसी दशा में रेणु ने कहा—'तोता अब उड़ना ही चाहता है। वह पिंजरे में छटपटा रहा है। वह व्याकुल है।......'

'रेणु.........'

'हाँ, डाक्टर, तुम मेरा सभी-कुछ पाकर इस पुजारी को लौटाल दो। इसे बुला लो।'

डाक्टर ने पुजारी को इन्जेक्शन दे दिया। उसे फिर पलंग पर लिटा दिया। डाक्टर उसकी दशा देखने के लिये पास ही बैठ गया। उसके बाद ही, जब वह दूसरा इन्जेक्शन दे चुका, तो वह रेणु की ओर देखकर बोला—'मैं कहता हूं कि अब रोगी नहीं जाएगा। यह रहेगा।'

'डाक्टर बाबू, आप.........'

डाक्टर ने कहा—'मैं ऐहसान नहीं कर रहा हूं, रेणु, अपना काम कर रहा हूँ। यह देखिए, आँख भी खुली हैं, होठ भी फड़के हैं।'

'मैं आज आपको जाने नहीं दूँगी, डाक्टर साहब !'

डाक्टर ने हँसते-हँसते कहा—'अच्छा, अच्छा।' और तब उसने रेणु की ओर देखकर फिर कहा 'दिखता है, इन दो-तीन दिन में आपने बिलकुल आराम नहीं किया। ऐसे तो आप भी बीमार पड़ जाएँगी।'

यह सुनकर रेणु ने बड़ी वेदना के साथ कहा—'मैं अभी कौन अच्छी हूं, डाक्टर साहब ! मैं अब भी बीमार हूं।'

बात सुनकर डाक्टर चुप हो गया। उसका ध्यान फिर अपने रोगी की ओर लग लया।

× × ×

रात आने तक पुजारी सचेत हुआ। एक-दो बार बोल भी लिया। रेणु को समझाकर सोने के लिये दूसरे कमरे ने भेज दिया गया। डाक्टर भी चला गया। बस, बाबा पुजारी के पास रह गया।

उधर कई दिन की जागी हुई रेणु को पलंग पर पड़ते ही नींद आ गई। अपने जीवन में शायद ही वह इतना परिश्रम कर पाई। सोते हुए ही, प्रातः होते-होते उसने स्वप्न देखा कि वह स्वयं है, पुजारी है और अनिल है। तीनों कहीं चल रहे हैं। तब रास्ते में एकाएक पुजारी एक खाई में गिर गया। रेणु ने देखा, उस खाई में एक भयंकर काला साँप है, जो पुजारी को देखते ही उसकी ओर बढ़ा है। वह क्रोध में भर फुँफकार दिया है और पूरे बल के साथ खड़ा हो गया है। इतने में वह बहुत-कुछ पुजारी के पास आ गया है। और अब......

इसके बाद ही, रेणु चीख गई और खाई में कूद गई। वह उसी दशा

में ही पलंग से नीचे गिर गई। पुजारी के पास बठे हुए बाबा ने जब चीत्कार सुना तो वह तुरन्त दौड़ कर गया। उसी समय रेणु की आँख खुल गई और उसने बाबा को देख बड़े विह्वल और डरावने स्वर में कहा—'बाबा, पुजारी......'

बाबा ने उसके समीप जाकर कहा—'पुजारी सो रहा है। वह बच गया। हाँ, बच गया, बिटियारानी।......'

यह सुन कर रेणु ने घुटनों पर सिर रख लिया और तब उसके बाद ही, उसने बाबा की ओर देखकर कहा—'मैंने बड़ा खराब स्वप्न देखा है। बड़ा ही डरावना......।'

बाबा ने कहा—'तुम्हारा दिल कमज़ोर है, तुम सो जाओ।'

यह सुनकर भी रेणु खड़ी हो गई। वह पुजारी के पास जाती हुई बोली—'मैं अब न सो पाऊँगी, बाबा!' और पुजारी के पास जाकर बैठ गई।

उसके पीछे ही बाबा ने आकर कहा—'अनिल बाबू कहते थे, वह आज जाएँगे। वह जाना चाहते हैं।'

'तो—? वह जाना चाहते हैं, तो जायें!' रेणु ने पुजारी की ओर देखते हुए कहा।

इस उत्तर को सुनकर बाबा सन्न रह गया। वह समझता था कि अनिल नहीं जायगा। वह रेणु द्वारा रोक लिया जायगा। किन्तु बिलकुल विपरीत और रूखा-सा उत्तर पाकर वह आगे कुछ नहीं कह सका। वह अनिल के प्रति उपेक्षित होकर भी अभी तक ईर्षालु नहीं बन गया था और अनिल तो अभ्यागत रूप में आया हुआ था। तभी उसने फिर कहा—'ऐसा क्यों, बिटियारानी, अनिल अभ्यागत......'

'हाँ, हाँ, वह अभ्यागत है, वह मेरे सिरताज हैं, तो......!'

रेणु को क्रोधित देख, बाबा चला गया। वह वहाँ अनिल के पास जा पहुँचा देखा, अनिल अपने बक्स में कपड़े रख रहा था। बाबा ने जाकर कहा—'तो आप सचमुच ही जा रहे हैं, अनिल बाबू! अभी क्यों?'

अनिल ने कहा—'इतने दिन तो हुए, बाबा।'

'तो लाइए, कपड़े मैं रखूँ। बिस्तर बाँध दूँ। सच, अच्छा नहीं लग रह कि आप जा रहे हैं। रेणु अलग परेशान है। पुजारी बीमार है। रह सकें तो कुछ और।'

'नहीं बाबा, अब बस! बहुत रहा। इतने दिन तक इस गाँव की हवा खाता रहा। अब मेरे और भी काम हैं।' कहते हुए अनिल खड़ा हो गया। उसने बक्स बन्द कर दिया और बोला—'बस मैं तैयार हूं। कहाँ है, रेणु? उनसे मिल लूँ!'
'पुजारी के पास!'

'अच्छा तो मिल आऊँ।' कहते हुए अनिल रेणु के पास चल दिया। वह

जाकर पास बैठते ही उसने कहा—'डाक्टर का कहना है, अब पुजारी खतरे में नही है, मैं जा रहा हूँ।'

पुजारी की ओर देखते हुए ही रेणु ने पूछा—'आप अभी जा रहे हैं, क्या ?'

अनिल ने कहा—'हाँ, अभी। फिर गाड़ी नहीं मिलेगी।'

'तो,'—कुछ ठहर कर रेणु ने कहा—'आप तैयार हो गए हैं। मुझसे विदा लेने आए हैं, आप।' कहते हुए अनिल की ओर देखा और कहा—'आप देखते हैं. मैं पुजारी की बीमारी में परेशान हूं। अच्छा, आप खुशी से जाइये, पत्र दीजिएगा।'

अनिल ने उठते हुए कहा—'हाँ, पत्र जरूर! अच्छा, नमस्ते।'

रेणु ने बैठे ही कहा—'मै यहाँ बंधी हूं, क्षमा कीजियेगा।'

'नहीं, नहीं, रेणु।......'

अनिल चला गया। उसके कुछ देर बाद ही बाबा ने आकर कहा—'अनिल बाबू गये।' उसने फिर कहा—अनिल बाबू कुछ दिन से सुस्त भी दिखते थे। वह जरूर कोई बात लिये थे। वह अपने आप ही उसे तोड़-मोड़ रहे थे।

रेणु ने यह सुन कर कुछ नहीं कहा। उसने बाबा की ओर भी नही देखा।

बाबा ने फिर कहा—'आदमी आखिर ठहरा तो काम-काजी प्राणी, अनिल बाबू इस तरह पड़े भी कैसे रहते ? वह अब गए।'

उसी समय पुजारी ने आँख खोली। उसी की ओर देखकर रेणु ने कहा—'पुजारी—'

सुन कर पुजारी ने उसकी ओर दृष्टि को कर दिया।

रेणु ने पूछा—'अब कैसी तबियत है ?'—उसने कहा—'डाक्टर कहता है, तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे,—बहुत जल्दी!'

पुजारी तब भी चुप रहा। उससे नहीं बोला गया। किन्तु उसके कुछ देर बाद ही, जब वह सामने की ओर स्थिर निगाह किये देखता रहा, तो उसकी भर आई आँखें गालों पर बह आईं। उसी दशा में जब उसने रेणु की ओर मुँह किया, तो उसने देखते ही विह्वल हो आर्त स्वर में पूछा—'क्यों पुजारी, क्या ध्यान आया ? बताओ, क्या विचार आया ?'

पर दिखता था, पुजारी बोलना चाहकर भी नहीं बोल सका था। अपने हाथ को रेणु के हाथ पर रखे ही, वह जैसे देखता था, वैसे ही देखता रहा।

तब रेणु ने उसके आँसू पोंछ दिये। पास खड़े हुए बाबा ने कहा—'धन से तो नहीं, अपनी सेवा से तुमने पुजारी को बाँध लिया, बिटियारानी!'

रेणु ने कहा—'पुजारी रोया है। जाने क्यों रोया है ?'

'हाँ, बिटिया, पुजारी कष्टों के तूफान में जो फँस गया है, इसे कष्ट है, और

यह क्या कम कि बोला नहीं जाता। कुछ कहा नहीं जाता। बस, मौन हुआ अपने आप से बोलता है, और कहता है।'

उसी समय डाक्टर ने आकर पुजारी को देखा। इन्जेक्शन दिया। वह जब अपना काम समाप्त कर चुका, तो रेणु की ओर देखकर हँसता हुआ बोला—'शायद अब आप डाक्टर जैसी मनहूस सूरत को न बुला पायें। रोग आज शाम तक और घट जाएगा। तीन दिन की दवा है, यह पिलायें। फिर तीन दिन की और मँगालें।'

'अब जायेंगे, आप ?' रेणु ने पूछा।

'जी, हाँ, अब जाऊँगा। अब मेरा काम भी नहीं है। वहाँ भी रोगियों को देखना है।'

'आपका बिल ? वह दे दीजिये।'

'ओ, बिल, मैं भेज दूँगा। आपके ड्राईवर के हाथ भेज दूँगा।' और डाक्टर उठ लिया।

रेणु ने उठकर कहा—'अच्छा, नमस्ते। आपने मेरे ऊपर बहुत कृपा की, डाक्टर साहब ! मैं आभारी हूं।'

यह सुनकर डाक्टर कमरे के द्वार पर रुक गया। वह रेणु की ओर देखकर बोला—'आप देखती हैं, मैं न तो अपने काम में पक्का हूं, न उम्र में। आपसे अधिक बड़ा भी नहीं हूं और आप तब भी इन दुनियादारी की बातों में पड़ गई हैं,—आश्चर्य ! यह दुकानदारी है, रेणु ! आया, तो फिर कभी आपसे बात करूँगा। इस बार परिचय हुआ, पुजारी के कारण यहाँ आना मिल गया, यह क्या कम अच्छी बात है, दिखता है, पुजारी की बीमारी से आपको अधिक कष्ट हुआ, मानसिक भी हुआ, शारीरिक भी, पर चलो, आप का परिश्रम सफल हो गया। यह डाक्टर भी जो पैसे पा गया, ईमानदारी और सफलता के पायेगा।' कहते डाक्टर फिर हँस दिया। वह उसी प्रकार हँसते हुए चल दिया।

डाक्टर के जाने के बाद ही, रेणु ने कई दिन के बाद अपने हल्के और प्रसन्न हो आए मन के साथ, सुख और सन्तोष की साँस लेते हुए बाबा से कहा—'अच्छा, तुम बैठो बाबा। मैं स्नान कर लूँ, कपड़े बदल लूँ।'

'हाँ, हाँ, बिटिया, जाओ। कई दिन हुए न ढंग से खा पाई हो, न सो पाई हो।'

रेणु उठ गई। वह प्रसन्न मन से बाहर की ओर चली गई, जिसे देखते हुए बाबा ने अपने-आप कहा—'अच्छा हुआ, पुजारी बच गया। नहीं तो······हाँ, नहीं तो······।'

तब सचमुच ही, वह बूढ़ा बाबा, अनजाने ही गहरे ममत्व को लिये अपनी

मालकिन और गोद में खिलाई रेणु की सीमा में बँध गया। तीन-चार दिनों में उसने रेणु की जिस दशा को देख लिया, उसी को याद कर अपने-आप में खो गया,—वह उसी में डूब गया।

× × × ×

पुजारी स्वस्थ हो गया। वह एक दिन रेणु के साथ घूमने चला और नदी पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह नदी के पानी की लहरों को देखता हुआ बोला 'आँधी का झोंका तो आया था कि मैं इस प्रकार फिर तुम्हारे साथ बैठ कर इन लहरों को न देख पाता। पर, रुक गया। उस भयंकर तूफान के साथ जाने से तुमने रोक लिया, रेणु! शायद हमारा अभी और संयोग बाकी था, हमें अभी और मिलकर बैठना था।'

रेणु ने कहा—'इस जीवन और मृत्यु की कल्पना ने तुम्हें बाँध लिया है। तुम्हारा यही चिन्तन है। पर क्या ठीक है, यह! मै इसे नहीं मानती। हमें चिन्ता क्या, रहें तो, न रहें तो! जब तक साँस है, तब तक आस है, क्या तुम इसे स्वीकार नहीं करते?'

पुजारी ने अपनी ही बात लेकर कहा—'बाबा कहता था कि मेरी बीमारी में तुम रात-दिन रोई हो,—रात दिन व्याकुल हुई हो और यदि पुजारी मर जाता तो? रेणु,'—पुजारी ने, हठात् रुक कर फिर कहा—'मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, पुजारी में इतना लिप्त होना ठीक है, क्या? अपनी पूजा, ध्यान और सेवा को पुजारी की सीमा में ही केन्द्रित कर, तुम सचमुच अपने साथ भी न्याय नहीं कर रही हो और सोचती हो, पुजारी दूर है,—तुमसे बहुत दूर है। यह सत्य है क्या? मैं पूछता हूँ यह पुजारी के लिये सम्भव है क्या?'

रेणु ने कहा—'मैं तुम्हारी तरह दृढ़ आत्मा नहीं हुई हूँ, पुजारी! मैं स्त्री हूँ, मैं अकेली हूँ।'

यह सुनकर पुजारी चुप हो गया। वह रेणु की अन्तिम बात को लक्ष कर नदी की ओर देखने लगा।

इसके बाद दोनों उठ लिये और घर की ओर चल दिए। जब दोनों घर पहुँचे, तो उन्हें देखते ही बाबा ने पुजारी से कहा—'महीदपुर से दो आदमी आए हैं। वह तुम्हें पूछते हैं।'

रेणु ने कहा—'उन्हें ले आओ।'

पुजारी बोला—'जाने क्यों आए हैं, यह आदमी?'

रेणु ने कमरे की ओर जाते हुए, हँस कर कहा—'पुजारी से कुछ माँगने आये होंगे और क्यों आते?'

उसी भाव में पुजारी ने कहा—'पुजारी के पास क्या है, जो दे ? जब भी उस गाँव के लिए जरूरत पड़ी, तो स्वयं पुजारी तुम्हारे द्वार पर आया। इसने तुम्हीं को आकर कष्ट दिया।'

उसी समय बाबा दोनों व्यक्तियों को ले आया। उन्हें देखते ही पुजारी ने पूछा—'चौधरी कैसे आए ?'

उनमें से एक पुजारी का परिचित था। वही बोला—'गाँववालों का अपना दुःख रोने के सिवा और क्या काम है, पुजारी ! इधर दो-तीन फसल बिल्कुल नहीं हुई' और तुम तो जानते हो, किसान की औकात क्या, एक फसल बन जाय, तो मालामाल, पेट भर कर खानेवाला, और बिगड़ जाय, तो दाने-दाने का मोहताज। हमारा यही हाल है। रियासत वाले सुनते ही नहीं, वह मारते है। जेल में ठूँसते है। बहू-बेटियों की बेइज्जती करते हैं। घर में खाने को नहीं, बच्चों के लिये मा के स्तनों में दूध नहीं, उनकी इज्जत ढकने के लिये कपड़ा नहीं। पुजारी......'

पुजारी ने कहा—'लेकिन मै क्या करूँ, चौधरी। रियासत से कह नहीं सकता। पुजारी कुछ दे नहीं सकता। यह स्वयं कंगाल है। तुम्हें क्या दे ?'

चौधरी नें कहा—'यह सब जानकर भी, हम यह जानते हैं, चाहो तो तुम जरूर कुछ कर पाओगे। रियासत से भी कह पाओगे तुम।'

'मैं अभी बीमारी से उठ पाया हूँ, चौधरी। अभी कमजोर हूँ।'

'हाँ, यह तो सुना।'—चौधरी ने कहा—'पर हम देहाती, हम बैल और खेत की मिट्टी के साथ रहने वाले, जब दुःखी होते हैं, जब सूखी रोटियों के लिये भी मोहताज होते है, तो आश्रय और सहायक ढूँढते है, पुजारी ! तुम वही हो। तुम हमारे सहायक हो। चाहो तो, कुछ करो। किसान कहता है और रोता है। यही इसके पास है। यह अपने आँसुओं में ही अपनी कहानी को पढ़ पाता है, पुजारी।'

उस क्षण पुजारी मौन था, वह गम्भीर हो गया था।

उसी समय रेणु ने उन किसानों की ओर देखकर पूछा—'आप क्या चाहते हैं, चौधरी ? पैसा ? या राज्य से कहना ? राज्य जब आपकी नहीं सुनता तो पुजारी की क्या सुनेगा ? यह तो देखते हो, पैसा पुजारी के पास नहीं है। तब ?'

यह सुन चौधरी चुप रहा, वह पुजारी की ओर देखने लगा।

रेणु ने फिर पूछा—'आप अभी गाँव से आ रहे हैं ?'

'जी, गाँव से।'

तब रेणु ने बाबा की ओर देखकर कहा—'इन्हें भोजन कराओ, बाबा ! रात

के सोने का प्रबन्ध करो।' और उनसे बोली—'अब आप भोजन कीजिए, आराम कीजिए।'

बाबा ने कहा—'हाँ, आओ, चौधरी, थके होगे!'

जब वह बाबा के साथ चलने को प्रस्तुत हुए तो एक ने पुजारी की ओर देखकर फिर कहा— 'हमें सुबह ही लौट जाना है।'

पुजारी ने कहा—'अच्छा, अच्छा।'

वह किसान फिर बोला—'जो भूख से और रियासत के कष्टों से मर रहे हैं, और मरने जा रहे है, वह बच जाएँगे तो बड़ा उपकार होगा।'

रेणु ने कहा—'विश्वास नही होता, समझ मे नही आता, इतना कठोर और संगदिल है रियासत का मालिक—वह राजा।'

यह सुनकर दूसरे ने कहा—'मालकिन, तुम देखो तो समझो, उस राजा का रूप। दिन भर शराब पीता है, उसी में डूबा रहता है। यह अपने सामने किसानों को पिटवाता है, लगान की वसूली कर इन्हें जमीन पर रिगसवाता है। वह आदमी नहीं हैं। वह पत्थर है, वह जानवर है।'

'अच्छा, अब आराम करो, तुम।' रेणु ने कहा।

उनके जाने पर पुजारी की ओर देखकर रेणु ने पूछा—राजा ऐसा है? तब, तो नीच है, वह। शैतान है, वह।'

पुजारी ने कहा—'राजा और अमीर इसी प्रकार धनवान् बनते हैं, रेणु! उनकी यही रीति है।'

'तुम जा सकोगे? रेणु ने कहा—अभी नहीं। 'अभी कमजोर हो। अभी किसी भी काम के लिये असमर्थ हो, तुम।'

रेणु की बात सुनने के बाद पुजारी कुछ क्षण नहीं बोल पाया। वह कमरे की खिड़की के बाहर देखने लगा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'मैं बहुत सोचता हूँ कि यह मानव, जो धर्म और ईश्वर को मानता है, उसका प्रेरक और उपासक कहा जाता है, पर क्या यह एक दिन भी ऐसा सिद्ध हुआ,—कभी नहीं।' उसी क्षण उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'लोग मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजों में जाते हैं, वहाँ अपने भगवान् की पूजा करते हैं, अपने को धार्मिक और सहिष्णु बनाने के लिये उस ईश्वर की कल्पना में लोग उन पत्थरों पर सिर टेकते हैं,—आखिर क्यों? वह अपने में दया, ममता और मनुष्यता पाएँ, इसलिये। लेकिन अब तक तो ऐसा नहीं हुआ। उन सभी में से एक भी ऐसा आदमी नहीं दीख पड़ा। सभी कोरे दम्भी और पाखण्डी हैं ये लोग।'........

उस क्षण पुजारी अत्यधिक गंभीर हो गया था। उसका मुँह भी लाल हो

चला था। वह कुछ ही देर बाद फिर बोला—'रेणु, मैं जब-तब देखता हूँ कि कुछ हैं जो महलों, बंगलों में बैठकर जीवन के सुखपूर्ण दिन बिता रहे हैं, जिनके विपरीत उनके क्रीतदास रहने को स्थान नहीं पाते और खाने को भोजन, तो सचमुच ही आत्मवेदना और तड़पन पैदा होती है। ईश्वर के खुले साम्राज्य के नीचे ही, इस विश्व में जो गौरव दिखाई देता है, वह जैसे आदियुग से चला आया है। दिखता है यह ऐसे ही चलेगा, यह कभी भी नहीं रुक पाएगा। हम अपने उन्मादित स्वत्व को सदा स्वेच्छापूर्ण मनोवृत्ति आश्रित किये आए हैं। हमारा यही अवलम्ब है।'

रेणु ने कहा—'तुम भ्रम में हो। तुम दुनियाँ की तस्वीर का एक ही पहलू देखते हो। दूसरी ओर भी देखो, पुजारी।'

पुजारी ने कहा—'वह पहलू तो काला और भयानक है, रेणु! धनिकों ने, उसे दबा दिया है, उस पर पर्दा डाल दिया है। सदियों से उसकी दबोची और कुचली हुई आत्मा आज निःशक्त बन गई है। पर मैं तो कहता हूँ, धनिक-समाज, आज तक भ्रम में रहा है। वह अपनी शांति को बेचकर जिस बेचैनी को अपने हृदय में बैठी देखता है, वही उसका काल है। दूसरों को सताकर दूसरों को कष्ट देकर वह कभी भी जीवित और सुखी नहीं बन सका है। वह धन के हाथों बिक गया है। उसने एक अमूल्य वस्तु को खोकर पत्थर उठा लिया है। वह धन पाकर जिन आदमियों में मिलना और बैठना चाहता है, वह उन्हीं से दूर हो गया है,—बहुत दूर। अपनी दिशा को लक्ष कर वह जिस स्पर्धा के साथ आगे बढ़ा है, सचमुच ही, वह उससे कहीं अधिक पीछे हो गया है, रेणु। वह अन्धकार में जा पड़ा है। वह चाँदी-सोने की उजाली में भ्रमित हुआ। उसे ही चन्द्रमा की शीतल और मन्द चाँदनी समझने लगा। आज वह स्वयं दीन है। वह खोया-खोया-सा आज इस स्थिति में आ गया है कि बात करता है, तो जैसे झल्लाता है, काटने या मारने चलता है। बस, यही उसका ज़ुल्म है, यही पाप।'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'अच्छा, अच्छा, कहना क्या है? तुम्हें करना क्या है?'

पुजारी ने कहा—'इन गाँववालों की बात सुनो। चाहो तो कुछ दो।' उसी समय बाबा ने आकर पूछा—'भोजन लाऊँ?'

'ले आओ।' रेणु ने कहा।

बाबा चला गया। रेणु ने पुजारी से कहा—'जैसा कहोगे, हो जायगा।' 'मैं भी देख आऊँगा।'

'अभी नहीं।'

यह सुनकर पुजारी चुप रह गया।

× × ×

पुजारी के कहने पर रेणु ने पाँच सौ मन अनाज अकाल-पीड़ित किसानों को दे दिया। पुजारी चाहता था कि वह स्वयं जाए और अकाल पीड़ित क्षेत्र को देखे। किन्तु वह रेणु की इच्छा पर रुका था। इधर कई दिन से उसके सामने यह प्रश्न बना था कि वह अपनी दिशा का, अपने पथ का स्वयं निर्माण करे और उस पर चले। परन्तु वह अनुभव करता था कि वह स्वतन्त्र नहीं है, वह रेणुबाई पर आश्रित है, वह उसी की इच्छा पर केन्द्रित है। उसकी परिस्थिति में गम्भीर परिवर्तन हो गया है।

जब-तब पुजारी यह सोचता और देखता, तो उसे यह अच्छा नहीं लगता। वह अनुभव करता कि स्वतन्त्र वायु के पास से उठकर एकान्त में बैठ गया है। वह सोने-चाँदी की दीवारों से ढँक गया है। उसका दम घुटने लगा है। वह यह भी देखता है कि वह दिन-पर-दिन रेणु का आभारी और कृतज्ञ बन रहा है। उसके कहने पर ही, वह जो धन दे रही है और देती जा रही है, उसे क्या भूल जाए वह? पुजारी सोचता है कि वह नहीं भूल पाएगा। वह रेणु के इस आभार की किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं कर पाएगा।

तब? तब पुजारी अपने से कहता—रेणु अपनी इच्छा चाहती है, तुम अपनी। होगी एक ही, तुम्हारी या रेणु की।

पुजारी एक दिन भी नहीं कह पाया कि वह किसे अपनाए, अपने को या रेणु को, रेणु को अपनाया, तो वह जो सोचता और समझता है, उससे दूर हो जायगा। उसकी भावनाएँ, उसके आदर्श सब नष्ट हो जायेंगे। अब तक के जीवन में वह जिस मानसिक सम्पत्ति को सँजोए था, निश्चय ही उससे छूट जायगा। तब यह आज का पुजारी नहीं रहेगा। वह होगा जमींदार रेणु का पति, धनिक-वर्ग का एक और नया सदस्य।......

पुजारी अपने से पूछता—'जिसके लिये आज उपेक्षा है, जो जीवन के लिये कलुषित है, तुम उसी को पाना चाहते हो, पुजारी? उसी को? वह कहता, नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। यह पुजारी के लिये नहीं हो सकता। तब?'—वह फिर प्रश्न करता—'तब क्या रेणु को ठुकरा पाओगे, पुजारी! इसके सभी आभारों को भूल जाओगे तुम! नहीं, पुजारी, रेणु कोमल है। इस अपमान से, तुम्हारी इतनी भर्त्सना से यह तिलमिलायेगी, यह अपने में टूट जायेगी,—वह मर जायगी।

यह सोचते ही पुजारी असह्य हो जाता। एक दिन जब वह इसी विचार में बैठा था, तो तभी वह अपने जीवन के साथ-साथ मानव की दीनता और अपवशता

को देख उसकी व्यवस्था को लक्षित करता हुआ बोला—जब मनुष्य इतना दुःखी है, तो यह सब क्यों ! यह स्त्री, यह बच्चे......

और उसने कहा—वह माँ, जब इस बात को समझती है कि उसके जीवन का ध्येय और कुछ नहीं है कि वह कुछ दिन जिए और हवा के झोंके के साथ उड़ जाए तब वह अपने दुर्दिन को अपनी छाती के अन्दर दबाए ही, एक फूटे हुए फोड़े की तरह रिस-रिस कर प्राणों का अंत करे और चल दे। मैं पूछता हूँ, उसे क्या अधिकार है, उसे क्या लालच है, कि सन्तान का निर्माण करे। वह क्यों प्रसव-वेदना सहे, वह क्यों बच्चे को नौ मास पेट में रखे और पाले-पोसे, और क्यों इतना कष्ट सहन करे ?

वह स्वयं ही बोला—'वह माँ बनना चाहती है। एक स्त्री अपने साथ यह जन्म की सौगात लाती है कि उसमें इच्छा हो, कि वह माँ हो, उसकी गोद सूनी न हो।......'

यह कहने के साथ पुजारी जाने कैसी ईर्षा और उपेक्षा-भरी मुसकराहट से मुसकरा कर फिर बोला—'स्त्री की इस चाह का जब अंत नहीं है, तो मानव की यह दीनता और परतन्त्रता भी सीमाहीन है, पुजारी ! यह ऐसे ही रोएगा, यह ऐसे ही तड़पेगा......।'

उसी समय उसने देखा कि रेणु कमरे के द्वार पर खड़ी है। वह उसी की ओर देख रही है। देखते ही चौंक कर पुजारी ने कहा—'आओ, रेणु, आओ।'

पुजारी के उस स्वर को सुन रेणु ने हठात् मन में कहा—'निश्चय ही किसी विचार है पुजारी।' कहते वह कमरे में आई और पुजारी के सामने की कुर्सी पर बैठ गई।

उसी समय पुजारी ने फिर कहा—'तुम आईं और आकर खड़ी हुईं, और मैं तब भी अजान। सच, हाँ, मैं ऐसी ही बात में उलझा था। मैं उसी में लीन हो गया था।'

'कैसी बात थी ? बहुत गहरी थी ? किसी को न बताने वाली थी, क्या ?'

'नहीं, नहीं, रेणु उसे मैं स्वयं ही नहीं समझा। पर अब तुम आई हो, तो समझा हूँ कि स्त्री का रूप ही यह है कि वह मनोरम हो, वह माँ हो।'

'जी'—कहते हुए रेणु ज़ोर का ठहाका मार कर हँस पड़ी। वह देर तक हँसती रही। तब कहीं देर बाद वह पुजारी की ओर देखकर बोली—'तुम यह सोचते थे,—यह। यह तो घर की कहारिन, रमिया की माँ बता देती। वह बहुत अच्छी तरह तुम्हें माँ के अर्थ समझा देती, पुजारी ! वह कई बच्चों की माँ है।'

यह सुनकर पुजारी स्वयं अपने में लजा गया। वह रेणु से जो कहने चला

था, फिर उसे नहीं कह पाया। उसने जब दूसरी बार रेणु की ओर देखा, तो उसे अपनी ओर मुसकराती देख, बरबस ही उसके मन ने कहा—'इस रेणु का हँसना और मुसकराना ही काम है। इसने यही पाया है।'

उसी समय रेणु ने कहा—'किस उलझन में हो, पुजारी? यह रात दिन का सोचना और अपने अन्दर-ही-अन्दर घुलना छोड़ दो। अपने स्वास्थ्य की ओर भी देखो।'

यह सुनकर पुजारी रेणु की ओर देखकर कठिनाई से मुसकरा दिया। वह मन्द-सा हँस भी दिया।

'तुम तो ईश्वर-भक्त हो, उस पर भरोसा करने वाले हो, परेशानी क्यों? रेणु ने हँसते हुए कहा—'तुम्हीं तो कहते हो, अपनी समस्याएँ, अपना जीवन सब ईश्वर के आधीन कर दो। सब उसी को अर्पण कर दो। तब यह क्यों?'

उसी हास्यमिश्रित स्वर में पुजारी बोला—'आजकल तो मैं ईश्वर की प्रभुता स्वीकार करता हुआ भी, इस आदमी को महत्व देता हूँ, इसी की प्रभुता स्वीकार करता हूँ।'

'क्यों? क्यों?' रेणु ने फिर हँसाते हुए पूछा।

यह सुनते ही पुजारी का हास्य लोप हो गया। वह एक बारगी माथे पर बल डालकर गहरी और स्थिर दृष्टि से द्वार के बाहर के अन्तरिक्ष की ओर देखता हुआ बोला—'यह आदमी अपने जीवन में अनेक रंग बदलता है, रेणु! जो आज निर्धन है, जो धनिकों के प्रति उपेक्षित और ईर्षालु है, वह कल धनिक की स्थिति में जाते ही वैसा ही न बन जायगा, यह अधिक अविश्वसनीय नहीं। परिस्थिति आदमी को ढालती है। यही इसे देवता और जानवर के नाम प्रदान करती है।'

रेणु ने जैसे पुजारी की बात का मर्म नहीं समझा। उसने कहा—'आखिर आदमी जानवर ही क्यों? देवता ही क्यों? यह आदमी रहे, यह आदमी की स्थिमि में रहे।'

'यह नहीं होगा, यह नहीं हो सकता।' पुजारी ने कहा।

'बताओगे, क्यों?' उसी क्षण रेणु ने पूछा।

पुजारी बोला—'आदमी परिवर्तन चाहता है। इसका यही स्वभाव है। जो आदियुग का प्राणी आज तुम्हें आदमी रूप में दिखाई देता है, यह अनेक रूपों में परिचर्तित हुआ है।'

यह सुन कर रेणु ने फिर भी परिहास के भाव में कहा—यह बुरा हुआ, यह अच्छा नहीं हुआ?'

तभी पुजारी ने रेणु की ओर देखा। वह उसके मुँह पर हँसी देखकर भी, अपनी बात नहीं रोक सका। उसने कहा—'हाँ, रेणु, आज का आदमी, यदि

लाखों वर्ष पहिले का आदमी होता, तो ठीक था। तब यह प्रसन्न था, सुखी था और संपन्न था। आज के प्रकाश से, यह तब के अन्धकार में अधिक सन्तुष्ट और सम्पन्न था।'

'तब आदमी अपने प्राण नहीं बचा सकते थे। उन्हें जंगल के हिंसक पशु मारते और खाते थे।' हठात् रेणु ने फिर कहा।

पुजारी बोला—'तब तो हिंसक पशु ही खाते थे, और अब? अब तो आदमी ही आदमी का भक्षण करता है।'

'ओह!'—रेणु ने एकाएक अपने हास्य को रोक कर क्षुण्ण भाव से कहा—'तुम सदा ऐसी ही बात सोचते हो।' तुम इसी में अपने को खपाते हो,—अच्छा!' कहते वह खड़ी हुई और जाने लगी।

'कहाँ चलीं?' पुजारी ने पूछा।

'मुझे काम है। मुन्शी का हिसाब देखना है।' द्वार के बाहर जाते हुए रेणु ने कहा।

तब पुजारी भी उठ लिया। वह खिड़की पर खड़े होकर बाहर दूर तक के जंगल की ओर देखने लगा। वह ऐसे खड़ा देखने लगा था, जैसे वह, उस क्षण निरुद्देश्य हो, विचारहीन हो।

× × × ×

अपने विचारों में लीन, पुजारी कभी कमरे की खिड़की के पास जाकर खड़ा होता था, कभी वहीं पर घूमने लगता था। तभी द्वार पर आये बाबा ने उसे इस प्रकार देख, क्षणेक रुकने के बाद कहा—'पुजारी—'

पुजारी चौंक गया, उसने बाबा की ओर देखा।

बाबा ने कहा—'किस विचार में हो, पुजारी?'

'मैं अभी बाहर जाना चाहता हूँ। रेणु कहाँ है?'

'मुन्शी के पास।'—बाबा ने कहा—'और तुम ऐसी धूप में जाओगे? कितनी दूर जाओगे?'

'दस-पन्द्रह कोस।'

'नहीं, पुजारी, अब नहीं। आज भी नहीं। कल सुबह।'

यह सुनकर पुजारी बाबा के सामने खड़ा हो गया। वह उसकी ओर देख, क्षण भर बाद ही बोला—'पुजारी तो पहिला पुजारी ही रहना चाहता है, बाबा। इसे वहीं रहने दो। धूप, जाड़े अमीरों और कोमल आदमियों को देखने और समझने दो। मुझे नहीं।'

बाबा ने इस बात पर आगे नहीं कहा। पर जिस लिये पुजारी के पास आया था, उसी बात को लेकर बोला—'दिखता है, रेणु तुम्हारे ही पास से गई है।

जो गुस्से में गई है। वह मुन्शी को डाट-डपट रही है, कहती है, अनिल को क्यों रुपया दिया, क्यों फुवा को दिया ?'

'कितना रुपया दिया ?' हठात् अपनी बात भूलकर पुजारी ने पूछा।

बाबा ने कहा—'कई हजार, पुजारी ! पैसा, पैसे की राह थोड़े ही खर्च हुआ। पानी की तरह बहाया गया।'

'तो मुन्शी ने बुरा किया। उसने क्यों बिना आज्ञा के रुपया दिया। उसे रेणु से पूछना था।'

बाबा ने कहा—'मुन्शी निर्दोष है। वह बिना आज्ञा लिये कुछ नहीं करता। किसी को भी एक पैसा नहीं देता। पर लिखाया थोड़े ही है, उसने। बस, जबानी बात है। और रेणु ठहरी मालकिन, जो कहे और भूल जाये,—इसे कौन कहे ! वह क्षण में सख्त और क्षण में मुलायम। जब किसी पर नाराज़ हो, तो बस, जैसे वह कोई नहीं। और प्रसन्न हो, तो सभी कुछ वार दे, उसे निहाल कर दे। अभी उसी दिन, पण्डित रामदीन को निकाल दिया, उसका हिसाब करवा दिया। और तब ही दूसरे दिन उसे फिर बुलाया और रख लिया। जो सुना कि उसकी लड़की का ब्याह है, तो बिना माँगे, बिना उसके कहे ही, दो सौ रुपये दिये, तनख्वाह अलग।'—उसके बाद ही उसने फिर कहा—'पर जब झुँझलाती है, जब किसी बात को मन में लिये रहती है, तो उसका गुस्सा अपने नौकरों, मुन्शी और कारिन्दों पर उतारती है।'

पुजारी चुप था। वह सामने के एक कमरे की खिड़की के शीशे की ओर देख रहा था। उसका ध्यान बाबा की बात पर था।

बाबा ने फिर कहा—'जो फुवा अनिल को साथ लाई, वह भी कम रुपया नहीं ले गई। अनिल उसका सम्बन्धी है। पास का नातेदार है।' कहते बाबा दूसरी ओर जाता हुआ बोला—'आज मत जाना पुजारी, आज नहीं।'

बाबा के बाद भी पुजारी पूर्ववत् खड़ा रहा। वह उस सामने के लाल शीशे की गहराई को स्थिर दृष्टि से देखता हुआ मन में बोला—'रेणु की तरह सभी धनिकों का यह स्वभाव है। वह जिस पर प्रसन्न हों, तो निहाल कर दें और नाराज़ हों, तो पीस दें, उस निर्दोष प्राणी को कुचल दें।'—उसने कहा—यह कैसी दासता है ? लोगों का यह कैसा संदिग्ध और वीभत्स जीवन है जो दूसरों की दया और कृपा पर जीवित हैं ? जो उसी ओर देखता है, चकवे की तरह, जो रात-दिन आकाश की ओर मुँह किये बैठता है………!

यह सोचते, पुजारी क्षण भर में अधीर बन गया। वह कमरे के अन्दर जाकर कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—'रेणु, रेणु है। तुम, तुम। और भिखारी ! और वह अमीर है, कई गाँवों की स्वामिनी है। जो अब तक पचासों नौकरों पर शासन करती

आई है, वह शासक है। पैतृक-सम्पत्ति की इसी सौगात से रेणु का स्वभाव बना है। और तुम हो, अनायास ही, इसके पास आ गये हो, तुम दूसरी सहानुभूति और प्रेम पा गये हो, पुजारी! पर जो अहं है, रेणु में जो जमींदारी का भारीपन है, वह तुमसे नहीं मिल पायेगा, तुमसे नहीं निभ पायेगा। क्षण भर का प्रेम, आदर्श और सुन्दर भावनाओं का रूप ही तो जीवन नहीं है, वह ही तो जीवन की वास्तविकता नहीं है, पुजारी!......

उसी स्थिति में पुजारी उठा और बाहर चल दिया। वह रेणु के पास जा बैठा। रेणु मुन्शी का बही खाता देखने में लगी थी। उसने पुजारी की ओर नहीं देखा। उसे कार्य में व्यस्त देख पुजारी उठ लेना चाहता था, पर वह नहीं उठा। रेणु के सिर से खिसक आई धोती के छोर को नीचे पड़ा देख, पुजारी यह भी देखने लगा था कि उसके मुँह पर पसीने आ गये हैं, सिर के बाल इस-उस ओर बिखर गए हैं। वह कभी हवा के झोंके से हिलते हैं और आँखों के आगे फैलते हैं। उस दृश्य को देख, मन के अन्दर से प्रसन्न और एकाएक स्वस्थ हो आये मन से पुजारी ने रेणु की ओर देखकर कहा—'रेणु उठो। अब भोजन की सुध लो।'

रेणु ने बही-खाते की ओर देखते हुए ही कहा—'तैयार होगा। तुम भोजन करो।'

'तुम भी उठो। यह बही खाते का समय नहीं है।' कहते उसने बही को खेंच लिया और अलग रख दिया।

रेणु ने कहा—'जरूरी काम था! यह आज ही देखना था, इन मुन्शी महा-राज ने सभी कुछ किया, जो जिसने माँगा, उसे दे दिया।'—यह कहते ही उसने मुन्शी से कहा—'यह हिसाब मुझे एक कागज पर उतार दीजिए, आजही। आपने जो किया, अच्छा किया। रेणु ने तभी पुजारी से कहा—'कुछ सुना, तुमने! मुन्शीजी की कृपा पर मैं कई हजार की चपत खा गई।'

उस समय पुजारी नहीं चाहता था कि वह मुन्शी के सामने ही रेणु से कुछ कहे। किन्तु जब बात चली, उसके सामने ही, रेणु फिर मुन्शी के ऊपर आरोप देने लग गई, तो वह मौन हुए उस वृद्ध मुन्शी की दीनता को देख, रेणु की ओर देखकर बोला—'मुन्शी ने जो कुछ दिया है, वह तुम्हारी आशा पर दिया। तुम भूल जाती हो। तुम व्यर्थ ही, अपने आदमियों पर क्रोध प्रगट करती हो, रेणु!'

यह सुन कर रेणु ने आश्चर्य से पुजारी की ओर देखा। उसे पुजारी से यह सुनना भी रुचिकर नहीं लगा।

उसी समय पुजारी ने फिर कहा—'रेणु, तुम समझती हो, यह भूखा और निर्धन पुजारी, बिलकुल नहीं जानता कि किस प्रकार रुपया आता है और जाता है।

यह भी इसी दुनियाँ में पदा हुआ हैं। मैं कहता हूँ, यदि तुम्हारी फुवा और अनिल-बाबू जैसे शुभचिन्तक दो-चार बार और आये-गये, तो निश्चय ही तुम्हारी जमींदारी भी बिक जायेगी, यह एक दिन चली जायेगी।'

यह सुन कर भी रेणु कुछ नहीं बोली। वह खड़ी हो गई। पुजारी भी उठ लिया। तभी अपने कमरे को ओर जाते हुए कहा—'इस जमींदारी और रुपये ने मुझे पागल बना दिया है।'

यह सुनकर पुजारी हँस दिया।

रेणु ने फिर कहा—'जो शांति है, जो जीवन-सुख है, वह मुझ मे दूर ह।'

तब उस क्षण पुजारी एकाएक नहीं बोल पाया। वह रेणु की ओर देखने लगा, जो अपनी बात कहने के साथ, काऊच पर इस प्रकार गिर गई थी, जैसे सचमुच ही, उस क्षण वह निस्सहाय और दीन बन गई थी। जिसमें जाने कब की,—उसके किस क्षण की दीनता और अपवशता साकार और मूर्तिमान हो उसके सामने आ गई थी, जो उसे सम्बोधन कर कह रही थी, और कह रही थी अरी रेणु तू! तू!...... '

रेणु की उस दशा में ही पुजारी ने देखा कि उसकी आँखों के पीछे जो एक साँवला और सलोना रूप है, वह भी जैसे दम भर में सिकुड़ कर सकुचा गया है। वह किसी वेदना में दब गया है।

यह देख पुजारी बरबस ही ममता से भर गया। वह आकुल और व्यग्र हो गया। रेणु की उस दयनीय स्थिति को लक्ष करते ही, वह बोला—रेणु—

किन्तु रेणु को मौन हुई देख उसने फिर कहा—'दीखता है, तुम अशान्त और व्याकुल हुई हो। यह तुम्हें नहीं रुचता, तुम्हें शोभा नहीं देता; ईश्वर के जिस आशीष को पाकर, तुम एक सुन्दर और सुकोल नारी बनी हो, जो अपने हृदय में दया और मतता लिये हो, बताओ तुम्हें कैसे उचित है कि ऐसे जीवन को अर्थहीन वेदना और व्याकुलता में काट दो। दुनिया पैसा चाहती है। इसी से अपनी आवश्यकताएँ पूरी करती है। परन्तु एक तुम हो, जो भाग्य से पैसा पाकर भी, सुख-सम्पन्न होकर भी, सुखी और प्रसन्न नहीं हो। आखिर क्यों? मैं कहता हूँ, तुम जो व्यर्थ की बातें अपने साथ लिये हो, उन्हें छोड़ दो। पुजारी और अनिल की कल्पना भी छोड़ दो। तुम केवल अपनी ही ओर देखो, अपने जीवन को देखो, रेणु।'...कहते हुए पुजारी ने कमरे की खिड़की के बाहर देखा, जो सामने के बगीचे में जूही, चमेली और चम्पा के फूल खिल रहे थे, जो अपनी मादक गन्ध से उस कमरे को भी सुगन्धित कर रहे थे, वह उसी ओर देखते हुए फिर बोला—'एक नारी से,—तुमसी एक नारी से—कोई भी यह आशा करेगा कि तुम्हारे जीवन में जो इन जूही और चमेली के सदृश परिमल गन्ध है, वह दबी न रहे, वह अपने आस-पास के सभी को सुवासित कर पुलकित करती

रहे। धन दोनों ही काम करता है। यह आदमी को देवता भी बनाता है और राक्षस भी। पर तुम्हारे लिये यह शोभनीय कहाँ है? तुम स्त्री हो। तुम स्वयं देखो हो। तुम अपने इसी पथ की अधिकारिणी हो, रेणु।......

उसी समय रेणु ने साँस भरी और छोड़ दी। वह तब पुजारी की ओर देखने लगी।

उसी ओर देखते हुए पुजारी फिर बोला—'जो क्रोध तुम्हें मुझ पर आया था, वह मुन्शी पर उतार दिया। पर मुझे तो सुख मिलता, जो मुझसे ही कहा जाता, वह मुझे ही दिया जाता। मैं स्वयं जानता हूँ कि मुझ में बहुत से दोष हैं, पर उनको ढककर उनके प्रति उपेक्षित बनकर तो मेरा कुछ भी लाभ नहीं हो पाएगा। तुम्हारी तरह मैं भी अन्धकार में रहूँगा। मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारे अन्दर जो ज्योति है, उसे मुक्त करो, उसी के प्रकाश में इस पुजारी को भी अपना पथ देखने दो, तुम्हारे समीप आकर, जाने किस-किस जन्म के पुण्य और अनुष्ठानों से निर्मित मैंने यह सुयोग पाया है, कि भिखारी, अपने जीवन में निपट शून्य यह पुजारी तुमने अपना लिया है। इसे तिरस्कृत और उपेक्षित करने से पूर्व, तुम इसे विष दोगी, तो यह स्वीकार कर लेगा, रेणु! मैं जीवन में धन तो नहीं पा सका, परन्तु अपनी जिन भावनाओं पर आश्रित हुआ, इस जीवन की टेक पर टिका हूँ, उनसे मैं विश्व भर का साम्राज्य पाकर भी नहीं छूटना चाहता। उन्हें मैंने तुम्हारे पास बैठाकर समझा है, और पाया है।

तभी जाने अपनी किस भावना से भर रेणु ने उठकर सामने बैठे पुजारी के पैरों को पकड़ लिया। वहीं पर बैठकर उसने कहा 'मुझे क्षमा करो पुजारी!'

पुजारी ने कहा—'तुमने मुन्शी को डाटकर अच्छा नहीं किया। वह वृद्ध है, वह तुम्हारे पिता के समान है। मैं कहता हूँ, यह सभी व्यक्ति तुम्हारे परिवार के अङ्ग हैं। तुम्हारे शुभेच्छु हैं।'

'मुझे दुःख है, पुजारी! फुवा और अनिल ने पैसा बहुत खर्च किया।'

पुजारी ने रेणु को ऊपर उठाकर कहा—'जो हुआ, हुआ। अब यह भी नहीं कि अनिल आए और तुम उससे कहो, तुम उससे अपने पैसे के लिये झगड़ो। फुवा तो तुम्हारी अपनी ही हैं।'

उसी समय द्वार पर आकर बाबा ने भोजन के लिये पूछा जिसके उत्तर में पुजारी ने लाने के लिये कह दिया। तब रेणु मुँह-हाथ धोने के लिये बाहर चली गई। जिसके जाते ही पुजारी ने अपने आप कहा—'रेणु भोली है। वह गंगा के जल की तरह पवित्र और निर्मल है।'...

× × ×

दूसरे दिन के प्रातः जब पुजारी बाहर जाने के लिए तैयार था और अपने झोले में निर्जी किताबें रख रहा था, तो उसी समय रेणु ने उसके पास आकर कहा—'मैंने ड्राईवर को बुलाया है, वह तुम्हें गाँव पहुँचा आएगा।'

यह सुनते ही पुजारी ने विस्मय से मुसकराकर कहा—'मुझे ड्राइवर कहाँ-कहाँ पहुँचाएगा। मैं बैठने नहीं जा रहा। काम करने और जहाँ-तहाँ चक्कर काटने जा रहा हूँ। मोटर आज पहुँचा देगी। और कल? मुझे पैदल जाने दो, रेणुबाई मुझे यही शोभता है। जिन व्यक्तियों के पास मुझे जाना है, वह भूखे और अपङ्ग हैं, उनके बीच में मोटर लेजाकर, उनकी आत्मा को ठेस पहुँचाना है। अपने को कौतुक-सा, उनसे दूर का, अपने आप ही एक बड़ा आदमी सिद्ध करना है। यह बुरा है।'

रेणु ने निराश होकर कहा—'तो पैदल जाओगे! आओगे कब?

'मैं जल्दी आऊँगा। किसी कार्यवश रुक गया, तो तुम्हें सूचना दूँगा।' कहते हुए पुजारी ने कन्धे पर झोला डाल लिया और हाथ में डण्डा।

रेणु ने फिर कहा—'इसी सप्ताह में लौट आना।'

'अच्छा, अच्छा।' कहते पुजारी चलने के लिये उद्यत हुआ। वह रेणु की ओर देखकर मुसकराया।

रेणु ने कहा—'अब मन नहीं लगेगा। अकेले में उचाट-सा रहेगा।'

'मैं जल्दी आऊंगा, बहुत जल्दी।' कहते वह द्वार से निकल लिया।

उसी समय बाहर के द्वार पर जाकर बाबा ने कहा—'जल्दी लौटना पुजारी, बहुत जल्दी!'

'हाँ, हाँ, बाबा, जल्दी आऊँगा।' कहते हुए वह मकान से बाहर हो गया और चल दिया।

कोई तीन-चार घण्टे बाद पुजारी लक्षित किये हुए गाँव पहुँचा। उस गाँव के प्रति वह अपनी जिन कल्पनाओं को लिये पहुँचा था, जाकर देखा, वह उससे भी अधिक गंभीर और असहनीय थी। किसानों के पास अन्न का दाना नहीं था। जागीरदार का कर सिर पर चढ़ा था। जिसके लिये उन्हें पीटा जा रहा था और जेलखाने भेजा जा रहा था। वहीं पर पुजारी को ज्ञात हुआ कि जागीर में एक नया मैनेजर आया है, जो अनिल बाबू है। किंतु यह पुजारी को कुछ देर बाद पता चला कि वह उसका परिचित अनिल बाबू है, जो मैनेजर है।

पुजारी चाहता था कि किसानों के कुछ व्यक्तियों को साथ लेजाकर जागीरदार और अनिल बाबू से मिले। उन्हें वस्तुस्थिति समझाये। किंतु वह अभी गाँवों में घूमकर लोगों को शान्त रहने और संगठित रहने को कह रहा था कि एक दिन

जागीर का हलकारा उसे बुलाकर ले गया। उसे जागीरदार अथवा मैनेजर से मिलने से पूर्व ही, पुलिस द्वारा वारन्ट दिखाकर हिरासत में ले लिया गया।

एक सप्ताह बाद अदालत में जाकर पुजारी को बतलाया गया कि वह जागीर के किसानों को भड़काने और उन्हें कर न देने की सलाह देने पर गिरफ्तार किया गया है। जब मजिस्ट्रेट ने उससे अपने अपराध के लिये क्षमा माँगने और कुछ कहने के लिये पूछा तो पुजारी ने अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप ६ मास की सजा देकर उसे जेल भेज दिया गया।

इसके बाद ही रेणु को पता चल गया कि पुजारी जेल में है। उसे ६ मास की सजा मिली है। पुजारी किस अपराध में जेल गया है, उसे क्यों सजा दी गई है, जब यह इस बात पर आई तो उसे पुजारी द्वारा कही बात स्मरण हो आई कि आदमी देवता भी है, और राक्षस भी। उसने कहा— पुजारी को सजा दिलाने वाला जमींदार राक्षस है, वह निकम्मा और क्रूर है।…

उसी दिन बाबा ने रेणु से कहा—'तुमने सुना बिटिया, पुजारी को जहां सजा मिली है, अनिल बाबू वहां मैनेजर हुए हैं। यह उन्हीं का काम है।'

यह सुन कर रेणु ने कुछ नहीं कहा। उसने बाबा की ओर भी नहीं देखा। बाबा कुछ और कह रहा था कि तभी दूसरे नौकर ने रेणु से आकर कहा—'अनिल बाबू आये हैं, आपको पूछते हैं।'

रेणु ने आश्चर्य से कहा—'अनिल बाबू आये हैं! बुला लाओ।'

अनिल आया। वह नमस्ते कर कुर्सी पर बैठ गया। अपने टोप को टेबिल पर रखते हुए उसने रेणु से स्वास्थ्य के लिये पूछा। उसने जेब से सिगरेट केस निकाल कर एक सिगरेट लाते हुए कहा—'तुमने शायद नहीं सुना, जो महीपुर की जागीर है, उसका मैनेजर पृथक् हो गया है, वह पद अब मुझे मिल गया है। मैं अब तक उसी में व्यस्त रहा। तुम्हें कोई भी पत्र न दे सका।' इसके बाद ही उसने सिगरेट फेंक कर फिर कहा—'और सुना होगा कि पुजारी जेल चला गया। सच यह है कि वह अपने-आप ही चला गया। उससे कहा कि भाई, यह जागीर है, सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं, तुम क्यों बीच में पड़ो। पर वह नहीं मान सका। वह किसानों को यह कहे बगैर नहीं रह सका कि कर मत दो और तुम तो जानती ही हो, कैसे हैं इन जागीरों के मामले! रुपये का रुपये से काम चलता है! पुजारी की तरह तो सबको दुनिया से विरक्त और साधु नहीं होना है। तुम्हारे ही किसान जब लगान नहीं देंगे, वह किसी के बहकाने पर तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनेंगे, तो सोचलो, क्या परिणाम होगा? या तो तुम स्वयं भूखी मरो, या जागीर को बेचकर सरकार का पेट भरो। मैंने पुज़ारी से कहा भी कि क्षमा माँग लो। जागीर में फिर न आने के

लिये कह दो। पर पुजारी जो ठहरा, जो सोचा, वही किया। इससे आगे मैं कर ही क्या सकता था! मैं वैसे ही नया आदमी था।'

अनिल द्वारा सुनी हुई सफाई को लक्ष कर रेणु ने देर की रुकी हुई साँस को तोड़ दिया और कहा—'धनवान् सदा निर्धनों और आश्रितों को झुकाते और सताते आये हैं। आज भी यही परिपाटी है। पर ऐसा कब तक चलेगा। एक दिन यह निर्णय अवश्य होगा।'

अनिल ने कहा—'यह सम्भव नहीं दीखता, रेणु। दुनिया कई भागों में विभक्त है? इसकी यही आदि-परिपाटी है। दुनिया इसी की अभ्यस्त है। वह नहीं चाहती है।' ....'

यह सुन कर रेणु ने सूखी मुसकराहट के साथ कहा—'अब तक ऐसी प्रकृति नहीं आई थी अनिल बाबू! वह अब आई है। जो समाज अब तक अन्धकार में रहा है, उसे प्रकाश में आना है। वह अब जागरण के युग में आ गया है।' उसने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'आज दुनिया बदल रही है। सभी जगह क्रांति और शाँति के अँकुर उग आये हैं। मगर देर क्यों?' निश्चय ही यह निर्धनों के शोले अमीरों को फूँक देंगे, इन्हें एक-न-एक-दिन मिटा देंगे।...

उसी समय बाबा ने चाय का सामान और मिठाई टेबिल पर लाकर रखी। उसने प्यालों में चाय उँड़ेल दी, टेबिल रेणु और अनिल के बीच में सरकादी।

रेणु ने फिर कहा—'पुजारी ठीक ही कहता था कि इस प्रथा ने आदमी को आदमी नहीं रहने दिया है। इसे जानवर और निकम्मा बना दिया है।'—उसने कहा—'यह कितना बीभत्स और हृदयहीन दृश्य है कि लोग ठाठ से रहते और मोटरों में घूमते हैं। बंगलों और महलों में रहते हैं। और एक वह हैं, किसान और मजदूर, जो सदा परिश्रम करके भी मूर्ख रहते हैं। वह दरिद्रनारायण हैं। वह दुनिया के पालक कहे जाते हैं और इन्हीं अमीरों द्वारा कहे जाते हैं। पर कितना झूठ है? यह कितना पाखण्ड और दम्भ है? भूखों भी मारें, जुल्म भी करें और उन्हें अपना पालक भी कहते जायें।'...

चाय पीते हुए अनिल बोला—'रेणु, समाज के जितने आदर्श हैं, वह सभी व्यवहार में नहीं आते। बस केवल कहे जाते हैं और सुने जाते हैं। आज के निर्धन कल को धनिक बन कर ऐसे ही नहीं रह जायेंगे। वह निश्चय ही धनिक की मनोवृत्ति अपनायेंगे। धन नशीली शराब है, जो सभी पर अपना प्रभाव दिखलाती है और नशा करती है।

यह सुन रेणु ने फिर विचलित होकर कहा—'हमारा यही पाप है, जो हमें भोगना है, जो स्वयं हमीं को पाना है।'

यह सुनकर अनिल हँस दिया। वह एकाएक कुछ नहीं कह सका।

उसी समय नौकर ने अनिल से आकर कहा—'आपका ड्राइवर कहता है, रास्ता खराब है, दिन छिपने वाला है।'

यह सुनते ही अनिल उठ लिया। वह रेणु की ओर देखकर बोला—'अच्छा, आज आज्ञा दीजिये, आगे की बातें फिर।'

रेणु ने कहा—'आज ठहरिये।'

'आज नहीं! उसने कहा—'कुछ विशेष काम हैं, जो आज जाते ही करने हैं।' कहते हुए उसने अपना टोप उठा लिया और रेणु के साथ बाहर की ओर चल दिया।

द्वार पर जाकर रेणु ने कहा—'आइयेगा, मिलियेगा, जरूर।'

अनिल ने मोटर में बैठते हुए कहा—'जरूर! जरूर!'

अनिल चला गया। रेणु ने अपने कमरे में लौटकर अपने आप कहा—'यह तो सत्य है, जो आज निर्धन है, कल वह ही धनिक बनकर निश्चय ही पहला नहीं रह जाएगा। वह बदल जाएगा।'

तभी बाबा कमरे में आया उसने बाबा की ओर देखते हुए कहा—'क्यों बाबा, सच बताना, अगर तुम्हारे पास धन आजाए, तो क्या करो, उसका?'

बाबा एकाएक रेणु के प्रश्न का अर्थ नहीं समझ पाया। तब रेणु ने ही फिर कहा—'तब तो तुम खूब ठाठ से रहोगे, मोटर रखोगे, बड़ा ऊँचा महल बनाओगे, क्यों बाबा?'

बाबा ने कहा—'तुम अनिल बाबू की सुनी बात कह रही हो, बिटिया रानी! उन्होंने यही देखना और कहना सीखा है। उन्हें यही सुहाता है। पर बाबा क्यों? सभी उँगलियाँ समान थोड़े ही होती हैं, कोई छोटी कोई बड़ी।'

यह सुन रेणु जिज्ञासा के साथ हँसी।

बाबा ने कहा—'बिटिया रानी, यह तो अपनी-अपनी रुचि और इच्छा की बात है। ऐसे अमीर भी हैं, जो धन रहते हुये दयालु और गरीब-निवाज हैं। वह गाँव की सेवा करना ही अपना परम धर्म समझते हैं और एक……'

रेणु ने एकाएक कहा—'मैं यह नहीं मानती।'

'क्यों? क्या तुम नहीं मानतीं कि जो गरीब और निर्धन हैं, जो रोटियों से मोहताज हैं, अमीरों का उन्हें दुतकारना ही काम है। ईश्वर सबका एक है, बिटिया रानी! उसकी निगाह में सभी एक हैं।'

'पुजारी भी यही कहता है, और तुम भी यही।' कहते हुए वह शीघ्रता से दूसरी ओर चली गई। जबकि बाबा उसे ममता और हर्षभरी आँखों से देखता हुआ

क्षण भर को वहीं-का-वहीं खड़ा रह गया। वह आश्चर्य में था, वह चकित था। वह तब जैसे पुरानी रेणु को भूल कर नई रेणु को समझने में लीन हो गया था।

× × ×

अपनी सजा की अवधि पूरी कर पुजारी जेल से छूट आया। इतने समय में किसानों का आन्दोलन भी दब गया। उनकी कुछ माँगें स्वीकार कर लीं गईं। फल-स्वरूप जेल से बाहर आकर पुजारी फिर रेणु के गाँव लौट आया। किन्तु आने के बाद ही, एक दो-दिन में वह रेणु का घर छोड़ फिर मन्दिर में जा रहा। यह देख रेणु और पुजारी के सब परिचित सभी आश्चर्य चकित हुए। जब किसी ने पुजारी से पूछा तो उसने कहा—'मुझे मन्दिर में अच्छा लगता है। यहाँ लिखना-पढ़ना भी अच्छा होता है। नदी का तट है, शान्त और स्वतन्त्र वातावरण है।'

परन्तु बात ऐसी ही नहीं थी। वह केवल इसी भावना को लिये मन्दिर में नहीं जा बसा था। उसने देखा और अनुभव किया था, कि इतने बीच में अनिल बाबू पहले से अधिक रेणु के सम्पर्क में आ गये हैं। वह एक बड़ी जागीर के मैनेजर है। वह अब रेणु की स्थिति के बराबर हैं। वह अब रेणु के लिये सम्मानित और माननीय हैं। और जब से पुजारी आया, वह रेणु के घर रहा, शायद ही, दो-चार बार को छोड़ उसका और रेणु का साक्षात् हुआ हो। उसने अनुभव किया, अब रेणु अधिक व्यस्त और व्यावहारिक है। वह अपने काम में लीन है। पुजारी यह भी सोचता था कि रेणु जेल नहीं गई, उससे एक बार भी जाकर नहीं मिली। जो कई पत्र दिये, उसने केवल अपने एक पत्र में यही लिखा कि जब छूटो, तो सीधे घर चले आओ, मुझ से आकर मिलो। सो पुजारी आ गया। किन्तु आकर रेणु की इस नई व्यवस्था को देख, वह जहाँ आश्चर्य-चकित हुआ, वहाँ उसे सन्तोष भी मिला कि चलो, अनिल मैनेजर है, वह अब बड़ा आदमी है, वह अब रेणु के अनुरूप है, वह इतने समय में रेणु के अधिक पास आगया है। इसी से वह दूर हुआ। वह फिर अपनी सुनसान कोठरी में जा बसा।

बाबा ने एक दिन सुयोग पाकर रेणु से कहा—'पुजारी को यहीं क्यों न रहने को कहा, बिटियारानी! वह फिर मन्दिर के अकेले कोने में पड़ा है।'

यह सुन रेणु ने उदास और उतरे हुए मन से कहा—'पुजारी शून्यता चाहता है, उसे वही पसन्द है। वह यही करे और यही भोगे। मैं उसकी खुशामन्द नहीं करूँगी।'

यह सुनते ही क्षण भर को बाबा सन्न रह गया। वह अपनी बात कह कर मन में पछताया। वह डरा भी। वैसे उसे भी पुजारी के व्यवहार पर आश्चर्य था। किन्तु बात यहाँ तक बढ़ आई है कि वह कड़वी हो चली है, वह रेणु के मन में घर कर गई है, उसका बाबा को भी ज्ञान नहीं था।

इसी बीच में अनिल कई बार आया और गया। वह पुजारी के सामने भी आया। किन्तु पुजारी का और उसका साक्षात्कार भी नहीं हुआ। बाबा देखता कि रेणु अब अनिल के प्रति पहिले से अधिक मोहित और सलंग्न हो गई है। अब अनिल उसका अश्रित नहीं है। वह एक शानदार मोटर में बैठ कर आता है। वह एक-एक दो-दो दिन रेणु के यहाँ ठहरता है। रेणु के लिये वह नित-नये तोहफे और सुहावनी सौगातें लाता है। पुजारी कभी भी इनकी कोठी में नहीं दीखा। कदाचित् उसे अनिल के आने पर बुलाया भी नहीं गया।

एक दिन बाबा मन्दिर में जाकर पुजारी के पास पहुँचा। पुजारी उस समय देवता की पूजा कर, मन्दिर के द्वार पर खड़ा नदी की ओर देख रहा था। उसकी दोनों भौंहें चढ़ी थीं। तभी बाबा उसके पास जाकर खड़ा हुआ।

पुजारी ने उसकी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा—'कहो बाबा, रेणु अच्छी है। मैं तो कई दिन से नहीं जा पाया हूँ।

बाबा ने कहा—'हाँ, तुम इधर नहीं आ पाये हो, आये ही नहीं। शायद जान-बूझ कर नहीं आये, क्यों ? अनिल बाबू आये हुए हैं, कल आये हैं।'

पुजारी ने बाबा की पहिली बात छोड़ कर अनिल की बात पर कहा—'अनिल बाबू आये हैं, अच्छा !'

कहने के बाद पुजारी जब पूर्ववत् देखने लगा तो बाबा ने कहा—'क्यों पुजारी, क्या रेणु से कुछ कहा-सुनी हो गई ? कुछ हुई हो, तो भूल भी जाया करो। रेणु अजान तो है ही, उसमें लड़कपन भी है।'

पुजारी ने बाबा की ओर देखकर कहा—'ना, बाबा, मैं उस दिन तो रेणु के पास गया था। वह अपने कार्य में व्यस्त थी, बही-खाते देख रही थी। मैं कुछ देर बैठ कर चला आया था।'

'सो ही तो !'—बाबा ने तुरन्त कहा—'मैंने तो उस दिन समझा, दोनों जरूर कोई बात लिये हैं। भला रेणु तुम्हें देखकर बही-खाता देखती रहती। वह तुरंत सब छोड़ कर तुमसे बात करती। तुम मन्दिर में क्यों रहने लगे, रेणु यह नहीं चाहती।

'वह क्या चाहती है ?'

'तुम घर ही रहो, उसके पास रहो।'

पुजारी यह सुन कर मुस्करा दिया। उसने बड़े भोलेपन के भाव में बाबा की ओर देखकर कहा—'बाबा, तुम जैसा सोचते हो, मैं ऐसा नहीं समझता। रेणु के मन में मेरे लिये कोई दुर्भावना नहीं है। पर हम दोनों के लिये यही उचित और आवश्यक है कि दूर-दूर रहें। इसी से, मैं उस दिन भी रेणु के पास इसी उद्देश्य से गया था

कि उसे बता दूँ, कि मैं इस गाँव से शीघ्र ही चला जाऊँगा। अब मैं कहीं दूर जाकर बैठूँगा।'

बाबा ने निरुत्साहित होकर नदी की ओर देखते हुए कहा—'तुम सदा ऐसा ही सोचते हो, पुजारी !……'

यह सुनते ही पुजारी बाबा की ओर देखकर मुस्करा दिया।

बाबा ने फिर कहा—'तुम अपनी बात के सामने दूसरों की तो सुनोगे नहीं, पर मैं तो चाहता था, तुम और रेणु एक होते, एक गाँठ में बँधकर जीवन बसर करते। पर…'

उसी समय पुजारी ने कहा—'रेणु का और अपने इस पुजारी का तुम इस तरह भला नहीं कर पाओगे बाबा ! यह दिशा और है। रेणु को सीमित करने वाले तत्व और हैं, मेरे और। धनिक में जो मद होता है, रेणु उससे खाली नहीं है। वह उसकी पैतृक सम्पत्ति है। जो वस्तु दूर से अच्छी लगती है, वह प्रायः पास से वैसी नहीं लगती। वह वैसी नहीं निभती। यही भय मेरे और रेणु के बीच में है। रेणु भावुक तो है, उसका मुझ पर अनुराग भी है। इसी से मैं इतने भार को स्थायी रखने के लिये उससे अधिक दूर होना चाहता हूँ बाबा ! उसके मुझ पर अपार उपकार हैं। उन्हें मैं अपने जीवन में सँजोकर रखना चाहता हूँ। वह रेणु द्वारा प्राप्त मेरी अमूल्य निधि है। तुम रेणु से कहना, पुजारी ! तुम्हारा जीवन-भर आभारी रहेगा।'

जब पुजारी अपनी बात समाप्त करके फिर नदी की ओर देखने लगा, तो बाबा ने देखा कि वह अधिक गंभीर हो गया है। यह देख जाने कब की रुकी हुई साँस को छोड़ कर, बाबा ने कहा—'मेरी आत्मा तो अब भी कहती है कि रेणु तुम से अलग नहीं रहेगी। हाँ, नहीं रहेगी।'

पुजारी ने कहा—'ऐसा मैं ही कब चाहता हूँ, बाबा ! मैंने तो परिस्थिति की बात कही है। वैसे, रेणु सदा ही मेरे सामने घूमती-फिरती दिखाई देगी। वह किसी क्षण को भी मेरे हृदय से दूर नहीं हो जायगी।'

बाबा ने कहा—'तुम रेणु को अपने से दूर मत होने दो, पुजारी तुम उसके पास पहुँचो।'

यह सुनकर पुजारी फिर मुसकराया। वह अपने मुँह पर निश्छल भाव लेकर बोला—'रेणु की स्मृति ने मुझे जेल में भी शान्त नहीं रहने दिया बाबा।'

यह सुनते ही बाबा ने उल्लास के साथ पूछा—'तो क्या, तुम सचमुच ही रेणु को प्रेम करते हो, पुजारी !'

पुजारी ने उसी गंभीर हुए भाव में कहा—'बाबा मैं भी दुनिया में एक आदमी हूँ, मैं योगी नहीं हूँ।'

तब बाबा जैसे पुजारी की बात नहीं समझ पाया। वह उसकी ओर देखने लगा। पुजारी ने फिर कहा—'मैं जिस रेणु को चाहता हूँ, जिसे अपने मन में देखता हूं, उसे मानने के साथ ही, मैं यह नहीं भूल गया हूँ कि यह मेरी इस जीवन-यात्रा का एक अवलम्ब है, अन्त नहीं। मैं इससे आगे भी जाना चाहता हूँ।'

बाबा ने कहा—'रेणु में यह दोष तो है कि वह जल्दी रूठ जाती है। पर उसका मन सरल है।'

पुजारी ने मुसकराकर कहा—'रेणु पवित्र है। वह पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह स्वच्छ और उज्ज्वल है। उसका हृदय नदी के जल की तरह निर्मल है।'

बाबा चल दिया। वह पुजारी से विदा ले मन्दिर से बाहर हो गया।

इसके बाद ही पुजारी द्वार से हटता हुआ अपने-आप बोला—'मुझ पर बाबा का भी स्नेह है। जाने किस जन्म का हमारा इनका संयोग है।…… ……'

× × ×

अनिल की प्रेरणा और स्वभाव से रेणु ने अपनी साल-गिरह के अवसर पर आस-पास के जागीरदार, ताल्लुकेदार और सरकारी हाकिम-हुक्कामों की दावत का आयोजन करना स्वीकार कर लिया। कई सौ आदमियों का प्रीतिभोज होना था, जिसका प्रबन्ध अनिल बाबू ने स्वतः ही अपने ऊपर ले लिया था।

जब प्रीतिभोज का दिन आगया, तो उस दिन प्रातः से ही रेणु व्यस्त थी। घर के बाहर और अन्दर सभी कोई किसी-न-किसी कार्य में लगे थे। अनिल बाबू कभी हलवाइयों के पास जाते थे, कभी बाहर के दीवान खाने की सजावट देखते थे। दिखता था, वह अपने सिर पर बहुत-सा भार लेकर भी, व्यग्र और अव्यवस्थित नहीं थे। प्रातः से ही मेहमान आने लगे थे। जिले के कलक्टर, तहसीलदार और अनिल बाबू के जागीरदार के अतिरिक्त और भी मेहमान आ गये थे और सभी सुव्यवस्था के साथ ठहरा दिये गये। किन्तु इसके विपरीत दिखता था, रेणु शान्त और स्थिर नहीं थी। वह बार-बार नौकरों पर झल्लाती और फटकारती दीखती थी।

उसे इस प्रकार अव्यवस्थित देख अनिल ने उसके पास जाकर कहा—'तुम बहुत परेशान दीखती हो, रेणु ! परन्तु क्यों ?'

रेणु ने कहा 'देखिये ना, अनिल बाबू, मेहमान आने लगे हैं और यहाँ न बैठने का ढंग है, न खाने का।'

अनिल ने हाथ में ली हुई सिगरेट का कश खींचकर मुसकराते हुए कहा—'सब हो रहा है। जो बाकी है, वह भी समय पर हो जायगा। तुम परेशान मत हो। तुम सभी कुछ अनिल पर छोड़ दो। तुम्हारा काम तो बैठना है और देखना है। दिखता है, अभी स्नान भी नहीं कर पाई हो। तुम जाओ और कपड़े बदल

आओ। जो मेहमान आये हैं, तुम्हारे यहाँ ठहरे हैं, तुम उनसे और वह तुमसे परिचय न पायें, भला क्या बात ? यह रीति की बात है ? अन्य कामों के साथ, मुझे एक यह भी काम करना है। उन एक-एक को तुम्हारा और तुम्हें उनका परिचय देना है। नहीं तो इस सब का श्रेय यह अनिल ही पर जायगा,—जो यह मुफ्त ही पा जायगा, रेणु !'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'मैं तो चाहती हूँ, जो श्रेय है, जो रेणु के अधिकार हैं, वह आप पाएँ।'

'नहीं, रेणु, जो मुझे पाना है, वह पा जाऊँगा। आज नहीं तो कल अवश्य पाऊँगा।'

रेणु ने कहा—'मैं स्नान कर लूँ, कपड़े बदल लूँ।'

अनिल मुसकरा दिया। वह उसी मुसकराती हुई दृष्टि से रेणु की ओर देखता हुआ बाहर की ओर चल दिया।

इसके बाद ही, जब रेणु गुसलखाने की ओर जा रही थी, तो तभी बाबा उसके पास आया।

रेणु ने देखते ही पूछा—'क्यों बाबा, कोई काम है ?'

बाबा ने अपनी बात को लिये ही, दूसरी बात पर कहा—'मेहमान आ गये हैं। दूसरे गाँवों के ठाकुर लोग भी आ गये हैं।'

रेणु ने कहा—'तुम भी जाकर देखो। सब ठीक हो, कुछ गलत न हो।'

यह सुनकर बाबा ने तब अपनी बात को कहना चाहा। उसने इसी अभिप्राय से फिर रेणु की ओर देखा।

रेणु ने कहा—'मैं गुसलखाने में जाती हूँ। बक्स से मेरी गुलाबी साड़ी निकाल लो।'

'पर बिटिया......'

'और क्या......?'

'पुजारी नहीं आयेगा, क्या ?'

यह सुनते ही, रेणु ने एक बार भी खिजते हुए स्वर में कहा—'पुजारी जब न आये, तो मैं पीछे फिरूँ क्या, वह अभिमानी है। आये, आये, न आये! मैं बुलाने नहीं जाऊँगी।'

'उसे बुलाया भी तो नहीं गया, बिटिया रानी !'

रेणु ने गुसलखाने की ओर जाते-जाते कहा—'यह मुन्शी और अनिल बाबू से पूछो।' कहते हुए उसने गुसलखाने में घुसते ही खटाक से द्वार बन्द कर लिया।

यह देख कुछ क्षण तक बाबा वैसे ही शून्य-सा खड़ा रहा। उसे लगा, वह

जैसे कि कल्पना-हीन स्वप्न देख रहा था, जो सुन्दर और सुहावना नहीं था। अपनी उसी स्थिति के साथ, वह रेणु के कमरे में गया। जाकर बक्स खोल लिया। उसमें से गुलाबी रंग की लक-दक करती हुई साड़ी निकाल ली और बड़े शीशे के पास जाकर रख दी। उस साड़ी को देखकर उसे याद आया कि रेणु के पिता इसे पाँच सौ रुपये में खरीद कर लाये थे। उनके सामने भी, रेणु ने एक बार इसे अपनी सालगिरह पर पहना था, शायद फिर नहीं। तब कैसी फबी थी रेणु ? वही आज फिर, कहते बाबा का मन उल्लास से भर गया। उसी भाव में उसने मेज़ पर रखे रेणु और पुजारी के सम्मिलित चित्र को देखा। उस चित्र में रेणु काली साड़ी पहिने हुए थी, जो कितनी भली लग रही थी। उसकी वेणी में गुँथा हुआ गुलाब का फूल, जैसे बरबस हँस पड़ना चाह रहा था। पुजारी मुसकरा रहा था। यह देखते हुए बाबा चित्र में लीन हो गया। एकाएक वह इतना विभोर हो गया कि हाथ में लिये चित्र को देखते-देखते ही, वह सब कुछ भूल गया। उसी समय रेणु कमरे में आई। बाबा को चित्र लिये देख वह छूटते ही बोली—'क्या पागल हो गये हो ?'

बाबा ने एकबारगी कहा—'मैं इस जोड़ी को जब देखता हूँ, तब हर्षाता हूँ, बिटिया रानी ! देख तो, यह गाढ़े की मिरजई और घुटनों तक की धोती पहने हुए पुजारी तुम्हारे साथ खड़ा कैसा भला लग रहा है। यह मुसकरा रहा है।'

रेणु ने कहा—'लाओ, साड़ी दो।'

बाबा ने चित्र रख दिया। साड़ी उठाकर रेणु के हाथ में थमा दी, और स्वयं एक गहरी साँस भर कर कमरे से बाहर हो गया।

किन्तु जिस समय बाबा पुजारी के प्रति इतना संलग्न और मोहित गया था तभी उसके विपरीत स्वयं पुजारी उस समय मन्दिर के पास ही, एक चमार के घर बैठा हुआ उसकी लड़की के कुष्ठ के जख़्मों को धो रहा था। लड़की मातृ-हीन थी। पिता था, जो वृद्ध और अन्धा हो गया था। अभी कुछ ही दिन हुए कि उसकी लड़की को कुष्ठ रोग ने घेर लिया। वृद्ध पिता चमारों के टोले में से भी निकाल दिया गया था। लोगों ने उस पर दया नहीं दिखाई। अपनी लड़की के प्रति निरन्तर की उपेक्षाजनित भावना को देख, वह अपना घर छोड़ने को बाध्य हो गया। तब वह नदी के किनारे के पास ही उस टूटे हुए घर में जा बसा। वृद्ध जानता था कि आज ज़मीदार के यहाँ दावत है। जिसमें बाहर से बड़े-बड़े लोगों का आना लगा है।

जब पुजारी अपने नियमित समय पर उसके यहाँ पहुँचा और लड़की के पास बैठ कर दवाओं के पानी से उसकी देह को धोने लगा, तो वृद्ध ने पूछा—'क्यों पुजारी, तुम ज़मींदार के यहाँ नहीं गये ? तुम क्यों नहीं गये ?'

उस समय पुजारी सचमुच ही अनभिज्ञ था कि आज रेणु के यहाँ भोज है।

वह प्रातः ही बाहर चला गया था। इसी से उसने आश्चर्य से पूछा—'क्यों, जमींदार के यहाँ क्या है, आज ?'

वृद्ध ने आश्चर्य से कहा—'तुम्हें नहीं पता, जमींदार की बेटी की आज साल-गिरह है। बड़े-बड़े आदमियों की दावत है।'

पुजारी ने मुसकरा कर कहा—'मैं कौन बड़ा आदमी हूँ, भाई ?'

'गाँव के सभी लोग जायेंगे, तुम नहीं।'

'तुम भी जाओगे ?' पुजारी ने पूछा।

'भला हमारी क्या बात ! चमार और नीच जात ठहरे !'

यह सुनकर पुजारी नहीं बोला। उसने अनुभव किया, जैसे वृद्ध ने बड़ी वेदना के साथ अपनी बात कही है, जो उसके हृदय की है। जिसमें उसकी आत्मा बोल रही है।

तभी पुजारी ने कहा—'चमार भी आदमी होते हैं। क्यों राधा ?' कहते उसने लड़की की ओर देखा। जिसके साथ ही लड़की ने सिर हिला कर उसकी बात का समर्थन कर दिया। साथ ही उसने पुजारी की ओर देख मन्द-सा मुसकरा दिया।

पुजारी ने उससे आलोद के साथ कहा—'तू बड़ी चतुर है, बड़ी भली है, राधा।'

यह सुनकर बालिका लजा गई।

।—'और बता तो, अब कैसी है तू ! कुछ चला-फिरा कर।'

वृद्ध ने कहा—'तुम इसके और मेरे ऊपर बड़ा एहसान कर रहे हो, पुजारी ! तुम……'

उसे रोक कर पुजारी ने कहा—'यह व्यर्थ की बात छोड़ो। क्या हुआ, तुमने न किया मैंने कर दिया। मैं दिन भर पड़ा करता ही क्या हूँ ? यह अपना ही काम है।'

'यह सभी थोड़े ही सोचते हैं।' वृद्ध ने कहा।

पुजारी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। वह लड़की के जख्मों पर पट्टी बाँध कर खड़ा हो गया।

वृद्ध ने पूछा—'अब इसका कब तक इलाज करोगे, पुजारी ?'

पुजारी ने कहा—'बस इस महीने तक।' कहते हुए वह नदी की ओर बढ़ गया। वह नदी पर जाकर बैठ गया। बैठते ही उसके कानों में बैण्ड का स्वर पड़ा। उसे मोटरों के भोंपुओं का भी बोल सुनाई दिया।

उसने नदी के दूसरे किनारे की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने अपने मन में कहा—रेणु के यहाँ जो मेहमान आयेंगे, वह सभी सौगातें लायेंगे। वह कुछ

न-कुछ भेंट देंगे। किन्तु तुम्हारे पास क्या है, जो जाकर देते। कुछ कविताएँ, कुछ कहानियाँ यह तुम्हारी निधि है, जो……

पुजारी रुक गया। उसे याद आया कि पारसाल ही, आज ही के दिन उसने रेणु को एक कविता भेंट दी थी, जो रेणु को सुनाई थी। जिसके उत्तर में रेणु ने जाने कितनी गहरी अनुभूति के साथ सौगन्ध खाई थी कि रेणु तुमसे दूर नहीं होगी, तुम्हें अपने से दूर नहीं होने देगी।

उसी समय पुजारी ने नदी के जल की ओर देखकर कहा—'और आज……' यह कहते ही पुजारी विचलित हो गया। उसका स्वर रुक गया।

तभी गाँव का एक व्यक्ति उधर से आ निकला। पुजारी ने देखा वह नये कपड़े पहने था! उसने पुजारी के पास आते ही कहा—'पुजारी जी, तुम बैठे हो। जमींदार के यहाँ नहीं गये। आओ चलो, मैं वहीं जा रहा हूँ।'

पुजारी ने रूखे भाव से हँस कर कहा—'हाँ-हाँ, तुम जाओ।'

'क्यों, तुम नहीं?'

'हाँ, मैं भी जाऊँगा।'

किसान चला गया। तब उसके बाद पुजारी जाने कैसी अर्थहीन दृष्टि से नदी के जल की ओर देखकर अपने-आप बोला—'आज मुझे यहाँ नहीं रहना था, मुझे चला जाना था।' यह कहकर पुजारी मौन हो गया। वह नदी पर दृष्टि डाले हुए ही अवाक् और मूक बना हुआ अनायास ही अपने में खो गया।

कुछ देर बाद बैंण्ड की ध्वनि की ओर उसका फिर ध्यान गया। उस धीमी-धीमी और मीठी लय में पुजारी लीन हो गया। उसका हृदय हर्ष से भर गया। वह फिर सब भूलकर उस आनन्द में विभोर हो गया।

कदाचित् वह गाँव में होता, तो देखता कि गाँव-का-गाँव जमींदार के महल की ओर बढ़ा जा रहा था। कोई तमाशा देखने जा रहा था और कोई निमन्त्रण पाकर मिठाई-पूरी खाने जा रहा था।

और जमींदार के यहाँ जब मेहमानों की दावत का समय आया, तो तभी, रेणु अपनी गुलाबी रंग की साड़ी पहने हुए और बालों के जूड़े में गुलाब का खिलता हुआ फूल दिये दीवानखाने में मेहमानों के सामने पहुँची। अनिल उसके साथ था। वह स्वयं कीमती और नया सूट पहिने हुए था। उसने अभ्यागतों से रेणु का परिचय कराया। रेणु ने सभी को नमस्कार किया। वह सभी से बात करती थी और आभारित हुई उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती जाती थी।

भोजन के बाद अनिल ने अपनी, अपने जागीरदार की तथा अन्य आगतों की भेंट अब रेणु को दिखाई। वह उन साड़ियों, साज-शृङ्गारों आदि उपहारों को

देखती हुई जब अनिल द्वारा लाये हुए उस शृङ्गारदान को देखने लगी तो बोली—'तुम इतनी कीमती चीज क्यों ले आये, व्यर्थ बहुत पैसे दे आये हो !'

अनिल ने कहा—'तुम्हारे लिये अनिल पैसों की कीमत नहीं आँकता, रेणु ! तुम उनसे बड़ी हो। तुम अमूल्य हो। यह बम्बई की नुमायश से लाया था। यह वहाँ एक ही था।'

यह सुनकर रेणु ने मुसकराते आँखें उठाकर देखा। उसने अनिल की ओर देख होठों से हँस दिया।

उसी समय गाँव के एक वृद्ध चौधरी रेणु के पास आये। उन्होंने आते ही पूछा—'क्यों रेणु बेटी, पुजारी यहाँ नहीं है, क्या वह बाहर गया है ?'

चौधरी गाँव का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वह रेणु के पिता का मित्र था। उनकी बात सुनते ही रेणु ने अनिल की ओर देखा।

अनिल ने कहा—शायद यहाँ नहीं होगा पुजारी, और उसको बुलाता ही कौन ? जो नित्य आता-जाता है, वह आज नहीं आया। शायद उसने सोचा, यहाँ पर आये हैं, बड़े-बड़े हाकिम हुक्काम और अमीर लोग, यह उसे नहीं रुचेगा। यह उसे भला नहीं लगेगा। कहते अनिल हँसा। उसी भाव में उसने फिर कहा—'और ठीक ही तो सोचता है, पुजारी, उसका तो वही पुराना और नपा-तुला वेष है। सिर पर बिखरे हुए बाल, घुटनों तक की धोती, गाढ़े की मिरजई, पैर नंगे, तो नंगे ही,—यह सब यहाँ थोड़े ही शोभा देता चौधरी जी !'

अनिल जिस चौधरी से कह रहा था, उनकी आयु साठ वर्ष से ऊपर हो गई थी। बात सुनकर वह बोले—'यह तो तुम अपनी बात कहते हो, बाबू, पुजारी की नहीं। वह हर जगह शोभता है। जिस बात को हम जीवन-भर नहीं समझ पाए, उसे पुजारी समझता है। आज के दिन पुजारी यहाँ न हो, वह न बुलाया गया हो, मुझे तो यह भी अचरज ही दीखता है।'

यह सुनकर रेणु चुप थी। वह तभी वहाँ से दूसरी ओर चल पड़ी। उसी समय अवसर पा अनिल भी मेहमानों की तरफ बढ़ गया था।

चौधरी ने पास आये बाबा को रोक कर पूछा—'पुजारी यहीं है ?'

बाबा ने कहा—'कल तक तो था, आज भी होगा।'

'यहाँ क्यों नहीं आया पुजारी ?'

'भला कैसे आता ! रेणु बुलाती तब तो !'

चौधरी ने कहा—'रेणु ने नहीं बुलाया, क्यों और यह अनिल बाबू कौन हैं ?'

बाबा ने कहा—'इन्हीं की तो मेहरबानी है, चौधरी जी ! कभी था, जब बिटिया पुजारी को मानती थी। पर अब नहीं, जाने क्यों नहीं !'

चौधरी ने कहा—'मैं समझा ! अच्छा, देख तो, रेणु कहाँ गई। मै उसी से बात करूँगा। मैं इस घर की लाज को जीते-जी नहीं मिटने दूँगा। रेणु बच्ची है, अभी नासमझ है।'

बाबा ने कहा—'बिटिया कमरे में गई है।'

सुनकर चौधरी उधर ही बढ़ गये। जाकर देखा रेणु काऊच पर पड़ी थी। वह छत की कड़ियों को देख रही थी। द्वार पर जाते ही चौधरी ने पुकारा—'रेणु, बिटिया—'

आवाज सुनते ही रेणु खड़ी हो गई। चौधरी ने उसके पास जाते ही कहा—'मुझे लगता है, तुम मेरी बात पर सुस्त हो आई हो। तुम इसीलिये आ पड़ी हो। कैसी बात है, तुम्हारे मेहमान खाना खा रहे हैं, और तुम यहाँ ! भला क्यों ?'

रेणु सिर झुकाये थी, बात सुनकर वह वैसी ही खड़ी रही।

चौधरी ने फिर कहा—'मैं बहुत दिन से तुम्हारे पास नहीं आ सका। आज आया हूँ, सो देखता हूँ, मेरी रेणु बिटिया अब बड़ी हो गई है, अब सयानी हो गई है। किन्तु रेणु बेटी, मैं यह क्या देखता हूँ, कि आज सब हैं और पुजारी नहीं है। उसके साथ यह उचित व्यवहार नहीं है। उसे बुलाना था। आज जरूर बुलाना था। वह पवित्र और निष्कलंक पुजारी, न आया है, न बुलाया गया है। वह आज तुम्हारे द्वारा परित्यक्त हुआ है। भला क्यों ? पुजारी ऐसा आदमी नहीं है, बेटी ! वह किसी को छलना नहीं जानता। वह स्वार्थी नहीं है। वह निष्कपट है।'—क्षण-भर रुक कर चौधरी ने कहा—'तुम अनिल-जैसे आदमियों की गोष्ठी में बैठकर अपने धन और प्रतिष्ठा को एक दिन निश्चय ही खो दोगी। ऐसे व्यक्ति जीवन का आनंद और सुख देखते हैं,—ईमान और धर्म नहीं। अगर तुम्हारे पूर्वज भी यही सोचते और कहते, तो अपने गाढ़े पसीने की कमाई से यह महल और जागीर खरीद कर न रख जाते। तब तुम भी किसी गरीब और रोटियों से मोहताज माता-पिता की बच्ची कहलातीं। पैसा पाकर हृदय ऊँचा और दयावान् होना चाहिए। वह गरीब-निवाज होना चाहिए, रेणु बेटी ! यह नहीं कि उसे साहबों और बाबू लोगों में बैठकर उड़ा दिया जाये, आज, तुम्हारी साल-गिरह थी। आज तुम्हें गरीबों का आशीष पाने की बात थी। पर हुआ कुछ और ही। तुमने अमीरों और बड़े आदमियों को खिलाया, जो व्यर्थ ही गया। मैं कहता हूँ, यह सभी खाना और हँसना जानते हैं। रोना उन्हें नहीं सुहाता।

जब चौधरी के रुकने के बाद रेणु ने कुछ भी नहीं कहा, तो उन्होंने फिर कहा—'अनिल बाबू अगर अपने घर में आग लगा कर यह तमाशा देखते, तो मैं मानता। क्या तुम सोच सकती हो कि पुजारी तुम्हें यह सीख देता। वह तुम्हें ऐसा

करने के लिए कहता ! वह ऐसा आदमी नहीं है। तुमने तो सुना होगा कि जिस तोता चमार की लड़की को उसका पिता भी नहीं छू पाता, उसे ही, पुजारी नित्य जाकर धोता है, उसके जख्मों को साफ करता है। उसे लड़की का कुष्ठ रोग अपने ऊपर लेना स्वीकार है, पर यह नहीं कि वह उसकी सेवा से मुँह मोड़ जाये। तुमने कहीं और भी देखा, ऐसा आदमी ? तुम हम सबसे अधिक उसे जानती हो, फिर ऐसा क्यों?'

रेणु ने कहा—'पुजारी की यही इच्छा है। वह यही चाहता है। वह सम्पर्क नहीं चाहता।'

'तुम्हें भ्रम हो गया है, बेटी!'

तभी अनिल ने द्वार पर आकर रेणु से कहा—'तुम यहाँ हो। वह जागीरदार साहब जा रहे हैं। मजिस्ट्रेट साहब भी तैयार हैं। आओ, मिल लो उनसे।'

यह सुनकर रेणु खड़ी हो गई, वह चौधरी की ओर देखकर बोला—'मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, सदा की तरह आज भी मान्य है, ताऊ जी!'

चौधरी मुस्करा दिये। वह बात सुन कर अपने दाँतहीन मुँह से हँस दिये।

किंतु जब रेणु बाहर जाकर आगतों को बिदाई देने लगी, तो वह अनुभव कर रही थी कि वह अशान्त और अस्थिर है, वह उस भीड़-भाड़ और शोर-शराबे में खड़ी होने लायक स्थिति में नहीं थी, वह एकान्त चाहती थी। सचमुच ही, वह जैसे चाहती हो कि कहीं दूर, निरे शून्य में जाकर बस अकेली हुई वह उस समय अपने से कुछ कहती हो और सुनती हो। ऐसी थी, उस क्षण उसकी भावना और मनः-स्थिति, जब कि वह महमानों से नमस्कार कर रही थी और कठिनाई से मुस्करा कर उन्हें बिदाई दे रही थी।

× × × ×

उस दिन इच्छा करने पर भी रात को रेणु के यहाँ अनिल न रह सका। उसे कार्यवश जागीरदार के साथ जाना पड़ा। अन्य अतिथि भी चले गये थे। मगर अभी गाँव के किसान खा-पी रहे थे। भिखमंगे द्वार पर खड़े हुए कुछ पाने के लिये शोर कर रहे थे। सन्ध्या आ गई थी। रेणु सबको बिदा देकर मकान की छत पर चली गई थी। वह तब उदास और खिन्न बनी हुई थी।

दिन छिप चला था। जब बाबा रेणु के कमरे में रोशनी करने पहुँचा तो रेणु को वहाँ न देखकर वह चकित हुआ। वह देर से उसे नहीं देख रहा था। वह रेणु को कमरे में बैठी समझता था।

कमरे में रोशनी करके बाबा छत के ऊपर गया। जाकर देखा कि रेणु छत की मुँडेर का सहारा लिये नदी की ओर मुँह किये खड़ी है। वह उसे देखते ही बोला—'बिटिया रानी—'

सुनते ही रेणु ने अपनी भरी हुई आँखों से बाबा की ओर देखा।

बाबा ने कहा—'तुमने आज दिन भर से कुछ नहीं खाया है। अब भी शाम हुई, दिये जल गए। चलो न नीचे, मैं खाने का थाल लाऊँ।'

रेणु ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह फिर नदी की ओर देखने लगी। उधर ही देखते हुए उसने पूछा—'तुम मन्दिर गये थे, क्या?'

बाबा ने जैसे सजग होकर कहा—'आज तो काम से ही छूट कहाँ मिली, बिटिया रानी। मन्दिर नहीं जा सका।'

यह सुनकर रेणु नीचे की ओर जाने लगी। कमरे में जाकर उसने साड़ी पर चेस्टर पहिन लिया और पीछे खड़े हुए बाबा की ओर देख कर कहा—'तुम मेरे साथ आओ।'

सुन कर बाबा साथ हो लिया।

मकान के द्वार से बाहर जाकर रेणु मन्दिर की ओर चल पड़ी। मन्दिर में जाकर वह सीधी पुजारी की कोठरी के सामने गई, जो अन्धेरी हुई पड़ी थी। वहाँ से नदी की ओर बढ़ी। किन्तु जब पुजारी वहाँ भी नहीं दीख पड़ा, तो वह लौट आई। वह फिर पुजारी की कोठरी के पास आकर बोली—'पुजारी नहीं है। वह कहीं गया है।'

बाबा ने कहा—'शाम तक तो लोगों ने उसे यहाँ देखा है। जग्गू कहता था, वह पुजारी को नदी पर बैठा देख गया है।'

'तब पुजारी कहाँ गया!'

बाबा ने फिर कहा—'शायद तोता चमार के यहाँ हो। पुजारी उसकी लड़की का इलाज करता है।'

'अच्छा उधर ही आओ।' कहते हुए रेणु फिर उधर बढ़ गई।

वहाँ जाकर उसने द्वार से देखा कि पुजारी बैठा है। वह उस तोता चमार की आठ-दस साल की लड़की के सिर पर हाथ फेर रहा है और उसे राम-सीता की कथा सुना रहा है। वहीं पास ही, एक ओर तोता बैठा है। वह भी अपने गोड़ों पर मुँह रखे कथा सुन रहा है। रेणु ने यह भी देखा कि लड़की के जगह-जगह पट्टी बँधी है। जिसे देख वह चौधरी की बात का स्मरण करते ही, उस आँखों-देखे दृश्य में लीन हो गई। उसी प्रकार देखते हुए एकाएक उसके मन ने कहा—'अरे पुजारी, तू!…'

उसी समय बाबा ने पुजारी को सम्बोधन करके पुकारा। सुनते ही पुजारी चौंक गया। उसने मुँह उठाकर द्वार की ओर देखा। बाबा के साथ रेणु को खड़ी देख, खड़ा होकर बोला—'कौन, रेणुबाई………!'

रेणु आगे बढ़ गई। वह पुजारी के सामने जाकर खड़ी हो गई।

बाबा ने कहा—'तुम आज नहीं आये, पुजारी!'

'हाँ, आज नहीं आ सका। मैंने अभी शाम को सुना।' पुजारी ने कहा।

तभी पास बैठे तोता ने अपनी आँखों को ऊपर उठा कर कहा—'कौन, जमींदार की बेटी! ओ, धन्यभाग मेरे! आओ, मालकिन!'

बाबा ने फिर कहा—'आज दावत थी, बाहर के बहुत से आदमी आये, पर तुम नहीं आये।'

पुजारी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया, उसने मन्द-सा हँसते हुए रेणु की ओर देखा।

उसी समय तोता की लड़की ने अपने पिता से कहा—'मालकिन से बैठन को कहो बापू! खड़ी है!'

रेणु ने कहा—'अरी, मै बैठ जाऊँगी, लो लेट जाती हूँ। अब कैसी है तू? सुना तुझे कोढ़ हो गया है?'

यह सुनकर लड़की ने जवाब नहीं दिया। उसने पुजारी की ओर देखा।

पुजारी ने कहा—'हाँ, इसे कोढ़ है, अब अच्छा है कुछ। यह बड़ी नटखट और शैतान है। मुझ से मुँह बनाकर बात करती है। जब आया था, तो शरमाती थी। पर अब मेरी नकल उतारती है।'

रेणु ने इस बात को छोड़कर अपनी बात पर कहा—'कुछ पता है, तुम कब से नहीं आये। आज भी नहीं आये। शायद बिना बुलाये नहीं आये, क्यों?'

पुजारी ने कहा—'हाँ, आज आना था, नहीं आ पाया। मैं इस लड़की की दवा में लग गया था। यहीं आकर सुना था दावत है।'

उसी समय रेणु ने लड़की से पूछा—'अरी, तेरा नाम क्या है?'

लड़की ने कहा—'राधा।'

'ओ, राधा है तू!' और उसने पुजारी से पूछा—'इस लड़की के माँ नहीं है, क्या?'

पुजारी ने कहा—'नहीं।'

उसने साँस भर कर फिर पूछा—'बाप अन्धा है, लड़की बीमार है, कैसे चलता है, इनका खाने-पीने का खर्च?'

यह सुनते ही तोता ने कहा—'हमारे तो पुजारी अन्नदाता है, मालकिन! इन्होंने सहारा दिया है।'

यह सुनकर रेणु चुप रह गई। वह फिर लड़की की ओर देखने लगी।

पुजारी ने कहा—'नदी पर बैठे हुए मैंने मीठा-मीठा बैण्ड सुना था। सच, उस क्षण बड़ा आनन्द आया था।'

'तुम आये क्यों नहीं? तुम्हें आना था।' बाबा ने कहा।

पुजारी बोला—'इस गाँव में तो ऐसे बहुत होंगे, जो नहीं गये होंगे। क्यों राधा ?' यह कहते हुए उसने राधा की ओर देखा। जिसके साथ ही उसने सिर हिला कर पुजारी की बात का समर्थन कर दिया।

उसी ओर देखते हुए पुजारी ने फिर कहा—'हमारी राधा ही कहाँ गई। बुलाया भी नहीं, क्यों राधा !' कहते हुए पुजारी ने हँसते हुए रेणु की ओर मुँह किया।

तोता ने कहा—'हम तुम्हारा ही आसरा देखते हैं, मालकिन। जब इस लड़की की मा थी, तो बड़ी मालकिन से कुछ भी माँग लाती थी। बड़ी धर्मात्मा और पुण्यात्मा थीं, हमारी जमींदारिन। उनके द्वार से कोई खाली हाथ नहीं लौटता था।'

रेणु ने पूछा—'यह राधा कितने दिन से बीमार है ?'

'मालकिन, बीमार तो यह कई महीने से है।' तोता ने कहा—'पहिले आँख आईं, फिर बुखार आया और तभी चेचक निकल आई।' इतना कहते हुए उसने साँस भरी और बोला—'इस सड़ने से तो इसे रामजी उठा लेता, तो ठीक था। यह बीमार है, बाप दाने-दाने का मोहताज है। घर में कोई देख-भालवाला नहीं। क्या हो ? कैसे हो ?' कहते उसका गला भर आया।

उसी समय रेणु ने देखा कि पिता की बात सुनकर लड़की रो पड़ी है। उसकी भरी आँखें गालों पर बह आई हैं। तभी प्यार से लड़की के सिर पर हाथ रख कर उसने कहा—'अरे, तू क्यों रो पड़ी, राधा ?'

यह सुनते ही राधा की हिड़कियाँ बँध गईं। उसने रोते-रोते कहा—'यह पुजारी न होते, तो हम दोनों ही मर जाते। बाबा भूखा और प्यासा मर जाता और मैं खाट पर सड़-सड़ कर......'

उसी समय रेणु ने तोता की ओर देखकर कहा—'तुम्हें मेरे पास आना था। जरूर आना था। अब कल आना। मैं मुन्शी जी से कह दूँगी, वह हर महीने तुम्हारे गुजारे लायक देते रहेंगे,—समझे !'

तोता ने कृतज्ञ भाव से कहा—'तुम्हारा भला हो, मालकिन !'

तभी रेणु ने खड़े होकर पुजारी से कहा—'उठो। तुम मेरे साथ चलो।'

बाबा ने कहा—'हाँ, उठो पुजारी, बिटिया सुबह से भूखी है। यह अभी तुम्हें मंदिर और नदी पर देख आई है।'

पुजारी उठ लिया। रेणु ने राधा की ओर देखकर कहा—'मैं तेरे लिये मिठाई भेजती हूँ, खायगी ? उसके साथ में पूरी और साग।'

यह सुनते ही राधा मुसकरा दी।

रेणु ने फिर उसके गालों को थपथपाते हुए कहा—'रोया नहीं करते, हँसा करते हैं, समझी।'

पुजारी ने कहा---'इसे छूत का रोग है ।'

'तो------?'

'कहता हूँ, तुम अधिक न छुओ ।'

'पर तुम्हें नहीं लगा यह छूत का रोग ?'

पुजारी ने कहा---'मेरी क्या बात !'

यह सुनकर रेणु ने राधा की ओर देखकर पूछा--'क्यों री राधा, तुझे ऐसा रोग है ?'

राधा ने कहा---'हाँ, मालकिन !'

'दुत, पगली ! ऐसा कुछ नहीं । मैं तुझे रोज छुआ करूँगी । जो डरते हैं, उन्हीं को लगता है, यह रोग । मुझे नहीं ।'

तोता ने कहा---'तुम जुग जुग जियो, मालकिन ! तुम्हारी ही शोभा है ।'

तब बरबस ही रेणु खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

बाबा ने कहा---'चलो, पुजारी ।'

सुनते ही पुजारी चल दिया । रास्ते में रेणु ने बाबा से कहा---'तोता के घर मिठाई भेज देना,---अभी भेज देना ।

बाबा ने कहा---'अच्छा ।'

घर पहुँचकर पुजारी को साथ ले रेणु सीधी अपने कमरे में चली गई । वहाँ बैठते ही पुजारी ने रेणु की साड़ी की ओर देखकर कहा---'तुम्हें यह साड़ी भली लगती है । दिखती है, नई मंगाई है । रंग की अच्छी है ।' और इतना कह कर रेणु मुस्कराई ।

रेणु ने कहा---'यह पिताजी की मँगाई हुई है ।'

'इसके किनारे की जो बेल है, बहुत सुन्दर कढ़ी है ।' उसी ओर देखते हुए पुजारी ने फिर कहा ।

रेणु ने यह सुनकर कुछ नहीं कहा । उसने देखा कि जैसे पुजारी प्रसन्न और गद्‌गद हुआ किन्हीं भावों में बह रहा है । वह कभी उसकी ओर देखता है कभी बाहर की ओर । तभी कुछ देर बाद उसने पुजारी से फिर सुना, जो अपनी आँखों की भौंओं को तनिक उठाकर कह चला था---'दिखता है, आज सचमुच ही तुम अनिंद्य और अनुपम सुन्दरी बन गई हो । बनाव-शृंगार भी सब पर नहीं खिलता । इस पुजारी पर तो कभी नहीं खिलता । तुम्हारे जूड़े का फूल बरबस ही हँस रहा है और खिल रहा है ।......'

रेणु चुप थी, वह नीचे को निगाह किये बैठी थी ।

उसी समय पुजारी ने फिर कहा---'मुझे आज जैसा ही लगता है, न स्वप्न-

साल का दिन, जब तुम्हारे इसी नव-वर्ष के शुभ मुहूर्त पर कविता लिखी गई थी, और तुम्हें सुनाई गई थी।'

'पर आज क्या लिखा ? उसने आज क्या किया ?' बरबस ही रेणु ने पुजारी की ओर देखकर पूछा।

'आज——?' पुजारी हठात् रुक गया।

रेणु ने अपनी बोली में अधिक जोर देकर कहा—'हाँ, आज क्या लिखा ? पर जो आया नही, गैर समझ कर नहीं आया, वह लिखता ही क्या, वह इस रेणु के लिये सोचता ही क्या ····· !'

पुजारी ने देखा, बात करते हुए रेणु म्लान और उदास हो गई है।

उसी समय रेणु ने फिर कहा—'सब अपने भाग्य का दोष है! जिसे जितना पाना है, पायेगा। मुझे क्या, तीन मे न तेरह में। क्यों ठीक कहती हूँ न पुजारी !'

पुजारी ने हँसते हुए भाव मे कहा—'जिसे तुम सत्य समझ रही हो, भला वह तुम्हारे लिये कैसे झूठ है, तुम्हें वही सत्य है।'

यह सुनकर रेणु बरबस सूखी मुस्कराहट के साथ मुस्करा दी।

पुजारी ने कहा—'जब पुजारी तुम्हारे घर आया है, आकर बैठा है, तब यह सभी आरोप अपने सिर पर लिये जायगा।'

'सच, तुम बड़े वैसे हो, पुजारी !' रेणु ने तनिक विद्रूप के साथ कहा—'तुमने आज मुझे बहुत कष्ट दिया है। तुमने दिन भर ही भूखा रखा है।······'

यह सुन पुजारी हँसा नही। वह गम्भीर हो गया और बोला—'तुम सोचती होगी, पुजारी दिन में कई बार खा आया है। हाँ, भाई, सब अपना-अपना सोचते है। वही तुम्हारा हाल है।'

'मै क्या कुछ सोचती हूँ, वह तो तुम जानते हुए भी नहीं जानते, पुजारी !'

'मै इधर कई दिन से तुमसे मिलने के लिये उत्सुक था, रेणु। मेरा जल्दी ही बाहर जाने का विचार था। अब तक चला जाता। इस लड़की राधा के कारण नहीं जा सका।'

रेणु ने पूछा—'बाहर क्यों जा रहे थे ?'

पुजारी ने कहा—'मुझे अब कुछ रोटियों के लिये काम भी करना है। सदा की तरह मेरे पास आज भी कोई आधार नहीं है। तुम्हारी तरह, और भी परिचित मित्र हैं, जो कुछ देना चाहते हैं, पर मुझे स्वीकार नही। अब तक दो-चार किताबें और फुटकर रचनाएँ लिखी पड़ी थीं, उनपर जो पारिश्रमिक मिला, उनमें से कुछ खाया, कुछ राधा के काम में आ गया।'

रेणु उत्सुक हुई आगे भी जानना चाहती थी। वह तब जिज्ञासु की आँखों से पुजारी की ओर देखने लगी। उसने देखा, जैसे पुजारी निरा अबोध बन कर अपनी बात कह रहा है। यह निरा बच्चा है। जिसकी आँखों में भरपूर दीनता झलक आई है। तभी उसने कहा—'आज तक तुमने यह सब मुझ से नहीं कहा। कहना नहीं चाहा?'

'तुमसे जो कहना था, मैं उससे अधिक कह चुका हूँ, रेणु! अब कहाँ तक कहूँगा? मेरी तो दिशा का यहीं तो छोर नहीं है। अन्त अभी दूर है। मै अपने लिये तुमसे कुछ नहीं कहूँगा। वैसे मेरा निजी खर्च अधिक भी नही है। तुम मेरे घर में पाओगी ही क्या, कुछ लिखे हुए कागज और किताबें। मेरी यही सम्पदा है।' पुजारी ने सरलता पूर्वक कहा।

रेणु ने खिड़की के बाहर अन्धकार की ओर देख कर कहा—'तुम अच्छे हो, तुम्ही सुखी हो!......'

यह सुनकर पुजारी हँस पड़ा। वह बोला—'सभी इसी भ्रम में चले आते हैं। सभी एक-दूसरे को सुखी समझते हैं। निर्धन अमीर को सुखी समझता है और अमीर निर्धन को। पर मै यह जानता हूँ कि मै दुःखी नही हूँ।'

'परन्तु मैं अपने लिये यह नहीं कह सकती, नही कह पाती।'

यह सुनकर पुजारी नहीं बोला। उसके कुछ कहने के पूर्व ही जब दो थालों में खाना आगया और वह उसके सामने टेबिल पर रख दिया गया, तो वह उसी ओर देखकर छूटते ही बोला—'अरे, बाप रे! इतने सामान! यह सब आज की दावत का नमूना है, क्या? तब तो मैंने समझा, दावत ऊँचे दर्जे की हुई। सुना, अनेक जागीरदार और ताल्लुकेदार आये थे। जिले का कलक्टर भी आया था।' उसने कहा—'अच्छा हुआ, मैं दूर ही रहा। नही तो तुम्हारी दावत की मिट्टी खराब होती। कहाँ मै उजड्ड-सा आदमी, और कहाँ वह साहबी लोग! निश्चय ही अनिल बाबू जैसों की दाल गलनी थी। वे दिखाई नहीं दिये, चले गये, क्या?'

रेणु ने कहा—'चले गये।'

'अनिल बाबू पटु आदमी हैं।'—पुजारी ने कहा—'वह आज की दुनिया के अप-टू-डेट व्यक्ति हैं। उनमें व्यावहारिकता है। वह कभी किसी बड़ी रियासत के मैनेजर बन सकेंगे। अवसर मिला, तो कहीं के मजिस्ट्रेट भी।'

रेणु ने थाली को अपने आगे सरकाते हुए कहा—'वह कुछ बनें, तो बनें। तुम खाना खाओ। भूख लगी है।'

पुजारी ने कहा—'हाँ, हाँ, शुरू करो। खाने को देखकर मेरी भी भूख जाग गई है। कल इसी समय रोटियाँ खाई थीं, तब से बस यहीं अब!'

यह सुनते ही रेणु ने पुजारी की ओर अचरज और दुःख से देखकर कहा—'क्यों, सुबह नहीं खाई थी......?'

पुजारी ने हँसते हुए कहा—'खाता कैसे, पास में धेला नहीं था। आज कुछ मिल पाया। सो, सुबह खाता। आटा लाता और तब रोटी बनाता।'

रेणु ने कठिनाई से मिठाई की तश्तरी में से उठाई हुई बरफी का टुकड़ा दाँतों से तोड़ते हुए कहा—'अच्छा, अब खाओ। तुम जो करोगे, जो सोचोगे, वही ठीक। हाँ, वही········!'

पुजारी तब हँसता हुआ थाली को सरका कर खाने लगा था।

उसी क्षण रेणु ने अपने मन में कहा—'अनिल बाबू ने पुजारी को एक बार भी भला आदमी नहीं कहा। और पुजारी······'

उसी समय कमरे में आये हुए बाबा को देखकर पुजारी ने पूछा—'तोता के यहाँ खाना भेज दिया?'

बाबा ने कहा—'भेज दिया।'

'यह मिठाई भी?'

'हाँ, यह भी।'

'तो वह अवश्य प्रसन्न होगी।'—पुजारी ने रेणु की ओर देखकर कहा—'सच, बड़ी गरीब और होनहार है, राधा। यदि किसी घर में होती, तो लड़की योग्य बनती।'

यह सुनते ही रेणु बाबा की ओर देखकर हँस पड़ी।

पुजारी ने पूछा—'कैसे हँसीं?'

'तुम्हारी बातों पर। तुम किसी को खराब थोड़े ही बताते हो। मैं कहती हूँ, दुनिया में बुरा ही क्या है? बच्चे सभी अच्छे होते हैं।'

यह सुनकर पुजारी ने कुछ नहीं कहा। वह खाना खाकर उठ खड़ा हुआ। वह रेणु और बाबा की ओर देख हँसता हुआ मुँह साफ करने के लिये कमरे के बाहर चला गया। जिसके पीछे ही, जाने किस भावना से भर रेणु को इतनी हँसी आई कि वह हँसते-हँसते बरबस पेट थाम कर बैठ गई। पास खड़े हुए बाबा ने कहा—'थोड़ा हँसो, बिटिया, थोड़ा।' पर बिटिया नहीं रुक पाई, नहीं रुक पाई। वह अपार हर्ष से भरी हँसती थी और आँखों में आये हर्षित जल को पोंछती थी।

तब अचरज भरा बाबा अपनी बिटिया का मुँह देख रहा था और मन में कह रहा था, 'यह भी एक ही है, लड़की, क्षण में रो ले, क्षण में हँस ले, निरी बच्ची।'

× × ×

जब पुजारी लौटकर कमरे में आ बैठा, तो उसने बहुत दिन बाद रेणु से गाना सुनने की इच्छा लेकर कहा—'आज मैं तुमसे गाना सुनना चाहता हूँ, सुनाओ।'

सुनते ही क्षण भर रेणु ने पुजारी की ओर देखा और बिना कुछ कहे वह सामने रखे पियानो के पास जाकर बैठ गई। उसे खोल लिया और बजाने लगी। पियानो के मधुर स्वर सुनते ही पुजारी आँख बन्द करके बैठ गया।

तभी रेणु ने पूछा—'कुछ सुनाऊँ? क्या सुनाऊँ?'

पुजारी—'कुछ ही सुनाओ। तुम जो कुछ सुनाओगी, अच्छा लगेगा।'

रेणु गाने लगी—

सजनि, मैं हूँ प्रीति-रीति की दासी.............।

जब गाना समाप्त हुआ तो वह फिर पुजारी के पास आकर बोली—'अब नहीं गाया जाता। गला नहीं चलता।'

पुजारी ने कहा—'मुझे बहुत सुन्दर लगा। कैसा होता, यदि मैं गा पाता। मैं गाता रहता।'

रेणु ने कहा—'तुम कवि हो, तुम गा सकते हो, पुजारी!'

'बस गाया मैंने!' कहते वह उठा। वह रेणु से बिदा ले मन्दिर के लिये चल दिया।

रेणु ने कहा—'जाओगे, और नहीं बैठोगे। अच्छा, सुबह आना, अवश्य!'

पुजारी ने बाहर जाते-जाते कहा—'अच्छा!'

किन्तु जब सुबह हुआ तो कुछ देर पुजारी की प्रतीक्षा के बाद रेणु ने स्वयं ही उसके पास जाने का निश्चय किया। वह मुँह-हाथ धोकर घर से निकली और मन्दिर तक का रास्ता पार कर पुजारी की कोठरी के सामने जाकर खड़ी हो गई। देखा कि पुजारी सो रहा है। वह जोर-जोर से खुर्राटे ले रहा है। रेणु ने उसकी कोठरी में जाते ही देखा कि जैसे वह महीनों से साफ नहीं हुई है। वहीं एक ओर कलम-दावात पड़ी है, कागज पड़े हैं, कुछ लिखे हैं, कुछ बेलिखे हैं। रेणु बिछी हुई चटाई पर बैठ गई। खिड़की से नदी ओर की हवा आ रही थी, जो सुहावनी थी। रेणु ने बैठते ही एक कापी की ओर देखा। जिस पर लिखा था,—'निजी-पृष्ठ।' रेणु ने उसे उठा लिया और खोल कर पढ़ा तो वह पुजारी के नित्य के जीवन की कापी थी। यह देख रेणु में कौतुक उपज आया। उसने कई पृष्ठों को पढ़ा। फिर आगे के पृष्ठ छोड़कर जब वह बीते हुए कल की तिथि पर आई तो उसने अनुभव किया कि यह पुजारी ने रात ही लिखा है। जिसमें लिखा था—

'आखिर जिसकी मैं शंका लिये था, वही हुआ। मेरी आत्मा कह रही थी कि रेणु अपनी वर्ष-गाँठ के दिन जरूर आएगी। वह आई। पर वह न आती, तो

ठीक था। यह रेणु, अनिल और मेरे लिये भी ठीक था। यह जानकर सन्तोष होता कि रेणु ने मुझे स्वतः ही ठुकरा दिया,—अपने से दूर कर दिया। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वह आई और पूर्ववत् ही मुझे ले गई। मैं सोचता हूँ, आखिर इस अभिनय का अन्त क्या है ? जिस यौवनमयी और प्रेममयी प्रतिमा में रेणु का वास है, देखता हूँ, वह नित-नित की तरह आज भी अमोल है, आज भी अलभ्य और दुष्कर है। कदाचित् मैं यह रेणु पर प्रगट कर पाता कि वह अनिल की पत्नी बन कर भी, पुजारी के लिये वैसी ही वंदनीय है, जैसी कि आज, तो कितना अच्छा होता, सुख-कर भी होता ! किन्तु दिखता है, रेणु के सामने जाते ही, मैं न तो यह साहस कर पाता हूँ कि कहूँ वह अनिल को स्वीकार करे,—उसे वरे, और रेणु जानती है कि मैं अनिल को घृणा करता हूँ, सदा की तरह आज भी यह पुजारी उसके प्रति उपेक्षा रखता है। मैं अनिल को स्नेह करता हूँ, मैं उसे इस नवीन और प्रतिस्पर्धात्मक युग का एक प्रतिनिधि मानता हूँ।.........रात को रेणु ने जो गाना सुनाया वह भी उसके हृदय का दर्पण था, जिसमें उसकी भावनाओं का द्वन्द्व स्पष्ट दिख रहा था। आखिर मैं यह क्या देख रहा हूँ।............'

पुजारी ने आगे लिखा था—'यह युवा और सुहावने जीवन की दहलीज़ पर खड़ी हुई रेणु, इस निपट दुर्गमी, अपनी शून्य और सदा की भावनाओं से खेलने वाले पुजारी के पास आकर अन्धकार में जा रही है। वह ....'

'मेरे सामने अब पैसे की चिन्ता अधिक है। दिन भर ही भूखा रहा। शाम को यदि रेणु के साथ जाकर खाना न खाता, तो कल रात भर निराहार ही रहता। यह मेरी कैसी विवशता और कायरता है। मैं अकर्मण्य हूँ। शायद जीवन से पतित हूँ, मैं।............'

'तोता चमार के लिये रेणु ने जो सहायता करने का वचन दे दिया, यह अच्छा हुआ। अब मैं उसकी चिन्ता से मुक्त हो गया। यह पहिले भी चाहा था। परन्तु रेणु से कहाँ तक कहा जाता। किस-किस के लिये कहा जाता। उसकी अपनी भी आवश्यकताएँ हैं। बस, अब नहीं, हाँ, नहीं।'

'अनेक बार मैंने रेणु के कई हजार रुपये खर्च करा दिये। जो मेरे ही कारण दिये। पर मैं तो चाहता हूँ, वह सदा ऐसी ही उदार बनी रहे। वह आज की तरह दास ही नारी-रूप देवी बनी रहे।...... .....'

रेणु ने डायरी को रख दिया। पुजारी अभी सो रहा था। तब इसने इधर-उधर पड़ी चीजों को । . से लगा दिया और झाड़ू उठाकर उसने कोठरी को साफ कर दिया। जब वह इस काम से निबटी तो पुजारी की चारपाई के पास जाकर बोली—'पुजारी !'

पुजारी ने कहा—'हूँ।'

'उठो ना, दिन निकल आया। सूरज चढ़ गया।'

पुजारी जाग गया। उसने आँख खोल कर रेणु की ओर देखा।

रेणु ने कहा—'तुम बहुत सोते हो।'

पुजारी अपनी आँख मलता हुआ उठकर बोला—'रात देर में सोया था। तुम बैठो। तुम्हारे यहाँ से आकर भी मैं देर बाद सोया था।'

उसी समय पुजारी की बात सुनने के साथ रेणु ने उसकी देह को देखकर कहा—'तुम बहुत दुर्बल हो गए हो, पुजारी!'

पुजारी ने मुस्करा कर कहा—'इतना ही क्या कम है कि पुजारी जीवित है! यह......'

रेणु ने बीच में रोककर कहा—'मैं अब तुम्हें ऐसे नहीं रहने दूँगी। देखते हो, पसली की एक-एक हड्डी निकल आई है। गले की हँसली भी दीखती है। क्या ठीक है, यह? जब तक जीवन है, जीते-जी इसे मारना क्या उचित है?'

पुजारी ने कुरता पहन लिया। उसने रेणु की ओर देख फिर मुसकराकर कहा—'पुजारी को बढ़िया माल मिलें, तो यह मोटा भी हो जाये। कभी चुपड़ी, कभी सूखी और कभी सब-कुछ भी नहीं। भला जिसका यह क्रम हो, वह ऐसा भी रह जाये, यही क्या कम है, रेणु!'

रेणु ने कहा—'तुम अपने लिये स्वयं खाई खोदते हो। तुम अपने जीवन के प्रति स्वयं उपेक्षित बन गए हो।'

उसी समय पुजारी का ध्यान कोठरी पर गया। देखा, सभी-कुछ ठीक और साफ है। अचरज से उसने रेणु की ओर देखा! उसके हाथों में लगी धूल को लख कर बस छूटते ही बोला—'यह सफाई का काम तुमने किया, रेणु, तुमने!'

रेणु ने कहा—'मैं एक घण्टे से यहाँ आई हुई हूँ। कोठरी में इतनी धूल थी कि जैसे महीनों की पड़ी हो! जाने तुम कैसे आदमी हो। बस, तुम सोना और लिखना ही जानते हो। लोटा-गिलास कहीं पड़ा है, थाली-तवा कहीं। तुम्हें अपने कागज़-पत्रों की भी सुध नहीं। ऐसे थोड़े ही कटता है, जीवन। यह नियम माँगता है। यह जीवित रहने के लिये कुछ खुराक माँगता है, पुजारी! जो तुम नहीं देते! नहीं देना चाहते। यह तुम्हारे बाल हैं, दिखते हैं, जैसे झुंड। तुम देह को भी माँज-धोकर नहीं रखना चाहते। जो ईश्वर की देन है, वह ऐसे रखना चाहते हो, तुम!......'

'तो तुम क्या कहने चली हो?' पुजारी ने एकाएक हंसते हुए कहा।

'मैं कहती हूँ, तुम अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दो। उसमें जो दुर्बलता और

शिथिलता आ गई है, उसे दूर करो ।' रेणु ने गंभीर होकर कहा । यह सुन कर पुजारी नहीं बोला । कदाचित् वह बोलना चाहकर भी नहीं बोल पाया ।

'भोजन की क्या व्यवस्था है ?' रेणु ने फिर पूछा ।

'कुछ नहीं । कोई भी नियम नहीं है । कभी हाथ से बना लिया, कभी कहीं खा लिया, बस ।'

रेणु ने पुजारी की बात सुनने के साथ बाहर आसमान की ओर देखा । वह उधर ही देखती रही । जब पुजारी ने उस ओर देखा तो रेणु की आँखें गालों पर बह आई थीं । उसी ओर उसने देखते हुए कहा—'क्या बात है, रेणु ! ऐसा क्यों ? तुम रो रही हो !'

सुनते ही रेणु ने हठात् उसकी ओर देखकर कहा—'मैं सोचती हूँ, आखिर तुम क्या हो । तुम क्या चाहते हो ? क्या ऐसे ही मरना चाहते हो, तुम ? मैं आज तक तुम्हें नहीं पहचान पाई । तुम भूखे रहते हो, तुम जीवन को घुल-घुल कर काटते हो, आखिर क्यों ? तुम तोता की लड़की राधा की चिंता कर सकते हो, तुम उसके इलाज पर रुपये दे सकते हो, पर तुम स्वयं नहीं खा सकते, न पहन सकते हो । तुम अपनी ओर से किसी को यह अधिकार भी नहीं देते हो । मैं पूछती हूँ, तुम्हारा यह, दुःख क्यों है ? तुम क्यों नहीं बताते ? तुम रेणु से क्यों नहीं कहते······?'

यह सुन पुजारी व्याकुल हो गया । जो कुछ देर पूर्व हँस रहा था और मुसकरा रहा था अब वह रेणु के आँसू देखकर खिन्न और अव्यवस्थित बन गया । वह उसकी ओर देखकर बोला—'पुजारी जिस दिन दुःखी होगा, भूखा होगा, तब वह बिना आपत्ति के तुम्हारे द्वार पर पहुँच जायेगा, रेणु ! इसे तुम पर भरोसा है ।'

यह सुनकर रेणु ने झटके के साथ अपनी भरी हुई आँखों से पुजारी की ओर देखकर कहा—'और डायरी में क्या लिखा है ? बताओ, उसमें अपनी किन भावनाओं का प्रदर्शन किया है ? तुम भीरु और कायर बनते जा रहे हो । तुम······' और रेणु चुप हो गई ।

'रेणु'······

'हाँ, पुजारी, तुम रेणु को मार दोगे । इसको ऐसे ही मार दोगे, तुम !'

पुजारी ने कहा—'पुजारी जो सोचता और देखता है वही लिखता है, रेणु !'

'खाक लिखते हो, तुम ।'

'तुम नाराज मत बनो, रेणु । शान्ति से मेरी बात सुनो ।'

रेणु ने कहा—'मैं बैठूँगी नहीं । मैं घर जाऊँगी । मैं तुम्हें भी ले जाऊँगी ।'

यह सुनते ही पुजारी उठ लिया । वह रेणु के साथ हो लिया ।

× × ×

घर पहुँचते ही, रेणु ने एक नौकर को आदेश दिया कि वह नाई बुला लाये।

यह सुनकर पुजारी ने पूछा—'नाई क्यों ?'

'फिर बताऊगी। पहिले मुँह-हाथ धो आओ। अभी सोकर आये हो।'

यह सुनकर पुजारी गुसलखाने की ओर चला गया।

उसी समय कमरे में जाते ही रेणु ने अपने-आप कहा—'जो बात पुजारी के अन्दर है, वही बाहर है। यह जाने क्यों इस दुनिया में आ गया है ! अनोखा है, पुजारी !'

उसने सामने आये बाबा को देखकर कहा—'मैं कल बाहर जाऊँगी, बाबा !'

'कहाँ जाओगी, बिटिया ?'

'नैनीताल या मसूरी। तुम भी चलना।'

'और कौन ?'

'पुजारी जायेगा।'

यह सुनते ही बाबा ने फिर एक बार रेणु को आश्चर्य से साथ देखा, उसने समझा, जिसे वह नहीं जानता है, नहीं सोच सकता है, रेणु वही है,ऐसी।

वह अपनी उस अज्ञानता और अदूरदर्शिता पर लजा गया। उसे लगा, जैसे वह अपनी गोद-खिलाई इस रेणु के सामने हार गया है,—वह नत हो गया है। तभी वह झुकता-सा, सकुड़ा-सा, सामने टेबिल पर लगे एक-दो फूल निकाल कर निरुद्देश्य ही, एक से, दूसरे स्थान पर लगाने लगा।

रेणु ने फिर कहा—'पंडित रामदीन भी चलेगा। नहीं तो खाना कौन बनायेगा। यहाँ से पहिले हरिद्वार, फिर कहीं और।'

बाबा ने उल्लासपूर्ण स्वर में कहा—'हरिद्वार मैं भी बहुत दिन से नहीं देख पाया, बिटिया रानी ! अब फिर देख लूँगा। तुम्हारे प्रताप से मैं भी गंगा में गोता लगा लूँगा।'

इतने में पुजारी कमरे में आ गया। उसने आते ही बाबा की बात सुनकर पूछा—'क्या है, बाबा ?'

'तुम्हारे और बिटिया रानी के साथ जाकर मैं भी हरिद्वार की गंगामाई के दर्शन कर आऊँगा।'

पुजारी यह सुनकर हँस दिया। उसने रेणु की ओर देखा।

उसी समय जलपान आ गया। पुजारी दूध के गिलास को लेता हुआ बोला—'देखो, ऐसी बात है, भाग्यवान् के अगर सुबह दर्शन हो जायें, तो मुँह धोते देर नहीं कि दूध का गिलास सामने है।' कहते हुए वह रेणु की ओर देखकर मुसकराता हुआ फिर बोला—'शुरू करो, मैंने तो अपना गिलास उठा लिया।'

रेणु ने कहा—'यह बर्फी और लड्डू।'

'हाँ, हाँ'!—और वह दूध पीने के बाद लड्डू उठाता हुआ बोला—'लो, लड्डू मियाँ तुम भी चलो पुजारी के पेट में।'

रेणु ने कहा—'कल हरिद्वार चल रहे हैं। मैं, तुम, बाबा और पंडित रामदीन।'

पुजारी ने कहा—'मैं भी! मुझे नहीं। यह सब तुम्हारी……'

रेणु ने जोर देकर कहा—'अब तुम्हें कुछ नहीं कहना होगा। कुछ नहीं। तुमने मेरी चुप्पी का दुरुपयोग किया है। जो अब नहीं।'

पुजारी ने हँसते हुए कहा—'अच्छा, अच्छा।'

'मुझे अभी दर्जी बुलाना है। तुम्हारे कपड़े सिलाने हैं।'

'अनिल बाबू आयेंगे, तो वापिस ही जायेंगे, क्यों?' हँसते हुए पुजारी ने पूछा।

'जो आयेंगे, वह फिर भी आ सकेंगे। वह आ सकते हैं।' रेणु ने दूसरी ओर देखते हुए कहा।

उत्तर को सुनकर पुजारी रुक गया। वह आगे जो कहना चाहता था, नहीं कह सका। वह खड़ा होकर टेबिल पर रखे हुए गुलदस्ते के पास गया और उसमें से उस बड़े गुलाब के खिले हुए फूल को लेकर फिर रेणु के पास आ खड़ा हुआ। उसने फूल को रेणु की वेणी में लगा दिया। फिर उसे देखता हुआ बोला—'यह फूल भी अपने स्थान पर खिलता है, क्या खूब!'

यह सुनकर रेणु मुसकरा दी। वह पुजारी की ओर देखते हुए बोली—'बैठो, बैठो।'

पुजारी ने फिर होठों पर हास्य लिये हुए कहा—'सच, तुम शीशे में देखो, तो जानो कि कितना फबता है, यह फूल।'—उसने कहा—यह अनिल बाबू के कोट पर भी लगता है। यह वहाँ भी खिलता है और मैं कोट पहनता नहीं। उसे रखना और पहनना भी नहीं जानता।'

'तुम ऐसे क्यों हो, पुजारी!'—छूटते ही रेणु ने कहा—'क्या सचमुच ही तुम अपने को हीन समझते हो।……'

'मनुष्य जाने किस-किस से अपने को हीन समझता है।' उसी क्षण पुजारी ने कहा।

'यह अच्छी बात है, क्या! यह अपनी हीनता है।'

'मैं इसे नहीं मानता। जहाँ अपनी कमजोरी है, उसे छुपाना मैं उचित नहीं समझता।'

'हाँ, ठीक तो है, तुम्हारी गूढ़ बातें रेणु कैसे समझ पायेगी। यह नहीं

समझेगी।' उसने कुछ रुक कर कहा--'जो व्यक्ति स्वयं अपनी हत्या पर तुला हो, और कहता हो कि वह जीवन है, वही उसकी दिशा है, तब तो राम भी उतर आये, तो उसे नहीं समझा पायेगा।'

पुजारी ने तब छत की ओर देखकर कहा--'मेरे और तुम्हारे बीच में यही अंतर है। तुम जिसे हत्या कहती हो, निश्चय ही, मैं उसी को जीवन मानता हूँ।'

रेणु ने छूटते ही तुनक कर कहा—'तुम खाक जीवन मानते हो। अपने इन आदर्शों को पास ही रखो, तो ठीक। मुझे नहीं चाहिएँ।'

यह सुन कर पुजारी फिर हँस दिया।

रेणु ने उसी आवेशपूर्ण स्वर में फिर कहा--'तुम ईश्वर की वस्तु का दुरुपयोग करते हो, तुम पाप करते हो?......'

उसी समय बाबा ने आकर कहा—'नाई आ गया।'

'जाइये, इन बालों को कटा दीजिये। श्रीमान् जी इतना अवकाश तो पाते नहीं कि इनमें तेल-कंघी डाल लें। इनकी मिट्टी तो न खराब कीजिये। इन्हें कैंची और उस्तरे के अर्पण कर दीजिये।'

पुजारी उठ लिया। वह बाहर जाने लगा।

रेणु ने रोक कर पूछा—'कैसे कटाओगे? सब नहीं, छोटे-छोटे।'

यह सुनते ही पुजारी बिना कुछ कहे जोर से हँसता हुआ चला गया।

तभी रेणु ने मुन्शी को बुलाया। उससे पुजारी के कुर्तों के लिये कपड़ा और धोतियाँ लाने को कहा। साथ ही उनसे तोता और उसकी लड़की के भरण-पोषण का सामान देने के लिये भी कह दिया। जब वह मुन्शी से अपने जाने और पीछे होशियारी से रहने के लिये कह चुकी, तो तब ही बाहर के स्वच्छ हुए नीलाकाश को देखते हुए पुजारी की बात को लेकर अपने-आप बोली—'जो व्यक्ति कुष्ठ-रोग से पीड़ित तोता की लड़की की सेवा कर सकता है और उसके लिये अपना सभी-कुछ अर्पण कर सकता है, वही अपने लिये उपेक्षित और उदासीन है,—है न यह अचरज की बात! निश्चय ही, पुजारी उस लड़की को न देखता, उसकी सार-सम्भाल न करता, तो वह मर जाती।'--उसने कहा--'और देखो तो, उस छोकरी की बात, कितनी ढिठाई से, प्रेम और अपनेपन से पुजारी से बोल रही थी और बातें सुन रही थी। लगता था, वह जैसे कभी भी पुजारी से दूर नहीं रही थी। जैसे पुजारी उसका अपना ही है एक, सगा–सहोदर और आत्मीय।'......

उसी क्षण उसने फिर कहा--'यही तो पुजारी में बात है। यह जहाँ भी जाता है, वह जिसके निकट भी बैठता है, और जिससे भी मिलता-जुलता है, वही इसका अपना है। पुजारी सेवक है। यह सेवा करता है।...'

उसी समय मुंशी ने पूछा—'साथ कौन-कौन होंगे ? अनिल बाबू ?'

रेणु ने तब चौंक कर सजग होते हुए कहा—'नहीं, पुजारी।'

मुँशी ने फिर पूछा—'पीछे अनिल बाबू आयें तो ? वह आयेंगे ही। उन्हें यह पता थोड़े ही होगा कि तुम यहाँ नहीं हो। पुजारी के साथ घूमने गई हो।'

'आयें तो कह देना, मैं एक-दो मास में आऊँगी।'

यह सुनकर मुँशी चला गया। वह बाहर की ओर जाता हुआ एकाएक अपने अतीत पर पहुँच गया। जहाँ उसने देखा, यह वही रेणु है, जो उसकी गोद में खेलती, उसकी कलम तोड़ती और मचलती रोती थी।

वृद्ध मुँशी अपने चश्मे के अन्दर से झाँकती हुई आँखों के सामने उन सुखद स्मृतियों को देखता हुआ फिर अपनी गद्दी पर जा बैठा। उसे तीस वर्ष हो गये उस गद्दी पर बैठे। जो अपने अनेक परिवर्तनों से निकलकर अब भी स्थिर है, अब भी उसी जगह टिका है। वह मुँशी तब क्षण-क्षण पर अपने उसी अतीत में पहुँचता गया, जिसकी गहराई में उसने अपने वात्सल्य-प्रेम को लिये हृदय से ममता और मोह के भाव में कहा—'यह वही रेणु है, यह वही नन्हीं बच्ची है, जो ठाकुर और ठकुराइन की आशा और आकाँक्षाओं पर पली थी। जो...'

मुँशी रुक गया। वह अपने-आप काँप गया। बही-खाता उसके सामने खुला था, वह लिप-पुतकर काला हुआ दिखने लगा था। तभी वह अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ बोला—'यह रेणु जाने क्या सोचती है—जाने क्या समझती है ! दीखता है यह अपने माँ-बापों की आबरू मिटाने पर तुल गई है। कभी अनिल बाबू है, कभी पुजारी। जैसे खेल है कोई, कभी बनालो, कभी बिगाड़ दो। यह औरत जात क्या हुई, एक पहेली हो गई जो न सुलझाई जाती है न समझी जाती है। उसका रंग चढ़ा तो उसकी, उसका चढ़ा तो ...'

कहते मुँशी रुक गया। उसने द्वार के बाहर नीले आसमान की ओर देखकर फिर कहा—'भला कब तक निभेगा, ऐसे ? पैसा खोती जा रही है, जमींदारी दबती जा रही है। जो ऐसे ही एक दिन मिट जायेगी। एक अनिल है, जो हजारों रुपयों पर पानी फेर गया और अब यह पुजारी है, उसका भी गुरु लँगोटी का बाबा जी ! न खाने की ठौर है, न रहने की। आपने यहाँ भी सेवा और दया का भूत चढ़ा दिया है। ऐसे तो, एक रेणु क्या, हजार रेणु भी कम...... !'

उसने कहा—'एक दिन यह हवा भी उड़ जायेगी। न नौकर-चाकर होंगे, न महल-दुमहले। आज दो महीने की सैर है, कल चार की। अच्छा है, जो बाकी है यह निबट जाये, तब पता चले देवी जी को कि यह है, उनका भाव। तब न पुजारी दिखाई देगा न अनिल बाबू। कोई बात भी नहीं पूछेगा।......'

उस समय बाबा उधर निकल आया। मुंशी को माथे में बल डाले देख उसने पूछा, 'किस विचार में हो मुंशी जी ?'

मुंशी ने चौंक कर उसकी ओर देखते ही कहा—'अरे, हाँ, आ बैठ, बता तो कौन-कौन बाहर जायेंगे ? तू भी ?'

बाबा ने कहा—'हाँ, बिटिया ने कहा तो है।'

'अच्छा है, भाई, इस बुढ़ापे में और देख आ। कोई और भी ?'

'और रामदीन महाराज।'

'अच्छा, अच्छा, यह तो चाहिये ही, नहीं तो रोटी कौन बनायेगा। तू ऊपर के काम-काज देख लेगा। बस, ठीक। पर यह तो बता रे, अनिल बाबू नहीं आयेंगे। कहीं कुछ कह-सुन तो नहीं दिया। कल तो वही मालिक बने थे। आज नहीं। इसे कहते हैं, छण में कुछ और छण में ......'

बाबा ने कहा—'तुम तो बिटिया का स्वभाव जानते हो, मुंशी जी !'

'यही तो !' मुंशी ने कहा—'ऐसे कब तक चलेगा। ऐसे तो कुबेर भी भिखमँगा बन जायेगा, भाई ! करें तो मुश्किल, न करें तो। जन्म यहीं बैठकर काट दिया। तू तो मुझसे भी पुराना है। सोचते हैं, इस घर की बात जैसे चलती आई है, चलती रहे, पर भरोसा नहीं कि रेणु अपने माँ-बापों की इज्जत का बोझ सम्भाल लेगी। अभी लड़कपन है। सैर-सपाटों में मन है। जो आता है, वह अपना उल्लू सीधा करता है। भैया ऐसे तो खा जायेंगे ये लोग जमींदार के घर को। तब तुम्हारी बिटिया की आँख खुलेगी। एक वह फुआ आई थी, जो बुढ़ापे में भी धन के मोह में फँसी थी। चुड़ैल कहीं की ! लगती थी, जैसे डायन हो। तू रेणु से कुछ नहीं कहता। तू उसे नहीं समझाता कि इन मुँह लगे चोरों के चुँगल से बचे। यह सभी एक-से-एक हैं। सभी बगल में छुरी लिये फिरते हैं !......'

बाबा ने कहा—'पर पुजारी ऐसा नहीं है, मुंशी जी ! उसे बिटिया का कुछ नहीं लेना है।'

यह सुनते ही मुंशी ने फिर कहा—'यह सरासर गलत है। पुजारी दूध का धुला नहीं है। तू बुढ़ापे में सठिया गया है। वह भी आदमी है। वह आदमियों की बस्ती में रहता है। अरे, बगुला भगत, न ही देख न अपनी ओर, भूल गया अपनी जवानी के दिन। बुड्ढा हुआ तो गले में माला डाले फिरता है। राम-राम जपता है। बच्चू, मुझे अब तक याद है, वह कल्लो कहारिन, जो तवे-सी काली, जिसकी उठी हुई नाक, मोटे-मोटे होंठ, -पर, उसी के पीछे तो तू कल राल टपकाता फिरता था। भले आदमी, जवानी अंधी होती है। रेणु जवान है, पुजारी जवान है। पुजारी में लालच न हो, मैं यह नहीं मानूंगा। धन का न सही, रेणु का सही। बात को समझ भाई !

और वह भौंरे की तरह मंडराता हुआ अनिल, जानता है, कैसे मनसूबों की पोटली बाँधे फिरता है। हजारों रुपये चाट गया और एक दिन रेणु के साथ इस जमींदारी का भी मालिक न बन जाएगा, तो कहना ! तब हम तुम दोनों ही झुककर उसे सलाम झुकायेंगे,—समझा !'

बाबा ने अपनी देर की रुकी हुई साँस को छोड़कर कहा—'समझा मुंशीजी ! हम कर ही क्या सकते हैं ! हम नौकर हैं, हाँ आज हैं, कल नहीं।'

'तब क्या ऐसे ही गाड़ी चलेगी ? तब तो एक दिन टूट जायेगी। कहीं ऐसी फँसेगी कि फिर जन्म भर निकलने का नाम न लेगी।'

बाबा ने कहा—'तुम जो पुजारी के लिये कहते हो, मैं यह नहीं मानता। वह अगर बिटिया के पास आता है, तो बेजा नहीं है। ऐसा ही होना था। बिटिया ने उसकी बड़ी सेवा की है। वह पुजारी के लिये रात-रात भर रोयी है। पुजारी उसका अपना है। वह कभी भी दूर नहीं होगा। रही अनिल बाबू की बात, सो भाई, उसके लिये क्या कहें हम-तुम। वह दुनियादार है। वह धन और सुन्दर स्त्री चाहता है। तुम देखते हो, पुजारी न सुन्दर है, न धनवान् है। पर बिटिया उसकी जिस सुन्दरता को देखती है, वह बाहर नहीं है, वह पुजारी के अन्दर है। बिटिया उसी को देखती है। और इसी की क्या बात, गाँव में कोई भी है, जो पुजारी को प्रेम नहीं करता। वह तोता, जिसे गाँव से निकाल दिया, जिसकी लड़की को किसी ने नहीं छुआ, उसे पुजारी ने सहारा दिया। उसने मरने से बचाया, मुंशी जी !'

मुंशी ने आश्चर्य से कहा—'पुजारी ऐसा है !'

बाबा ने संयत और बँधे हुए स्वर में कहा—'हाँ, ऐसा है, पुजारी !'

यह सुनकर मुंशी चुप हो गया। वह तब बाहर की ओर देख कर धीरे से मुसकरा दिया।

बाबा ने पूछा—'क्यों, कुछ अचम्भा लगा, क्या ?'

मुंशी ने तब फिर उसकी ओर देखकर कहा—'अरे अक्लमन्द मानुष, पहिले यह भी सोचा कि बिटिया किसकी है ? यह जमींदार के घर में पैदा हुई है। जो जन्म से बन-ठन कर रहती आई है। पलंग के गद्दों पर सोती है, जो बढ़िया खाने खाती है। बड़े आदमियों में बैठती-उठती है और तू सोचता है कि यही एक दिन पुजारी के साथ जोगन बन जायगी, बैरागिन बन जायगी,—क्यों ? यह सभी विपरीत बातें हैं। एक महलों के स्वप्न देखती है, दूसरा वन में पड़ी हुई झोंपड़ियों के। ऐसे निभाव नहीं होता। जो बिटिया एक दिन पुजारी की संगिनी बन इस जमींदारी को लीप-पोतकर जंगलों में जा पड़ेगी, वह वैसे जीवन की अभ्यासी नहीं है।'

'प्रेम जब एक बार मन में बैठता है, तो फिर नहीं निकलता ।' बाबा ने मुस्करा कर कहा—'तुमने जानी ही नहीं, इसकी सार ! बूढ़े हो गए, बाल पक गए और दिल की बात नहीं जान पाए !'...

मुंशी ने उदास और गिरे हुए मन से कहा—'हाँ, भाई, हमने कुछ नहीं समझा । इस जीवन को रोटियों की चिंता में गला दिया । और फिर हम हैं ही कौन, तीन में न तेरह में । जैसे-तैसे इस जिंदगी को काट रहे हैं । कुछ दिन और हैं, परमात्मा इन्हें भी काट दें, तो ठीक । जो कटेंगे ही, रोकर कटें तो, हँस कर कटें तो । पर रेणु अच्छे रास्ते पर नहीं है । मैं उससे नहीं कह पाता । मन मानता नहीं सोचो तो, सोने-सा घर खाक में मिलता जा रहा है । यह मिटता जा रहा है !...'

यह सुनकर पुजारी हँस दिया । उसने टिकटघर की ओर देखकर कहा—'अच्छा लाऊँ टिकिट,—चार ! कौनसी क्लास के ?'

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा । उसने दूसरी ओर को मुँह फेर लिया ।

पुजारी ने फिर पूछा—'बताओ रेणु ! भई, तुम साथ हो, इसी से पूछता हूँ, और नहीं मेरी क्या बात, तुम सब जानकर भी अनजान बनती हो । थर्ड क्लास के लाता हूँ । कहो दूसरे के ?'

इतना सुनकर भी रेणु नहीं बोली, वह गाड़ी में से अपने उतरते हुए समान की ओर देखने लगी ।

टिकिट बँट रहा था । गाड़ी के आने की घण्टी बज रही थी । हठात् पुजारी चला गया । वह थर्ड क्लास के चार टिकिट ले आया, जो दस रुपये में आ गए । उसने अपने मन में कहा—'रेणु इस क्लास में नहीं बैठती होगी । सैकिण्ड या इन्टर में बैठती होगी ।...............'

गाड़ी आ गई । कुलियों ने सामान उठा लिया और पुजारी के आदेश पर थर्ड क्लास के डिब्बे में रख दिया गया । रेणु अभी बाहर खड़ी थी । वह हाथ में अपना बटुवा लिये, अनमनी-सी चारों ओर देख रही थी । तभी उसने देखा कि वह आगे जो सैकिण्ड क्लास का डिब्बा है, उसी में वह मजिस्ट्रेट है, जो उस दिन उसके यहाँ दावत में आकर हाथ मिला गया और रेणु से परिचय कर गया ।

खैर थी कि उस मजिस्ट्रेट ने रेणु को नहीं देख पाया । नहीं तो चार आँख होते ही, या तो रेणु को उसके पास जाना पड़ता या उसे स्वयं रेणु के पास आना पड़ता । यह देखकर रेणु ने स्वतः ही मुँह फेर लिया । उसने उधर देखना चाह कर भी नहीं देख पाया ।

उसी समय बाबा ने पुजारी के पास आकर पूछा—'क्या तुम और बिटिया इसी डिब्बे में बैठोगे, पुजारी ?'

'हाँ, हाँ तो!' पुजारी ने कहा--

यह सुनकर बाबा क्षण के लिये अवाक् रह गया। उसने डिब्बे से बाहर खड़ी हुई रेणु की ओर देखा। उसे उदास और कुछ सोचने की स्थिति में पाया। बाबा ने पुजारी से कहा--'इस डिब्बे में क्या कभी बिटिया बैठी है? इसमें हम बैठते। तुम दोनों ऊपर के दर्जे में बैठते। जाओ, अब भी ले आओ, पुजारी!' इतना कहकर उसने पुजारी के मुख पर देखा।

पुजारी यह सुनकर मुसकरा दिया। उसने कहा--'इस वर्ग-भेद ने हमें चौपट कर दिया है, बाबा! व्यर्थ में रुपया फेंकना है। यह पैसा आदमी को आदमी से दूर रखता है। मैं कहता हूँ, यहाँ भी आदमी बैठते हैं, हमसे अधिक सभ्य और धनिक यह सभी का डिब्बा है। भाईचारा नहीं दीख पड़ता है।'

बाबा चुप हो गया। इतने में जब गाड़ी ने सीटी दी, तो पुजारी ने रेणु के पास जाकर कहा--'आओ रेणु, आओ बैठें!'

बाबा ने कहा—'इसे बिटिया भी देखती है, मुन्शी जी! वह साथी चाहती है। इसी से वह कभी अनिल की ओर झुकती है, कभी पुजारी की ओर! पुजारी दूर रहता है, वह भागता है। अनिल और पास आता है। वह आता ही जाता है। वह तो कोई बात है, जो अभी तक विवाह नहीं हुआ। तुम अपनी कहते हो, मैं कहता हूँ, मुझे रात-दिन चैन नहीं पड़ता। सबकी यही इच्छा है कि पुजारी से बिटिया का विवाह हो। जाति-पांति कोई नहीं मानता। चौधरी भी यही चाहते हैं। कल तुमने नहीं सुना, जब चौधरी आये थे, तो पुजारी को न देखकर, बिटिया से बोले थे कि पुजारी नहीं आया, नहीं बुलाया गया। और मुन्शी जी--'बाबा ने कुछ रुक कर फिर कहा-- 'बिटिया का कच्चा मन है। कभी इस ओर, कभी उस ओर।'.........

तब मुन्शी दीर्घ निःश्वास भर कर अपने सामने रखी संदूकची पर झुक गया। बाबा उठकर अन्दर घर में चला गया।

उसके बाद ही, मुन्शी ने ऊपर को मुँह उठाकर आकाश की ओर देखते हुए कहा--'सब जगह धन और स्त्री का झगड़ा दीखता है। दुनिया इसी में उलझी है। उलझती रहेगी।' कहते हुए जब वह अपनी संदूकची में ताला डाल कर खड़ा हुआ तो इस प्रकार अंगड़ाई लेने लगा, जैसे उसने एक बड़ा बोझ-सा अपने सिर पर ले लिया था, जो व्यर्थ था, जो उसके लिये बेकार था।

× × ×

पुजारी चाहता था कि वह बाहर न जाये। वह रेणु से कह दे। किन्तु रेणु जिस उत्साह और उमंग के साथ तैयारी कर रही थी, उसे देख कर वह ऐसा नहीं कह सका। जब दूसरे दिन सब लोग स्टेशन पर पहुँच गए, तो पुजारी और रेणु के बीच

में एक बात उठ आई। रेणु ने टिकट लाने के लिये पुजारी को दस-दस रुपये के पाँच नोट दिये तो पुजारी ने अजान की तरह पूछा--'टिकट किस जगह के ?'

'किस जगह के ?' छूटते ही रेणु ने बात को दोहराकर पुजारी की ओर देखा। उसने तभी पुजारी के भावों को भी पढ़ने का प्रयत्न किया। वह अपने मन के अन्दर-ही-अन्दर कुछ हँसी, कुछ झुँझलाई और तब दूसरी ओर देखती हुई बोली--'यह भी अजीब बात है ! जब घर से निकल आए हैं, तो पूछते हैं, किधर जाना है ? वह तब ही पुजारी की ओर देखकर बोली--'क्या तुम नहीं जानते कि हमें कहाँ जाना है ?'

पुजारी तब भी सीधे-स्वभाव से रुपयों को हाथ में लिये हुए था। रेणु के उस भाव को देखकर वह उसी क्षण में बोला--'रेणु ने अच्छा नहीं समझा। इसे ठीक नहीं लगा और तभी उसने रेणु से फिर कहा--'हाँ,हाँ हमें कहाँ चलना है, बताओ। हरिद्वार ?'

रेणु पूर्ववत् खड़ी थी। उसी भाव में उसने कहा--'तुम्हें क्या-कुछ हो गया है पुजारी ? तुम्हें इस दुनिया का आदमी बनना है, या नहीं ? जैसे जानते नहीं, तुमसे कहा-सुना नहीं। एक बार नहीं, सौ बार कहा है कि हरिद्वार चलना है। फिर भी पूछना है ? मैं कहती हूँ, तुम इसी प्रकार घूमने चले हो, क्या ? मैं जानती तो हूँ, जिस शान्ति और सुख को पाने चली हूँ, वह तो क्या, तुम और परेशान करोगे, जीवन में और उलझन डाल दोगे।'

सुन कर रेणु डिब्बे में चढ़ गई। बैठते ही उसने नाक पर रुमाल लगा लिया और बड़ी उपेक्षापूर्ण दृष्टि से मुसाफिरों की ओर देखा। देखा, सभी तरह के आदमी हैं, कुछ शहरी हैं, कुछ गाँववाले हैं। कुछ चिलम भी पी रहे हैं और धुँए से उस डिब्बे को गन्दा कर रहे हैं। रेणु के सामने ही जो बेंच है, उस पर दो-तीन स्त्रियाँ हैं, जो शहरी और शिक्षित नहीं हैं, वह किसी गाँव की हैं। उन्हीं में एक स्त्री की गोद में बच्चा है, वह रो रहा है। रेणु के देखते-देखते ही उस बच्चे ने अपनी माँ की गोद में पाखाना और पेशाब कर दिया। मा अभी अधिक आयु की नहीं थी। शायद वह बच्चा उसकी पहिली ही सन्तान थी। बच्चा अब भी रो रहा था, मा जितना ही शान्त करने की चेष्टा करती थी, वह उतना ही मचलता था। यह देख रेणु ने उधर से मुँह फेर लिया। उसने घृणा और उपेक्षामयी दृष्टि से खिड़की के बाहर अपना मुँह कर लिया।

पुजारी ने रेणु की उस गति-विधि को देखा। उसे यह अच्छा नहीं लगा। साथ ही वह देखता था कि यह परेशान हो रही है। वह बच्चे का पाखाना और पेशाब अपने कपड़ों में लिये ही, जैसे सकुचा रही है और अपने में ही दबी जा रही

है। वह बार-बार सब ओर देखती है और पानी खोजती है। पुजारी और रेणु की सीट के ऊपर जो सामान रखा था उसी के पास ही एक लोटा था, वह पानी से भरा था। स्त्री बार-बार लोटे की ओर भी देख रही है। पास में एक तरुण बैठा है, वह शायद उसका पति है। वह भी चुप है।'

उसी समय पुजारी ने रेणु की ओर देखकर कहा—'बाहर क्या देखती हो, रेणु ! इस ओर देखो। उस सामने बैठी स्त्री की परेशानी देखो। मा बन कर कितनी परेशान है। शायद पानी चाहती है—'

रेणु ने सुनकर पुजारी की ओर देखा। वह जिस रहस्यमयी दृष्टि से देखने लगी थी, वह सचमुच ही नई थी। जो द्वन्द्व उसके अन्दर उठ आया था, वह छाया की तरह उसकी आँखों मे भी आ गया था। रेणु अभी-अभी सोचती थी कि वह जिस लम्बे प्रवास में निकली है और पुजारी को साथ लाई है, अभी आरम्भ में ही वह अकारण खिन्न और उदास बन गई है,—आखिर क्यों ? उसने कहा—सब पुजारी के कारण। पुजारी की राह और है, उसकी राह और। वह अपने ही दायरे में चलता-फिरता है......।

साथ ही रेणु ने मन में कहा—'अभी होते अनिल बाबू, तो क्या पूछते कुछ ! वह अपने-आप सेकिण्ड क्लास के टिकिट ले आते और उसी मजिस्ट्रेट के पास जाकर बैठते। एक ये हैं पुजारी, जो नौकरों की तरह सामान उठाते-धरते हैं। यहाँ आकर बैठ गए हैं, जहाँ न किसी को बात करने का शऊर है, न कोई समझदार है, निरे जंगली भरे हैं।'

किंतु जब उसने पुजारी की बात सुनी और उसकी ओर देखने लगी तो पुजारी ने पूछा—'क्या सोचती हो ? तुम कुछ भी नहीं देखतीं ? तुम कुछ भी नहीं सुनतीं ?'

रेणु ने उदास मन से कहा—'क्या सुनूँ, क्या देखूँ !'

उसी समय स्त्री ने फिर रेणु और पुजारी की ओर देखा। जिसके साथ हठात् पुजारी ने बाबा से पूछा—'पानी है ?'

बाबा ने कहा—'है तो।'

'तो लाओ, इस बहिन के कपड़े धुलवा दो।'

बाबा ने कहा—'यह पीने का पानी है, पुजारी !'

'अरे, हाँ भाई, हम नहीं पियेंगे। हम मर नहीं जायेंगे।'—पुजारी ने कुछ रुष्ट भाव में कहा—'कैसे आदमी हो, देखते नहीं।'......

बाबा ने उठकर लोटा लिया और उस स्त्री के कपड़ों को धुला दिया।

उसी क्षण पुजारी ने रेणु से कहा—'कदाचित् तुम पहिले इस डिब्बे में नहीं बैठी हो। टिकिट जब दस रुपये में आ गये तो मैंने समझा कि क्यों तुमने पचास

रुपये दिये ? और दिखता है, तुम यहाँ नहीं बैठ पा रही हो। तुम परेशान हो।'—इसके बाद ही पुजारी ने फिर कहा—'जाने यह जीवन का कैसा आनन्द है कि जो जनता है, जो सचमुच ही हमारे बीच की पवित्र आत्मा है, हम उससे दूर-दूर रहें, घृणा करते रहें। पैसे की स्पर्धा ने हमें यह भी सिखा दिया है। उसका यह सदुपयोग नहीं है। पैसा इसलिये नहीं निर्मित हुआ है! यह हमें जीवन देने और जाग्रत करने के लिये बनाया गया है। पैसा पाकर यदि आदमी ने आदमी को न समझा, उसने अपने आस-पास के वातावरण को नहीं देखा, तब तो यह जानवर ही ठीक! पैसा पाकर जो आदमी में अहं और बनावटीपन आ गया है, बस, यही हीनता है। रेणु, ये बताओ तो, हम कब तक ऐसे चलते जायेंगे। तुम इस समाज से दूर बैठकर क्या कुछ देख पाती? जब ऊँचे दर्जों में बैठने वालों के लिये यह उपेक्षित और तिरस्कृत समाज कभी भी क्षम्य नहीं रहा। यह सदा दुतकारा गया और दूर-दूर हटाया गया। आखिर क्यों? मुझे दिखता है, जो मनुष्य जानवर की कोटि से बाहर निकल आया है, यदि वह यहीं होता, यह अपने पुरखों के आदि मार्ग का अनुगामी बना रहता, तो यह अधिक सुखी और सन्तुष्ट जान पड़ता। कहते यह हैं कि आज, का मानव प्रगति और स्वान्तः सुखाय की लीक पर चल पड़ा है। यह भ्रष्ट है। यह सत्य नहीं है।

पुजारी ने कुछ देर रुकने के बाद फिर कहा—'वह सामने स्त्री बैठी है, जिसके बच्चे ने उसके कपड़े बिगाड़ दिए, पर क्या मजाल जो कोई भी उसकी विवशता और व्याकुलता को देख लेता और सहारा देता। मैं कहता हूँ क्या बच्चा उसी का है मानो हम सबसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है? किसी ने भी उस ओर नहीं देखा। किसी ने भी नहीं समझा उसका मर्म! और तुम तो आते ही दूर बैठ गई हो और बाहर ही देखती रही हो। मैं कहता हूँ, तुम इस ओर देखो और समझो की एक मा, बच्चा पाकर कैसी कठिनाइयाँ पाती है। वह सहर्ष ही, मा बनने के लिए कितने कष्टों को अनायास ही स्वीकार करती है। लो, यह टिकटों के बाकी रुपये। इतने बच गये। वह व्यर्थ ही जाते। इनका और भी सदुपयोग है। यहाँ बैठे तो, वहाँ बैठे तो, बात एक है।' कहते हुए पुजारी मुसकराया। वह तब बड़ी भावनामयी दृष्टि से रेणु की ओर देखने लगा।

उस समय रेणु हँसी, वह मुसकराई और वैसी ही आँखों से पुजारी की ओर देखने लगी।

उसी समय बाबा ने कहा—'भूख हो तो खाना खाओ' पुजारी!

'हाँ, भूख तो है। लाओ खाना दो।' पुजारी ने कहा।

'और पानी?' रेणु ने पुजारी की ओर देखकर पूछा।

यह सुनकर पुजारी हँस दिया।

रेणु ने कहा—'यही है, तुम्हारी उदारता का फल। जो पानी था, समाप्त हुआ। जब दूसरा स्टेशन आयगा, तब पानी देखना मिला तो मिला, नहीं तो रहना भूखे और प्यासे—?'

पुजारी ने लापरवाही के भाव में कहा—'यह सब आनी-जानी बातें हैं। यह सभी स्वाभाविक हैं। इतने में आपत्ति नहीं।'

रेणु ने उस समय मर्मभरी दृष्टि से पुजारी की ओर देखा जिससे स्पष्ट था कि वह जो सोच रही थी, वह अब उसके पास नहीं था, पुजारी की बात सुनने के साथ।

उसी समय पुजारी ने फिर कहा—'किसी व्यक्ति से ऐसी आशा क्यों बाँध ली जाये कि जिसके कि वह अयोग्य हो, मैं भी ऐसा ही एक हूँ। तुम शिक्षित और सभ्य महिला हो, रेणु! तुम ऊँचे समाज में बैठती हो। नहीं जानता, तुम साथ में क्यों इस पुजारी को ले आई हो, जो उसके अनुरूप नहीं है। जो तुम्हारे सर्वथा ही विपरीत है।' यह कहते हुए पुजारी रुक गया। वह खिड़की के बाहर भागते हुए वृक्षों की ओर देख फिर रेणु की ओर देखकर बोला—'कदाचित् तुम यह देख लेतीं तो ठीक था कि तुम्हारा रंग-रूप ही दुनिया का दर्पण नहीं है। तुम अभी उसकी सभ्यता से दूर हो। तुम अभी दूर-दूर रही हो। गाँव में रह कर भी, किसानों की भलाई से तुम धनिक और कुलीन घर की मालकिन बनी हुई, आज तक जहाँ रही और पली हो, उस गाँव के ही सम्पर्क में न आ पाई हो, रेणु? मैं क्या नहीं जानता कि इस डिब्बे में आकर तुम्हें अच्छा नहीं लगा है। मैं जानता था कि तुम किस डिब्बे में बैठती हो, परन्तु मैं ऐसा नहीं कर पाया। तुम्हारी सभी इच्छाएँ ही तो मेरी इच्छाएँ नहीं हैं। जब पुजारी साथ है, जब तुमने इसे समीप रखना चाहा है, तो निश्चय ही, इसे यह अधिकार रखना है कि स्वयं उचित और अनुचित को समझे। यह तुम्हें भी प्रेरित करे। तुम इतने पर ही खिन्न और उदास हो। तुम यह जान कर भी भूल जाती हो कि पुजारी अमीर नहीं है। इसने पैसे से निर्मित दुनियाँ की ऊँचाई की ओर नहीं देखा है। इसने अपनी ओर देखा है और तुम चाह कर भी नहीं देख पातीं। तुम पैसे से खिलवाड़ करती हो, उसमें सुख भोगती हो, तुम!......'

'तुम रुष्ट हो गए, पुजारी!' हठात् रेणु ने कहा।

पुजारी ने जाने कैसी विरक्ति के स्वर में कहा—'नहीं, रेणु, मैं रुष्ट नहीं हुआ! रुष्ट तुम हो।'

'तुम जो कुछ कहोगे और करोगे, मुझे वही मान्य है, बस।'

यह सुन कर भी पुजारी हँसा नहीं, गम्भीर बना रहा।

रेणु ने फिर कहा—'अब मैं तुम्हारे ही ऊपर आश्रित हूँ, पुजारी! तुम एक

पुरुष हो, मैं नारी हूँ। मैं न जाने कितनी त्रुटियों और कमियों से भरी हूँ, तुम मेरी ओर देखो। ऐसे तो तुम कभी रुष्ट होगे, कभी अपनी भावनाओं में भरे ही-जाने क्या सोचते होगे और इतने में बीत जायेंगे, इस रेणु के यह दिन, हो लेगी इसके जीवन की समाप्ति !' कहते हुए रेणु का स्वर भारी हो गया। उसने उसी क्षण खिड़की के बाहर मुँह कर लिया।

यह देख पुजारी पहिले से अधिक आतुर और भारी हो गया। उसने अपने हाथ को रेणु के हाथ पर रख दिया और सहलाने लगा।

उसी प्रकार पुजारी ने कहा—'रेणु !'

उसने कहा—'हूँ।'

'मेरी ओर देखो।'

रेणु तब बरबस ही पुजारी की ओर देखकर मुस्कराई, और होठों से हँस दी।

पुजारी ने कहा—'अब भूख लगी है।'

'और ठहरो अगला स्टेशन आने दो।'

जब अगले स्टेशन के पास, गाड़ी पहुँची, और प्लेटफार्म पर ठहरी तो बाबा ने लोटा उठा लिया और पानी ले आया।

रेणु और पुजारी खाने के लिये बैठ गए, बाबा परोसने लगा। पुजारी ने कहा—'खाना तुम्हें परोसना चाहिए, रेणु ! यह तुम्हारा काम है।'

यह सुनकर रेणु ने खाना ले लिया। उसने पुजारी और अपने सामने रखकर शेष बाबा और पण्डित को दे दिया।

पुजारी ने कहा—'मैं एक दिन कहूँगा कि बनाओ भी।'

यह सुनकर रेणु ने हँस दिया और स्वीकार कर लिया।

पुजारी ने खाते-खाते कहा—'इस यात्रा में या तो तुम्हीं मेरे अनुरूप बन जाओगी, अथवा मैं ही। यह हमारे जीवन का एकांत प्रवास है, जिसके आरम्भ में ही तुम रुठ गई हो। पर मैं तुम्हें मना भी पाऊँगा, ऐसा मैंने कभी भी अविश्वास नहीं किया। मुझे अपने पर भरोसा है।'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'तुम जो एक पहेली हो, क्या इसे रेणु कभी समझ पायेगी,—ना, कभी नहीं।'

पुजारी ने आलोड़ और मधुर स्वर में कहा—'नहीं रेणु, तुम सभी कुछ समझ पाओगी। पुजारी गहरी समस्या या पहेली नहीं है, जो न समझी जाय, यह जो ऊपर है, वही अन्दर है।'

'अच्छा, क्या दूँ, पूरी ?'

'तुम तो खाओ, मैं खाए जा रहा हूँ।'

यह सुनकर रेणु फिर खाने में लग गई। इसी क्षण उसने बाहर के सूने अन्धकार की ओर देखते हुए कहा—'ऐसा है, पुजारी का मन, निखालिस दूध के फेन-सा। मैं इसे कहाँ से और किस ओर से पाऊँ? इसे कैसे पकड़ूँ। यह सभी ओर से अजेय और असाध्य है। भला कहीं आड़ है, इस मन में। ना, कहीं भी नहीं।.........'

उस क्षण प्रसन्न थी और आनन्द में लीन थी, रेणु।

× × ×

पुजारी जानता था कि रेणु आजकी उन सभ्य लड़कियों की तरह नहीं है, जो पश्चिमी-सभ्यता में रंग कर अपने देश के धर्म और संस्कृति को न मानती हों। हरिद्वार पहुँच कर जब प्रातः ही सब गंगा-स्नान करने गए, तो पुजारी ने देखा कि रेणु ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति-भाव से स्नान किया है। जब वह स्नान करके लौट चलने को हुई तो बाबा ने कोई बात उससे कही, जिसके उत्तर में उसने पुजारी की ओर देखा।

पुजारी ने पूछा—'क्या बात है, रेणु!'

बाबा ने कहा—'यहाँ हरिद्वार आए हैं, पुजारी के हाथ से कुछ पुण्य करा दो, पुजारी!'

यह सुनकर पुजारी ने रेणु की ओर देखा। वह सफेद लाल किनारीदार धोती पहने हुए लग रही थी, जैसे गँगा के जल-सी ललित और श्वेत। उसी ओर देखते हुए पुजारी ने पूछा—'क्यों रेणु! कुछ पुण्य करने की इच्छा है, क्या? करो!'

रेणु ने कहा—'तुम जानो!'

'नहीं बताओ, जो बटुआ रात तुमने मुझे सम्भाल दिया है, वह मेरी जेब में है। क्या राय है?'

रेणु चुप थी। वह गंगा की धार की ओर देखने लगी थी।

पुजारी ने उसी ओर देखते हुए कहा—'पुण्य करने से पहिले उसकी परिभाषा भी समझ लेना ठीक है। हम कितने गन्दे समाज में बसे हैं, जब मैं इसकी कल्पना करता हूँ, तो सिहर उठता हूँ। हमने पाप और पुण्य को लीप-पोत कर एकाकार कर दिया है। हम जीवन-भर स्वर्ग की कल्पना और चाहना करते हैं। हम केवल इसी धारणा पर पुण्य और पर्व मनाने आए हैं रेणु! इसी आकांक्षा के हेतु हम अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह भिक्षुक और साधु-संत ऐसे ही पुण्यात्माओं द्वारा निर्मित हुए हैं जो पुण्य चाहते हैं और स्वर्ग चाहते हैं।......'

कहते हुए पुजारी रुक गया। वह क्षणेक रेणु की ओर देखकर फिर बोला—'ये मंदिरों के ऊँचे-ऊँचे बुर्ज और प्रासाद, यह हमारे भक्ति भावना के प्रतीक तीर्थ-

स्थान, मुझे कहीं से भी पवित्र नहीं दिखाई देते। ये नरक हैं, ये पापागार हैं। पुण्य और धर्म कहाँ हैं, हम इसे नहीं खोजते। हम उसकी वास्तविकता को सर्वथा भूल बैठे हैं। यह सामने जो तुम भिखमंगों की जमात देखती हो, उनमें अनेक ऐसे हैं, जो कई-कई हजार की सम्पत्ति पाए हुए हैं। इनका व्यवसाय ही यह है। यह भिक्षा-वृत्ति के दास बन गये हैं। जो धनवान् हैं, जो अपने में पाप अनुभव करते हैं, वह इन्हीं को कुछ देकर मुक्ति पाना चाहते हैं। उन्होंने यही पथ चुन लिया है। परन्तु यह सत्य नहीं है। सत्य और है। आओ चलें। जिन्हें चाहिए वह यहाँ नहीं मिलेंगे। वह यहाँ नहीं आयेंगे। उनका यह स्थान नहीं है। वह जीवन-संग्राम में लीन हैं। उन्होंने हाथ फैलाना नहीं सीखा है। वह देश की आत्मा और देश के गौरव हैं। इसके लिये तो तुम्हारा गाँव ही बहुत है, रेणु! तुम्हारा वही तीर्थ है।' कहते हुए पुजारी चलने के लिये आगे बढ़ लिया।

उसी समय स्नान करके बाबा ने आकर कहा—'क्यों बिटिया, कुछ लाऊँ, मिठाई-पूरी। कुछ चाय भी?'

यह सुनकर रेणु तो कुछ नहीं कह पाई। किन्तु पुजारी ने हँसते हुए कहा—'अभी तो कई दिन रहना है, बाबा! तब इकट्ठा ही भुगतान कर दिया जायगा। आज ही क्यों?'

बाबा पुजारी के मर्म को नहीं समझ पाया। वह चुप हो गया। किन्तु पुजारी ने देखा कि जैसे उसे खाली हाथ लौटते अच्छा नहीं लग रहा है। वह रुक गया और रेणु की ओर देखकर बोला—'कुछ मंगा लें, क्या? कुछ बाँट देंगे।' लेकिन उसने कहा—'पर यह अच्छा कहाँ है? मैं इसे मनुष्यता का पाप मानता हूँ।'

रेणु ने हँसकर कहा—'चलो, घर चलें।'

'नहीं, कहता हूँ, कुछ मँगा लो। मैं लाऊँ? पाँच-दस रुपये की बात है, बाबा भी चाहता है, और तुम भी। फिर मेरे कारण ही क्यों यह पुण्य-कार्य रुक जाय?'

यह सुन कर पुजारी के साथ रेणु मुसकराई। वह बोली—'तुम भी विचित्र जीव हो! न उल्टे लिये जाते हो, न सीधे! तुम्हारी सहमति और असहमति दोनों साथ-साथ हैं। तुमने कल कहा तो कि मुझे तुम्हारे अनुरूप बनना है। सो ठीक है, जब मैं तुम्हें अपने रंग में न रंग पाई, तब तुम्हारा ही रंग ठीक है। मुझे उसी में रंग कर तुम्हारे समीप आना है।'

यह सुनकर साथ-साथ चलते हुए पुजारी हँस दिया। उसने कहा—'इस भिक्षा-वृत्ति ने हमारा उपकार नहीं किया है। इसने हमें भ्रमाया है। जो इसके अधिकारी हैं, वह शायद नहीं पाते। मेरी तो एकांत धारणा है कि जिन विचारों के धरातल पर खड़े होकर भिखारियों को भिक्षा दी जाती है, वह सचमुच ही हमारे लिये कलंक

है। हम पैसा देकर उनसे आशीष लेते हैं और चाहते हैं कि जो अपराध हमने जीवन में किए हैं, वह धुल जाएँ, और मिट जायें। यह कितनी बड़ी मूर्खता है? एक ओर जिस जाति का गला काटा जाता है, खून किया जाता है, उन्हें कुछ देकर, उनका गिड़गिड़ाना, उनका दया पाने के लिये हाथ फैलाना भी देखना पसन्द किया जाता है। जिनका पैसा है, वह उन्हीं को दिया जाता है, उपकार के साथ और अहंभाव के साथ। रेणु, जाने यह समाज कब से अँधा चला आया है। वह दिन सचमुच ही दुर्भाग्य का दिन था, जबकि यह कंकड़-पत्थर रूप में सोने-चाँदी और हीरे-पन्ने मनुष्य ने अपने मध्यस्थ बनाये थे। जिसका दुष्परिणाम हम यहाँ भी देखते हैं। ये मन्दिर, ये मठ निरन्तर ही बड़ी सम्पत्ति को अपने पेट में रखते हैं। उसका दुरुपयोग करते हैं। जो दाता हैं, वह अपनी झूठी और थोथी भावना पर ही, यहाँ भेंट चढ़ा जाते हैं। वह विवेकहीन और विचारहीन बन गए हैं।......'

उस समय रेणु प्रसन्न हुई पुजारी की बात सुनती जाती थी और उसकी ओर देखती जाती थी। ठहरने के स्थान पर जाकर पुजारी बिस्तर पर पड़ रहा। रेणु उसी के पास ही नीचे बिछी हुई चटाई पर बैठ गई। तभी पुजारी ने उसकी ओर देखा। वह गंगा के घाट पर माथे पर चन्दन की टिकुली लगा आई थी। उसने बालों में कंघा भी नहीं किया था। बिना तेल के सूखे हुए बाल हवा के झोंके के साथ मुँह पर आ रहे थे। वह हिल-डुल रहे थे। एकाग्र हो पुजारी यह दृश्य देख रहा था। उसी प्रकार देखते हुए उसने रेणु से पूछा—'आज तुमने बालों में तेल नहीं डाला, कंघा भी नहीं किया?'

रेणु ने कहा—'अब कंघा करूँगी, तेल भी डाल लूँगी।'

'पर मुझे लग रही हो, जैसे तुम ही गंगा हो, तुम्हीं इस पुजारी का तीर्थ हो।

यह सुनकर रेणु लजा गई। वह अपनी सरस आँखों से पुजारी की ओर देखने लगी। उसी प्रकार देखते हुए उसने पूछा—'खाना खाओगे क्या, यह बताओ?'

'जो मिले। पुजारी से क्या पूछती हो कि क्या खाएगा। इसने तो पेट भरना सीखा है। अच्छे और सुस्वाद भोजन इसे कहाँ मिले? वह तो सब तुमने खिलाये हैं।'

'अब भी जो चाहते हो, वह मँगाओ।'

'बताऊँ मैं क्या चाहता हूँ।' पुजारी ने अपने होंठों पर मन्द हास्य लाते हुए कहा—'तुम सदा इस पागल पुजारी के सामने ऐसे ही बैठी रहो, इसी तरह लड़ती-झगड़ती रहो, इससे इसी प्रकार ममताभरी बातें करती रहो, बस यही। तनिक शीशे में देखो, जो तुम नहीं समझ पाओगी। किन्तु पुजारी तो देखता है, तुम इस सीधी-सादी धोती में जो लग पाई हो, ऐसी क्या कभी उन कीमती साड़ियों में दीख पाई?

लेकिन सभी की तो यह आँख नहीं है। तुम लगती हो, जैसे रूप की रानी हो, अनोखी और अनुपम।......'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'तुम्हें भूख का ध्यान नहीं है ?'

'लो, मँगाओ कुछ। कुछ भी। यह बटुवा लो।'

पुजारी ने बाबा को बुलाकर कहा—'पण्डित को साथ लेकर बाजार से खाना ले आओ। बनवाना शाम को। कुछ मिठाई लाना, कुछ पूरियाँ।' कहते हुए उसने बटुआ खोलकर पाँच रुपये का नोट दे दिया।

बाबा चला गया। रेणु ने कहा—'कल मसूरी चल दें, तो ठीक।'

'अभी से! यहाँ जो स्थान हैं, वह क्या बे-देखे ही रह जायेंगे। शाम को घूमने चलेंगे।'

'तो परसों।'

'तुम्हें मसूरी पसन्द है, क्यों ?'

रेणु ने कहा—'मैं पिता जी के साथ गई थी।'

पुजारी ने कहा—'हमारे सभी स्थान आज विलास के केन्द्र बन गए हैं, वह सभी भ्रष्ट हैं।'

रेणु ने अपनी बात पर कहा—'वहाँ रह कर देखना, तुम्हारा स्वास्थ्य कितना सुधर जायगा। तुम देह पर ध्यान नहीं देते। आज कुर्ता बदलना। उस बक्स में हैं, तुम्हारे कुरते।'

पुजारी ने आश्चर्य से पूछा—'मेरे कुर्ते ? कहाँ हैं ? कैसे हैं देखूँ ?'

रेणु ने कहा—'मैंने सिलवा लिये हैं। कुछ बनारसी सिल्क के, कुछ खद्दर के।'

यह सुनकर पुजारी तुरन्त बक्स के पास गया। रेणु ने कहा—'ठहरो, ठहरो, मैं दिखाती हूँ। और पास जाकर उसने बक्स से एक दर्जन कुर्ते, टोपियाँ, रूमाल और धोती निकाल कर पुजारी को दिखाए। उन्हें देखकर आश्चर्य से पुजारी ने पूछा—'यह सब मेरे लिये हैं।'

रेणु ने कहा—'हाँ, सब तुम्हारे लिये। यह तुम्हारे ही कपड़ों का बक्स है।'

'ओह, मैं तभी सोचता था, कि इतना सामान क्यों है ? इतने कपड़े तो मैं जीवन-भर में पहन पाऊँगा, रेणु ! और इतने कीमती, ऐसे मुलायम और अच्छे !' कहते हुए पुजारी फिर बिस्तर पर जाकर बैठ गया। रेणु भी बक्स में फिर पूर्ववत् कपड़े रख, अपनी जगह बैठती हुई बोली—'क्यों, पसन्द नहीं आए ? मसूरी में और बना लिये जायेंगे।'

'हाँ, क्यों नहीं बना लिये जायेंगे! अब पुजारी जमींदार की बेटी का कृपा-

पात्र जो है। इसे सजना और बाबू जी बनना ही चाहिए। इसे यही शोभा देगा। भला तुम्हारे साथ इसका यह बेढङ्गा वेश कैसे निभ पाएगा। तुम ठहरीं जमींदार की बेटी, सुशिक्षित और ऊँचे साहब बहादुरों में बैठने वाली, आखिर कैसे मेल हो? कहते हुए पुजारी हँसने लगा।

रेणु ने कहा—'कपड़े काटते नहीं हैं। इन्हें आदमी पहनते हैं। मैं कैसा सोचती हूँ, जाने तुम कैसे बनते जा रहे हो।'

सुनकर पुजारी ने रेणु की ओर देखते हुए कहा—'मैं कैसा-कुछ बनता जा रहा हूँ, रेणु! तुम मुझे जिस साँचे में ढालने की कल्पना करती हो, वह नहीं निभ पाएगा। ऐसी असम्भव और अप्रत्याशित बात तो मैं जीवन में नहीं कर पाऊँगा। इस तीर्थ पर, इस गंगा के पवित्र किनारे पर तुम मेरी यह बात सुन लो कि यदि मैं तुम्हारा मनचाहा बन गया, तो निश्चय ही, अपने जीवन के लिये मैं स्वतः अपनी आँखों में हीन और पतित बन जाऊँगा। जबकि अपने जीवन में एकांत और एक-मन से मैं तुम्हारी पूजा करता आया हूँ, तो तुम देखती हो, मैं सदा ही एक अलभ्य अनुभूति से भरा हुआ यह भूल पाया हूँ कि तुम देखने की वस्त हो, पाने की नहीं। यह मैंने निरुद्देश्य ही नहीं चाहा। मैं कभी भी स्वयं अपने को नहीं भूल पाया हूँ, रेणु! मैं जिस जीवन के प्रति मोहित हुआ हूँ, उसी में तुम्हें ले आना मैंने एक दिन भी पसन्द नहीं किया। वह तुम्हारे घर की प्रतिष्ठा के प्रति अन्याय है। जो पुजारी नंगा और भूखा है, उसके साथ मिलकर तुम्हारा सभी-कुछ नष्ट हो जाएगा। मैं धन को ईर्षा और उपेक्षा से नहीं देखता। वह जीवन में उपादेय है, किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि धन हमें एकरस नहीं होने देता। हम जैसा जीवन चाहते हैं, उससे वह हमें नहीं मिलने देता। मैं जब भी धन, सुन्दर कपड़े और अच्छे भोजन की कल्पना करता हूँ, तो न जाने किस प्रेरणा से, अपने-आप में डूब जाता हूँ, मैं सिहर जाता हूँ। मैं जब इस दुनिया के बड़े कुटुम्ब की ओर देखता हूँ, तो यह नहीं भूल पाता कि मैं उससे मिला हूँ, उससे दूर नहीं हूँ।............'

रेणु देखती थी कि पुजारी बात कहते-कहते अत्यधिक गंभीर हो गया है। अब उसका मुँह भी लाल हो चला है। इसीलिये उसने पुजारी के रुकते ही अपने होठों पर हल्की-सी मुसकराहट लाकर कहा—'यह रेणु तुमसे कुछ सीखना और पाना चाहती है। तुम वही इसे दो। इस प्रवास में इसे वही पाने दो, पुजारी!'

पुजारी तब सूखे होठों से हँस दिया। वह बोला—'तुमने व्यर्थ ही यह कपड़े बनवा लिये। पैसा कीमती है। उसका उपयोग भी कीमती है।'

रेणु ने इसे स्वीकार करते हुए कहा—'मैं जानती थी, तुम कुछ कहोगे।

तुम कपड़े देखकर नाक-भौं सिकोड़ोगे। किन्तु बहुत कीमती और भड़कीले नहीं हैं। यह तुम्हारे ही अनुरूप हैं।'

पुजारी ने हँस कर कहा—'अच्छा, अच्छा।'

उसी समय खाना आ गया। रेणु ने पण्डित से कहा—'लाओ मुझे दो। तुम और बाबा भी बैठो।'

रेणु ने सभी के लिये खाना परोस दिया। खाना खाते हुए पुजारी ने बाबा की ओर देखकर पूछा—'क्यों बाबा, पहिले भी हरिद्वार आए थे ?

बाबा ने कहा—'हाँ, बड़े मालिक के साथ आया था।'

पुजारी ने कहा—'तुम भाग्यशाली हो, बड़े आदमी के साथ रहकर सभी जगह घूम आए हो।'

'तुम भी भाग्यवादी हो ?' रेणु ने हँसते हुए पुजारी से पूछा।

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं। किन्तु मैं इसे अन्धा बन कर नहीं देखता।'

'अच्छा, पूरी और लो' रेणु ने कहा।

पुजारी ने कहा—'अभी हैं।'

'लो भी, लो ' पूरी देते हुए रेणु ने कहा—'यह हरिद्वार की तुकती खाओ। यह रसगुल्ला और लो।'

पुजारी ने हँस दिया। वह बोला—'ऐसे मोटा नहीं हो पायगा, पुजारी ! बीमार पड़ जायगा। फिर भूल जाओगी, मसूरी और पहाड़ों की सैर !'

'बस, बस, खाने की ओर देखो। तुम्हारी जबान है, या कोई मशीन, यह कभी बन्द नहीं रहेगी। कभी कुछ, कभी कुछ, जब देखो, चलती दिखाई देगी।'

'पर तुम शांति क्यों होती हो ? तुम मृत्यु की कल्पना से डरती हो। तुम्हीं क्यों, हमारा साहित्य ही इसी से लिपा-पुता है। संसार असार है, सब झंझट है, बस यही है, हमारा विमल उपदेश। और तुम भी वही लिए हो। जो मैंने कहा, तो लताड़ने लगी हो। अच्छा जी, अब तो पूरियाँ और मिठाई खा रहा हूँ, जो कहोगी सुन पाऊँगा और हाँ-में-हाँ मिला दूँगा।'

यह सुनकर रेणु के साथ सामने बैठे हुए बाबा और पण्डित भी हँस पड़े। उन्हीं की ओर देखकर रेणु ने कहा—'इन पुजारी महाराज की बात सुनते हो ! यह तो तब है, जब कि मुँह अपना काम कर रहा है। हाथ भी चल रहे हैं। और तभी उसने परिहास लिये पुजारी की ओर देखकर कहा—'अच्छा महाराज, तुम्हारी बातें शिरोधार्य ! बस अब तो मानो ! बताओ क्या चाहिए।'

पुजारी ने कहा—'अब कुछ नहीं।'

'और महाराज तुम लो, बाबा तुम ?'

बाबा ने कहा—'अब कुछ नहीं, बिटिया।'

'नहीं, मिठाई और लो।'

उसी समय पण्डित ने कहा—'नहीं, मालकिन, बस !'

'वाह, अभी से ! तुम कैसे ब्राह्मण हो !' कहते हुए रेणु ने इमरती, बालूशाही पण्डित के सामने रख दी। कुछ बाबा को दी।

बाबा ने कहा—'तुम भी तो खाओ, बिटियारानी !'

'हाँ, हाँ, मैं भी।' कहते हुए रेणु खाने के लिये बैठ गई। वह पुजारी की ओर देखकर बोली—'एक इमरती और, बस एक।'

यह सुनकर पुजारी उठ खड़ा हुआ। वह खा चुका था। जब रेणु भोजन की समाप्ति पर आई तो पुजारी ने उसके सामने मिठाई-पूरी रख दी। जिसे देख रेणु ने छूटते ही कहा—'यह क्या ! मैं खा चुकी।'

'खाओ, खाओ। अपने साथ इतना पैदल चलवाऊँगा जो छठी का दूध भी न याद आए तो बात ही क्या। सब खाया-पिया पच जाएगा।'

यह सुनकर रेणु ने जोर से हँस दिया।

जब भोजन का काम समाप्त हो गया, तो पुजारी ने अपने झोले से दो-तीन अखबार निकाले। उनमें से एक को अपने पास रखकर बाकी को रेणु को देकर कहा—'लो पढ़ो। इनमें मेरी भी रचनाएँ हैं। शायद तुम्हें पसन्द आएँ।'

रेणु ने मुस्कराते हुए कहा—'यह जरूरी है क्या कि तुम्हारी रचना पसन्द ही आए ?'

पुजारी ने कहा—'हाँ, तुम पढ़ोगी जरूर।'

उसी समय रेणु बिस्तर पर पड़ गई। वह एक पत्र को लेकर खोलती हुई बोली—'इसी पत्र में तुम्हारी एक रचना पढ़ी थी, वह अच्छी थी। वह कहानी शायद किसी विधवा पर लिखी थी। तब तुमसे पूछना चाहती थी कि कथा में, तुम क्यों पक्ष करते हो ? क्यों पुरुष को स्त्री से नीचा दिखाते हो ?'

पुजारी ने कहा—'यह पक्ष मेरा आज भी है। इतना कहकर मैं नारी पर दया नहीं करता। मैं पुरुष और नारी के सम्बन्ध को ठीक उसी प्रकार तोलता हूँ, जैसे निर्धन और धनिक का सम्बन्ध। धनिक का स्वभाव रहा है कि वह अपनी आवश्यकता के लिये सदा ही, निर्धन की विवशता और परवशता से लाभ उठाता आया है। इसी प्रकार पुरुष और नारी की बात है। पुरुष ने अपने स्वार्थ के लिये स्त्री को पतन के गर्त में झोंक दिया है। जैसे निर्धन दुनिया के किसान और मजदूरों को अपना अन्नदाता और पृष्ठपोषक कहता आया है, इसी प्रकार पुरुष भी नारी को मा-जैसे उच्च नाम से सम्बोधित करता आया है। किन्तु सत्य यह है, न धनिक ने कभी

निर्धन किसान को अन्नदाता माना, न पुरुष ने नारी को माना ! वह आदर्श का और उनकी आँखों में धूल झोंकने का उपायमात्र बना रहा।……'

बाहर की ओर देखते हुए पुजारी ने कहा—'किन्तु इस चित्र का जो दूसरा रूप है, वह भी कम भयानक नहीं है। मैं जब-तब यह सदा ही सोचता हूँ, कि क्या कारण है एक आदमी हजारों व्यक्तियों पर मनमानी करता रहे, जब मैं पकड़ कर जेल भेजा गया था, तो इस विषय में अधिक स्वतन्त्रता से विचार सका था। मैं यह कहने में सकोच नहीं करता कि किसान और मजदूर आज स्वयं अपनी दृष्टि में पतित हो गया है। सदियों से पिसते आकर वह गौरवहीन बन गया है। उसमें न प्रेम है, न सहृदयता है, न मनुष्यता है। मैं कहता हूँ, वह समझ कर भी नहीं सोच पाता कि उसे किस तरह चूसा और मसोसा जा रहा है। इसी से वह मरता है, और मरता जाता है।………'

तब वह रेणु की ओर देखकर फिर बोला—'यही आज की नारी की बात है। रेणु ! उसने स्वयं ही अपने को विकृत और दोषी बना लिया है। नारी के प्रति मोहित और आकर्षित होने की भावना के साथ, मैं इधर निरन्तर देखता आया हूँ कि जो पुरुष प्रेमी और भौंरे-जैसी प्रकृति का आदी बन गया है, आखिर क्यों ? मैं जानता हूँ, इसमें प्रकृति का भी हाथ है। किन्तु स्वयं नारी जिस प्रकार पुरुष के लिये समर्पित हो गई है, वस्तुतः यह मुझे संगत और उचित नहीं लगता। जिस नारी से हमें मातृत्व, प्रेम और अनुभूति का पाठ लेना था, उसके विपरीत प्रणय की कामनाएँ पुरती देखकर सचमुच ही क्लेश होता है। जो नारी अपनी अनुपम सुन्दरता से इस विश्व को मोहती रहे, वह अपनी सुवासित गन्ध से उसे प्रसन्न और आनन्दित करती रहे,—इतने-भर से मैं कभी भी उत्तेजित नहीं रहा, परन्तु जो हमारे जीवन का सँजोया हुआ दीपक है, वह भुनगों और पतंगों की तरह हमें मारने के लिये नहीं, नव-जीवन प्रदान करने के लिये अवतरित हुआ है। मैं जब-जब तुम्हारे पास पहुँचा हूँ, सदा ही यह देखने का चाहक रहा हूँ कि तुम्हारे अन्दर जो प्रकृतिदत्त मा का विशाल कोष केन्द्रित है, वह मैं भी देख पाऊँ। परन्तु आज की नारी अधिकांशतः यह अनुपम देन नहीं दे पाती। वह गुड़िया बनी हुई दीन और दुखिया नारी सचमुच ही दया की आकांक्षी बन गई है। वह निरी कंकाल हुई बच्चे चाहती है, और जीवन-भर इसी भूख से लिप्त हुई, जीवन का लावण्य और माधुर्य खोकर एक दिन भी नहीं सोचती कि वह कुत्ता-बिल्ली नहीं है, वह नारी है, वह जगत् की मा है। जो भेड़िया बना हुआ पुरुष उसे दबोचता और सताता चला आया है, निश्चय ही, नारी को स्वयं इस ओर देखना और समझना होगा। नारी प्रकाश की ओर आए। वह अपना और पुरुष का निर्माण करे।'

रेणु ने कहा—'जो समाज का विधान है, वह पुरुष द्वारा ही निर्मित हुआ है। पुरुष स्वार्थी है।'

यह सुनकर पुजारी मुसकराया। उसने कहा—'उसमें जो स्वार्थ और दम्भ है, वह एक ही बार में नहीं उत्पन्न हुआ है। वह सदियों से चला आया है। आज हम जो-कुछ देखते हैं, वह ऐसी प्रक्रिया है, जिसका कभी भी खण्डन नहीं किया गया। पुरुष जो कुछ कहता है, सदा उसके विपरीत करता आया है। किन्तु नारी का यही पाप बहुत है कि उसने सभी-कुछ स्वीकार किया। वही पाप आज फल-फूल गया है। वह हमारे घर-घर में व्याप गया है, रेणुबाई'

'तो तुम चाहते हो, जो आज की नारी है, वह बदल जाए, वह ऐसी न रहे। वह पुरुष पर शासन कर पाए, क्यों ?'

पुजारी ने कहा—'यह गलत भावना है। मैं इसे नहीं मानता। जो अधिकार हैं, वह दोनों के बराबर हैं। जो चलती हुई गाड़ी है, उसके दो पहिए हैं, पुरुष और नारी। गाड़ी को एक ही पहिया नहीं चाहिए, उसे दोनों चाहिएँ।'

रेणु ने हँसते हुए कहा—'मुझे भी तुमसे शिकायत है।'

'ओह, तुम्हें तो एक नहीं, जाने मुझ में कितनी शिकायतें हैं।' यह कहते हुए पुजारी हँस दिया।

× × × × ×

बाहर चलने के विचार में जब पुजारी नए कपड़े पहन कर तैयार हो गया, तो वह रेणु की ओर देखकर बोला—'आज यह परिवर्तन क्यों ? मुझे तो इस रेशमी कुरते को पहना कर बाबू बना दिया है और स्वयं तुमने यह सादी धोती पहन कर चलना चाहा है ?'

रेणु ने कहा—'वह सब तुम्हें तो नहीं रुचता।'

यह सुनकर पुजारी हँस पड़ा। वह बोला—'अच्छा, अपना बक्स दिखाओ !'

रेणु ने पूछा—'क्यों ?'

'दिखाओ तो ! लाओ चाबी दो।'

'वह बिस्तरे पर पड़ी है। पर तुम्हें क्या करना है ?'

उत्तर न देकर पुजारी ने बक्स खोल लिया और उसमें से एक-एक साड़ी को निकाल कर बाहर रखने लगा। देखा, वह सभी सुन्दर और कीमती थीं। जब पुजारी उन्हें देख कर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका, तो वह पीछे खड़ी हुई रेणु की ओर देखकर बोला—'सुनो तो, लो तुम्हीं पसन्द करो और पहनो।'

रेणु खिड़की के पास खड़ी थी। उसके सामने ही ऊँचा-सा पहाड़ था। जिस पर हरे वृक्ष और झाड़ियाँ खड़ी थीं। उन्हीं में एक पेड़ की डाल पर कबूतर और

कबूतरी थे, जो अपनी चोंचों को परस्पर मिलाए बैठे थे। वे कितने तन्मय और एकांत हुए बैठे थे। रेणु उधर ही देख रही थी। उस अमर सुख की कल्पना में लीन हुई क्षण-भर को वह कहीं और पहुँच गई थी।

'यह कितने सुखी हैं ! यह कितने प्रसन्न हैं !' एकाएक उसने अपने आप कहा। उसके कहने के साथ ही जाने कैसी आतुर और भाव-भरी आँखों से उस ओर देखा। उसने अपने देर के रुके साँस को छोड़ दिया और कहा—'यह स्वतन्त्र हैं, यह सुखी हैं।......'

उसी समय पुजारी ने फिर कहा—'रेणुबाई, मैंने आज तक ऐसी साड़ियाँ नहीं देख पाईं। शायद यह हजारों रुपये में आई हैं। अब तुम्हीं पसन्द करो, और पहनो।'

यह सुनकर रेणु ने जाने कैसी रहस्यमयी दृष्टि से पुजारी की ओर देखा। कदाचित् उसे लगा कि कहीं पुजारी उपहास तो नहीं कर रहा है। यह अपने सामने एक छोटी-सी दुकान खोल कर बैठ गया है। किन्तु उसने पुजारी की ओर देखकर उसे उपहास या हंसी करता हुआ नहीं पाया, उसे ऐसा नहीं लगा।

पुजारी ने आतुर होकर कहा—'आओ ना, आओ देखो।'

यह सुन रेणु एकबारगी डोल गई। जैसे वह निढाल हो गई। उसे लगा, जैसे पुजारी के स्वर में याचना है, प्रार्थना है और भोलापन है, वह उसके पास जाकर बोली—'यह तुमने क्या तमाशा किया है ! तुम भी बच्चे बने हो,—निरे बच्चे ! इन्हें रख दो।'

'अपने लिये साड़ी निकाल लो।'

'तुम्हें तो साड़ी नहीं रुचेगी। यह धोती सोहायगी।'

सुनते ही पुजारी ने कहा—'नहीं साड़ी भी रुचेगी और क्या तुम मेरी इच्छा पर चल रही हो ? तुम मुझे दोष देती हो। इतनी ढेर-सारी साड़ियाँ साथ में ले आई हो, आखिर क्यों ? इनका कुछ तो उपयोग हो ?'

यह सुनकर रेणु ने फिर खिड़की के बाहर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'उपयोग तो हो जायगा। इन्हें बाँट दिया जायगा।'

'अच्छा, अच्छा ! बाँट देंगे. लुटा देंगे। भई, चलना है तो पहनो, बाल ठीक करो, जो करती आई हो, वह करो।'

यह सुनकर रेणु मुसकराई। वह फिर भी खड़ी रही। लगता था, वह जो कुछ चाहती थी, पुजारी से जो सुनने की इच्छा थी, वह अब भी दूर थी। पुजारी उस बात पर अब भी नहीं आया था। जैसे निरा निपट, निरा अजान......

तभी बाबा उस ओर आया। उसने पुजारी के सामने साड़ियों, जम्परों का ढेर देखकर कहा—'क्या बिटियारानी को तुम अपनी पसन्द से साड़ी दे रहे हो,

पुजारी ! तुम्हारे लिये बिटिया ने जो कुरता पसन्द किया, उसे शीशे में देख लो, कैसे दिख रहे हो।'

पुजारी ने कहा—'तुम्हारी बिटिया कपड़ों की सार जानती है। इन्हें पहचानत भी है, मैं नहीं। मैं इन साड़ियों में से ही नहीं चुन पाया। देखता हूँ, सभी अच्छी हैं, सभी एक-से-एक हैं।'

'वाह, पुजारी ! वह देखो न, गुलाबी जिस पर कस्तूरी रंग का पल्ला है। तुम्हें नहीं रुची ?'

पुजारी ने बाबा द्वारा इंगित की गई साड़ी को हाथ में लेकर कहा—'यह भी ठीक है, सुन्दर है। किंतु आज तो इस जामनी रग की साड़ी को पहन कर चलो, रेणु ! लो पहनो। यह अधिक सुन्दर है ! इसका सुनहरी पल्ला भी खूब है।' कहते हुए वह साड़ी को अलग रखकर खड़ा हो गया और रेणु की ओर देखकर बड़े मीठेऔर स्नेहसिक्त स्वर में बोला—'अन्धेरा होजायगा, तो नहीं घूम पायेंगे। जल्दी करो।'

यह सुनकर रेणु ने पुजारी की ओर देखा। उसने बरबस मुसकरा भी दिया।

पुजारी ने फिर कहा—'चलो, जल्दी करो।'

रेणु साड़ी को उठाती हुई बोली—'तुम्हारा कुछ भी पार नहीं है। कुछ भी नहीं। कभी कुछ, कभी कुछ !'

यह सुनकर पुजारी हँस पड़ा, वह तब खिड़की पर खड़ा होकर बाहर की ओर देखने लगा। उस समय सन्ध्या की वायु चल पडी थी। सूर्य नीचे आकर शीतल बन गया था। पुजारी उसकी किरणों से निर्मित हुए सुनहरी वन पर आँखें पसारकर एकबारगी विमुग्ध हो गया।

उसी समय रेणु ने साड़ी और जम्पर पहन लिया। जब वह अपने बालों की माँग को काढ़ने के लिए शीशे के सामने बैठ गई, तो तब ही वह यह जानकर एकाएक अधिक प्रसन्न हो गई कि आज बहुत दिन बाद वह पुजारी की मनचाही साड़ी पहन रही थी। पुजारी देखेगा तो हरषेगा। पुजारी का मन ऐसा आज ही तो उसने नहीं देखा। वह पहिले भी उसकी साड़ियों पर, उसके रूप पर अपना मत दे चुका है और प्रसन्न हो चुका है।

बाल काढ़ लिये गए, माथे पर टिकली भी लगा ली गई और अब रेणु घूमने की तैयारी में पूरी तरह प्रस्तुत होकर चल पड़ेगी कि तभी पुजारी ने उसकी ओर देखा। हठात् पुजारी से चार आँखें होते ही रेणु लजा गई। वह फिर पुजारी की ओर नहीं देख सकी।

उसी समय पुजारी ने उसकी ठोड़ी पकड़ कर कहा—'जरा देखो तो !'

रेणु ने देखा कि पुजारी उसकी ओर देख कर मुस्करा रहा है। वह आँखों से हँस रहा है। उसने कहा—'चलोगी, चलो।'

किंतु पुजारी ने अपनी बात लेकर कहा—'ऐसे समय ही तो तुम्हें रानी का नाम सार्थक लगता है। वह तुम्हें ही शोभता है। तुम सचमुच ही रानी हो, अपने इस पुजारी की रानी। आओ चलें।' कहते हुए वह रेणु को साथ लेकर द्वार की ओर बढ़ लिया।

जब दोनों गंगा-किनारे पर पहुँच गए और जनसमूह की भीड़ को पार कर आगे बढ़ चले तो उसी समय एक भिखारिन उनके सामने आई और खड़ी हो गई।

पुजारी ने पूछा—'क्या है, क्या बात है ?

उसने कहा—'बाबूजी······'

'हाँ, भाई, तुम पैसा चाहती हो ?' और तब ही पुजारी ने देखा कि वह रो पड़ी है, वह जो कहने चली थी, उसे नहीं कह पाई है।

उसी समय पुजारी ने एकाएक आहत हुए भाव में फिर उसकी ओर देखा। उसे लगा, स्त्री अधिक आयु की नहीं है, अभी युवा है। किन्तु यह जो जर्जर और सूखी हुई दीखती है, निश्चय ही, किसी गहरे सन्ताप और क्षोभ के कारण इस दशा को प्राप्त हुई है। जो गोद में बच्चा है, वह उसके कन्धे पर सिर रखे सो गया है—सुन्दर है, गोरा और सलोना है।

पुजारी ने कहा—'तुम रोती क्यों हो ? देखो न रेणु, इससे तुम्हीं पूछो। यह चाहे, तो इसे कुछ दो।'

किंतु रेणु कुछ कहती, वह उसकी ओर देखती, इससे पूर्व ही यह स्त्री भभूखा खाई-सी जाने किस वेदना से भरी, वहाँ से हट गई और आगे बढ़ गई।

रेणु ने कहा—'अरी, सुन तो ! ले पैसा······'

'ना, बहिन, मैं नहीं, मैं नहीं !···'

'अजब औरत है !' —रेणु ने कहा—'फिर आई क्यों ! मुँह देखने आई थी चुड़ैल !···'

यह सुनकर पुजारी नहीं बोला। स्त्री के जाने पर रेणु में जो खिजलाहट हुई, उसे देख उसने हँसना चाहा, किन्तु वह हँस नहीं सका। वह गंगा की ओर देखता हुआ, अभी इस उलझन में फँसा था कि स्त्री ने न पैसा माँगा, न कुछ कहा। लेकिन उसे जो कहना था, वह जैसे उसके आँसुओं ने कह दिया था, जिसे वह नहीं समझ सका था। वह अब भी उसी के समझने में अटका था।

उसी समय उसने रेणु से सुना—'तुमने देखा, जो उसकी गोद में बच्चा था, कितना सूखा हुआ दीन और अपङ्ग बना था ?'

उस समय पुजारी ने लम्बी साँस खींचकर कुछ चौंकते हुए कहा—'आओ लौट चलें। आगे राह नहीं है।'

पीछे मुड़ते हुए रेणु ने कहा—'तुम किस उलझन में हो? कुछ सोचते हो?'

'नहीं, मैं कुछ नहीं सोचता।' हठात् होठों पर सूखी हँसी लाकर पुजारी ने धीरे से कहा।

'नहीं, कुछ है!' रेणु ने फिर मुसकराते हुए कहा।

सामने की ओर देखते हुए पुजारी बोला—'मैं सोचता हूँ, वह स्त्री क्यों तो आई और क्यों चली गई, और रोई क्यों? जरूर कोई बात है। कोई भेद की बात है।'

रेणु ने कहा—'आओ पूछ लेंगे। वह सामने बैठी है।'

और जब वह उसके पास पहुँच गए, तो खड़े होकर रेणु ने कहा—'क्यों री, अपना नाम तो बता? गाँव बता?'

पुजारी कुछ आगे जाकर खड़ा हो गया था। वह समझता था, स्त्री सकुचाई है। शायद उसी के कारण कुछ नहीं कह पाई है।

रेणु ने स्त्री से फिर पूछा—'तू कैसे भिखारिन बन गई? और तू कैसे यहाँ आ गई?'

यह सुनकर उसने गंगा की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'मैं भिखारिन तो नहीं थी। कभी मैं भी भले घर का होने के नाते इज्जत से खाती-पीती थी, बहिन! आज नहीं,—अब नहीं!......

सुनते ही रेणु ने पूछा—'तो - ?'

'तो!' उसने कुछ रुक कर कहा—'अब कुछ भी नहीं;—हाँ, मैं अब कुछ भी नहीं। निरी पतित और नराधम!......'

इतना सुनकर रेणु में और अधिक उत्सुकता बढ़ गई। वह अपने स्वर में मधुरता और आत्मीयता लेकर बोली—'तू मुझे बता। जो कर पाऊँगी, करूँगी। सच-सच बता। पति है?'

'नहीं।'

'और कुटुम्बी?'

'मेरा अब कोई नहीं है, बहिन!'—उसने अपनी भरी-आँखों से रेणु की ओर देखकर कहा—'मुझे कुछ खिला दो, तो पुण्य होगा। मैं माँगना नहीं चाहती थी। अपने लिये नहीं चाहती थी। पर मेरा यह बच्चा मर जायगा। यह मेरी आँखों के सामने ही मर जायगा, बहिन! ऐसे तो यह नहीं रह सकेगा। कब तक रह पायगा। कई दिन हो गए, मैंने न कुछ खाया है, न पिया है। यह मर ही जाए तो ठीक! पर जब तक है, तब तक तो मुझे पालना है, इसे छाती से लगाना है। इस

देख कर ही मैंने अपने पाप को, उस हँसते हुए और रोते हुए पाप को याद करना चाहा है। उसे न भूलती हूँ, न भूल पाती हूँ !..............'वह फिर गंगा की ओर देख कर बोली—'अब मैं जीना नहीं चाहती। मैं मोक्ष चाहती हूँ, मैं अब अपने प्राणों की डोर को स्वयं ही काट देना चाहती हूँ, बहिन ! अब तक काट ही देती। पर यह बच्चा मरे तो, यह मेरी छाती से दूर हो, तब तो ! मुझे इसी ने बाँध लिया है। मेरा यही पाप है, यही कलंक है, मेरा। यही मेर जीवन का शाप है।' कहते हुए वह फिर रो पड़ी। उसके तमाम बदन में एक कम्पन सी आ गई।

उस समय स्वतः ही रेणु उसकी बातों में तन्मय हो गई थी। वह जो कुछ सुनना और समझना चाहती थी, उसे भूल कर जाने कैसे मन से गंगा की ओर देखने लगी थी।

उसी समय स्त्री ने स्वयं ही कहा—'जीवन में जो भूल की है, वह मैंने पाई और भोगी है।'

रेणु ने चौंक कर पूछा—'क्या ? बताओ तुमने कैसी भूल की ?'

'बहिन, मैं विधवा थी,—बाल-विधवा।'—उसने कहा—'मैं यह भी नहीं जानती थी कि कब व्याही गई, कब विधवा हुई। किंतु जब मैं अपने इन दिनों पर आ गई, तभी मैं अन्धी बन गई,—मैं एक आदमी के प्रेम में फँस गई। जिसे अब कहती हूँ। मेरी वही भूल थी। नहीं जानती थी, कि ऐसा है पुरुष, लालची और धोखेबाज ! यह उसी का बच्चा है, जो अब भाग गया...मुझे धोखा दे गया... वह समाज और अपनी जाति के डर से मुँह छिपा गया। वह गर्भ के समय ही मुझसे दूर हो गया था; यही कारण है कि अब न मेरे खाने की ठौर है, न बैठने की। मैं कहाँ जाऊँ ! मैं कहाँ बैठूँ...?'

'तुम क्या चाहती हो ?' उदार और भरे मन से रेणु ने पूछा।

उसने कहा—'अब मैं कुछ भी न चाहूँगी, बहिन ! कुछ भी नहीं। तुम बड़भागी हो, तुम...'

'तुम मेरे साथ चलो।'

'नहीं बहिन ! मैं आज ही भिखारिन बनी हूँ, जो इस बच्चे के लिये बनी हूँ। लेकिन अब नहीं माँगूगी ! मैं नहीं मांग सकूँगी। मैं अब किसी के सामने भी हाथ नहीं फैलाऊँगी।'

उसी समय पुजारी वहाँ आ गया। आते ही उसने रेणु से पूछा—'यह क्या चाहती है ?'

रेणु ने कहा—'इन्हें एक रुपया दो।' और उसने स्त्री को अपना पता

बताते हुए कहा—'तुम वहाँ आना। ऐसे नहीं निभ पायगा। ऐसे तो बच्चा मर जायगा। यह तुमको भी साथ ले जायगा!'—

यह सुनकर स्त्री ने कुछ नहीं कहा। उस ने पुजारी से रुपया ले लिया। उसी से रेणु ने फिर कहा—'इससे रात गुजारना। फिर सुबह मेरे पास आना, जरूर—समझी!'

स्त्री नहीं बोली। कदाचित् वह नहीं बोल पाई। वह पूर्ववत् गंगा की ओर दृष्टि किए हुए दूर के अन्धकार की ओर देखती रही।

पुजारी ने रेणु से कहा—'आओ, चलो!'

वह दोनों बढ़ गए और घर की ओर चल दिए। रास्ते में रेणु ने अपने-आप कहा—'जीवन का कड़ुवा और मीठा अनुभव लेकर बेचारी इस राह पर आ गई है। एक पुरुष से धोखा खा गई है, उससे प्रेम किया था, जिसका फल पा लिया!'

यह सुनते ही पुजारी ने कहा—'मैंने यही सोचा था। जिसका परिणाम भी यही होना था। प्रायः ऐसा ही होता है, इस प्रेम के सौदे का मोल!......'

'यह सौदा है,—कोई बिकी की चीज है!' रेणु ने जाने कितने ईर्षित स्वर में कहा।

पुजारी अपने उसी स्वाभाविक स्वर में बोला—'हाँ, रेणु! पुरुष और स्त्री के जीवन में जो उन्माद है, जो उनके यौवन का अन्धापन है, वही प्रेम है, वही अपनी वासनाओं को तृप्त करने वाला सौदा है। जाने इसे क्यों प्रेम बना लिया है। जीवन में जो निकृष्टतम है, कलंक है, जो हमें मनुष्य से पशुयोनि में जाने की प्रेरणा देता है, वह कैसा प्रेम! वह हमारी वासनाओं का द्वन्द्व है, वह हमें रात-दिन हिलाती है और झिंझोड़ पाता है।......'

कुछ रुकने के बाद पुजारी ने फिर कहा—'मैं तो कहता हूँ इस नारी को क्या अधिकार है कि यह उस पुरुष से माँग करे कि वह इसे रोटी और कपड़ा दे? वह क्यों दे? वह किस अधिकार से दे? जब मिले थे, जब दोनों एक-दूसरे को देखने के लिये प्रस्तुत हुए थे, तो निश्चय ही, दोनों अपनी-अपनी समान प्रेरणा से प्रेरित हो, एक-दूसरे के समीप आए थे। दोनों एक ही इच्छा लिये थे, भोग और जीवन का प्रमाद। जिस उन्माद से भर यह नारी अपने स्त्रीत्व को खोकर आज दीन और मोहताज है, आखिर क्यों? यह क्यों नहीं अपने पैरों पर खड़ी होती। यह क्यों नहीं मजदूरी करती। जो भूल की, उसके बाद यह फिर दूसरी भूल कर अकर्मण्यता पर उतारू हुई है। इसी से हम जानवरों की कोटि में आ गए हैं। जैसे एक व्यवसाय है, जो नित्य का धन्धा है, जो करना है और फिर करना है।......'

रेणु ने कहा—'जिस समाज ने वह नन्हीं बच्ची विधवा बना दी, और

जीवन भर के लिए एकाकी और शून्य छोड़ दी, तब वह क्या करती। आखिर वह कौन-से पथ का अवलम्बन करती। सभी योगी नहीं बनते। सभी अपनी इच्छाओं को नहीं दबा पाते। तुम वास्तविकता पर आकर देखो और सोचो कि यह क्यों अनाथ है, यह क्यों दोषी है? यह क्यों निस्सहाय है, एक क्षण के लिये इस पर विचार करो, पुजारी! समाज धूर्त और कृतघ्न है। वह निरन्तर नारी को छलता और दबोचता आया है। वही आज भी।......'

पुजारी ने कहा—'तुम्हारी इस बात को कभी मैं भी स्वीकार करता था, पर आज नहीं। आज तो मेरा एकान्त मत है कि नारी जब तक पुरुष के हाथ का खिलौना बनी रहेगी, वह ऐसे ही छली जायगी और प्रताड़ित की जायगी। मुझे अचरज है, जो नारी हमारी मा है, वही निस्सहाय और दीन है, मैं तो इसकी कल्पनामात्र से भयभीत होता हूँ, रेणु! पुरुष में जो अहं है, वह आज का नहीं है। वह जब तक नहीं मिटाया जायगा, न नारी का उद्धार होगा, न पुरुष का। मैं कहता हूँ जो चोरी है, जो समाज से डर कर अपने को छिपाने की प्रवृत्ति हममें जाग्रत हो गई है, वह निकृष्ट है, वह जीवन में हेय है। हम चित्र का एक ही रुख देखते हैं। यदि दोनों देख लें, दोनों को समझ लें, तो ठीक। यह कैसी हीन भावना है कि बाजार की चाट की तरह से पुरुष स्त्रीत्व को चाहता है, और पत्ते की तरह से उसे छोड़ देता है। यह नारी का दोष है। वह क्यों नहीं पुरुष को तोलती और समझती। वह क्यों नहीं अपनी इच्छाओं को समाज और अपने अभिभावकों के सामने रखती। वह भीत है। वह जितना भी अपने पास लिये है, उसे स्वयं ही पाप और अग्राह्य समझती है। इस घृणित भावना ने आज समाज को गन्दा और निकम्मा बना दिया है।'

उसी क्षण रेणु ने पूछा—'तुम वेश्याओं के लिये क्या कहोगे, पुजारी? तुम्हारे मत से तो वह भी ठीक है......।'

यह सुनकर पुजारी मुस्कराया। उसने कहा—'वेश्या अपनी वासना-तृप्ति के लिये बाजार में नहीं जाती। वह पेट के कारण जाती है। अपनी जीविका के लिये जब समाज में वह स्थान नहीं पाती, तो वह बाजारमें जाकर शरीर बेचती है। वह वहाँ भी आत्मा नहीं बेचती। जो नारी घर में बैठकर किसी पुरुष को देखती है और हर्षती है, उससे वह श्रेष्ठ है। वह समाज में बैठकर अपनी हीनता का प्रदर्शन नहीं करती।

यह सुनकर रेणु हँसी। वह घर पहुँच कर अपने बिस्तर पर बैठ गई।

उसी समय बाबा ने आकर कहा—'भोजन तैयार है, ले आऊँ?'

पुजारी ने कहा—'हाँ, ले आओ।'

तभी रेणु के पास जो बात थी, वह उसे ही फिर लेकर बोली—'पुरुष की जो उद्दण्डता है, वह कभी क्षम्य नहीं है। वह नारी के साथ अन्याय है!......'

पुजारी ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'दुर्बल सदा झुकाया गया है। यही नारी की बात है। वह दुर्बल है। जिसका परिणाम ही यह है। दुर्बल के लिये इस विश्व में कोई स्थान नहीं है। उसे मर जाना चाहिए। वह विश्व के लिये एक बड़ा शाप है!

रेणु ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम आवेश में हो, पुजारी!'

पुजारी ने शान्त स्वर में कहा—'अपने जीवन में मैं आज तक यही स्वीकार करता आया हूँ। और तुम जिसे प्रेम कहती हो, उसे भी मैं निखालिस वासना और अपनी उद्दण्ड हुई आकांक्षाओं की पूर्ति का एक ऐसा शस्त्र मानता आया हूँ, जो ऊपर से सोने से मँढ़ा है, पर अन्दर कोरा लोहा है, वह तीक्ष्ण धारवाला है। प्रेम तो पेट-भरों का और जीवन की ओर से उपेक्षित हुए अन्धों का एक व्यवसाय बन गया है। यह और कुछ नहीं।'

'पुजारी.........'

'अब पुजारी भोजन करेगा, इसके बाद बातें।' कहते हुए पुजारी ने कुरता उतार लिया और रेणु से कहा—'भोजन आ रहा है, कपड़े बदल डालो।'

रेणु ने मुस्कराते हुए कहा—'अच्छा-जी-अच्छा।' कहते हुए कपड़े बदलने के लिये खड़ी हो गई।

पुजारी ने अपने मन में कहा—'शायद रेणु ने समझा है कि यही है, प्रेम की परिभाषा। समझती ही होगी यह भी युवा है। यह भी सुन्दर और सुहागिनी है। इसकी भी कुछ इच्छाएँ हैं। यह सोचते हुए वह हठात् अपने विचारों में लीन हो गया।

× × ×

भोजन करने के बाद पुजारी गंगा-किनारे चला गया। अब वह वहाँ से लौटकर आया तो रेणु अपने बिस्तरे पर पड़ी हुई अखबार पढ़ने में लगी थी। आते ही पुजारी ने उसकी ओर देखकर कहा—'रेणु, वह स्त्री मर गई। बच्चा भी मर गया। उसने जल में डूब कर आत्मघात कर लिया!'

रेणु ने चौंक कर कहा—'क्या, वह मर गई!—ओह!'......

पुजारी ने कहा—'यही होना था। उसे यही करना था।'

'आत्मघात! हाय! हाय!!'—कहते हुए अगाध करुणा से भर रेणु ने पुजारी की ओर देखा।

पुजारी ने कहा—'हमारे जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं, जब आत्मघात करना भी अनुचित नहीं लगता। यह भी एक दिशा है, जिसे पाकर मनुष्य इस

दुनिया के झंझटों से छूट जाना चाहता है। इस नारी को भी यही करना था। वह लांछित थी और प्रताड़ित थी।'

'जाने किसने उसे दीन का रक्खा न दुनिया का।' रेणु ने फिर उसी भाव से कहा।

यह सुनकर पुजारी कुछ बोला नहीं, वह मौन होकर अपने बिस्तरे पर पड़ गया। किन्तु जो उसने रेणु से सुन पाया, उसको लिये हुए उसने अपने-आप कहा—'इस पाप और पुण्य ने हमें सदा ही छला है। यह सदा ही धोखा देता आया है। यह व्यर्थ का आडम्बर है, जो धनिकों और समाज के कर्णधारों द्वारा निर्मित कर दिया गया है।'—उसने कहा—'इस स्त्री-पुरुष से निर्मित समाज में जो क्रूरता और अहमन्यता प्रचारित की गई है, वह अन्तहीन और सीमाहीन है।'

उसी समय पुजारी ने आँख खोल दीं। अपने सामने ही खुले आकाश की ओर देखा, जिस पर तारे छिटक रहे थे। कमरे में ठण्डी-ठण्डी हवा आ-जा रही थी। पुजारी ने उन्हीं तारों-भरे आकाश की ओर देखकर कहा—'स्त्री भी अन्यायी है, यह भी क्रूर है। दम्भ इसके भी पास है। इसने स्वयं ही पुरुष को पतन की दिशा दी है।......'

यह कहते ही पुजारी ने खिड़की से आँख फेर लीं। लगता था, जैसे स्वयं उसे ही अपना कहना नहीं रुचा था, जो अनुपयुक्त था। उसे जो कहना था, मानो वह नहीं कह पाया था। उसने करवट बदल ली। देखा, रेणु भी चुप है। वह भी एक ओर मुँह किये पड़ी है। शायद सो गई है। तभी उसने पुकारा—'रेणु—'

रेणु ने कहा—'हूँ— !'

'तुम क्या सोचती हो? चुप कैसे हो?'

रेणु ने इसका उत्तर नहीं दिया।

पुजारी ने कहा—'मैं समझा, तुम उस स्त्री की समस्या पर अटकी हो। भई, ऐसे किस-किसको सोचती रहोगी? भला कुछ ठीक है इस रहस्य का! जाने क्या है इसमें? आदमी सोचता कुछ है, दीखता कुछ है। हम-सब एक पहेली हैं, जो नहीं सुलझ पाती और दीख पाती।'

यह कहने के साथ उसने अपने मन में कहा—'यह नारी जहाँ पुरुष के लिये पूजनीय भी है,—आदि जन्मदात्री है, यहीं पर पुरुष द्वारा इस हिंसक प्रवृत्ति का प्रदर्शन दीखता है। यह दोनों धाराएँ साथ-साथ प्रवाहित हैं। दोनों ही मिली-जुली हैं।'—उसने कहा—'विश्व के लिये एक विष है, दूसरा अमृत। हम किसे पाएँ और किसे न पाएँ!'......

उसी समय रेणु अपने मन में कह रही थी—यह नारी जाने कब तक सिस-

करती रहेगी और मरती रहेगी ? इसका कोई अवलम्ब नहीं है। यह साधनहीन है। हाय ! हाय !! कैसी दीनता है। कैसी अपवशता है ·········?'

यह कहते हुए रेणु एकाएक गम्भीर हो गई। उसी दशा में उसने पुजारी की ओर देखा। वह आँख बन्द किए, माथे पर हाथ रखे पड़ा था। हठात् रेणु ने छत की ओर देखकर अपने दोनों हाथों को एक दूसरे से बाँध लिया। वह एक बारगी अपने जीवन पर आकर बोली—'एक मैं हूँ ऐसी, हतभागिनी और दुर्भागनी नारी। मैं भी पुरुष की ओर देखती हूँ। यही है, मेरा अवलम्ब और जीवन-लक्ष।

यह कहने के साथ उसने तुरन्त ही अपने से कहा—'तू ऐसा मत कर ! हाँ, मत कर ! तू इसी से दुःखी है। इसी से तू उलझन में फँसी है। तुझे खाने भर को है, पिता की जागीर है।'

इस प्रकार रेणु एकाएक खिन्न और उदास बन गई। वह फिर अपने मन में चीख कर बोली—'सभी ऐसा करती हैं। वह यही सोचती हैं। पर वह तो साथी चाहती है,—जीवन-साथी। वह धन नहीं चाहती। वह पुरुष को ही अपनी सीमा बनाना चाहती है। यह आज की नहीं, यह आदि नारी की चाह है। यही इसके जीवन की माँग है। वह इसी पर अपने को अर्पित और समर्पित करती आई है। इसकी यही साधना है। यही उसके जीवन की पूजा है।······'

'खाक पड़े इस पूजा पर !'—उसने छूटते ही कहा—'कुतिया कहीं की ! नारी तभी हीन है। यह तभी पददलित है। नारी मूर्ख है ! यह निरन्तर ठुकराई गई है और पददलित हुई है। हाय ! हाय !! यह कैसी अबोध है। यह कैसी अजान है ! इसने सभी कुछ सहा, इसने सभी कुछ पाया। फिर भी ममतामयी है ! अरी, भोली और अबोध नारी, तू ! तू !!······'

यह सुनकर ही रेणु भभून्ना-सा खा गई। उसके हृदय की सारी नसें कठोर हो गईं। वह सामने की दीवार को घूरकर बोली—'तू भी प्रेम और साथी चाहती है। तू अनिल बाबू या पुजारी को चाहती है। तू भी सौदा करने चली है। इसी से इस पुजारी को साथ में लाई है। तेरी सुन्दरता पर, यह ममता और प्रेम दिखा पाए,—क्यों !·········'

उसने दूसरी ओर देखकर कहा—'अरी, रेणु ! तू कैसी-कुछ बन गई है। धन पाकर, पिता की जागीर की स्वामिनी बनकर, तू अब यह पाने चली है। तू भी इन पुरुषों से कहने चली है कि आओ, तुम मुझे देखो !। तुम मेरी सुन्दरता को परखो !—तुम मेरे चाहक बनो !—रेणु !······'

आतुर हो, उसने अपनी आँखों को ढँक लिया। कभी से खड़े हुए पलकों के नीचे आँसू भी थीं, तत्क्षण ही गालों पर वह आईं। उसी दशा में उसने फिर कहा—

'जो तू भी निर्धन और निस्सहाय होती तो इस डूबकर मरने वाली नारी की तरह दीन और मोहताज दिखाई देती। तू भी ठुकराई जाती। तब न अनिल पूछता, न पुजारी। तब कोई नहीं देख पाता। हृदय कौन देखता है! भावनाओं को कौन परखता है!'

इस प्रकार उसकी रोती हुई आँखों के पीछे जो हाहाकार उठ चला था, वह बरबस ही, तीक्ष्ण हो गया। उसे जीवन में प्रथम बार ध्यान आया कि उसके पास जो धन है, रूप है, उस पर जो माधुर्य है, वह ऐसा ही नहीं रहेगा। वह चला जाएगा। वह एक दिन अवश्य ही लोप हो जाएगा। तब वह दीन और मोहताज हो जायगी। तब इस आँखों-देखी नारी की तरह भूखी मरेगी या आत्महत्या करेगी।

उसने फिर कहा—तेरा है ही कौन! मा तेरी नहीं है, पिता भी नहीं है। नौकर हैं, मिलने-जुलनेवाले हैं। यह सभी पैसे के दास हैं। पैसा है, तो ये है, तेरे साथी और मित्र। नहीं तो कौन! कोई नहीं!

इसके बाद सचमुच ही रेणु अधिक व्याकुल हो गई, उसे अपने माता-पिता के प्यार का भी ध्यान हो आया। उसमें अनायास ही और अधिक उद्वेग भर आया। जो आँसू गालों पर भर आये थे, वह और अधिक वेग से निकल आये।

उसी समय पुजारी के कानों में रोने का स्वर पड़ा। वह तब सोने की चेष्टा कर रहा था। सुनते ही एकाएक चौंक कर उसने रेणु की ओर देखा, तो सच, रेणु को रोती देख पाया। वह वहीं से उसके गालों पर बहते हुए आँसुओं को देखकर बोला—'रेणु! रेणु.........!'

वह बैठा और खड़ा होकर रेणु के पास पहुंच गया। रेणु आँखों पर बाँह रखे उसी प्रकार खड़ी थी और रो रही थी। वह पुजारी का स्वर सुन अधिक खुल कर रो पड़ी थी। पुजारी ने कहा—'बोलो, रेणु! तुम्हें क्या हुआ है? तुमने क्या सोचा है? बताओ, बेवक्त तुम्हें कैसे रोना आया है?'

रेणु ने रोते-रोते कहा—'हाँ, मैं भी पापिनी हूँ! मैं भी हतभागिनी हूँ। पुजारी!'

यह सुनकर पुजारी उसके पलंग पर बैठ गया। वह रेणु के सिर पर हाथ रखते हुए अगाध ममता लिये हुए स्वर में बोला—'बताओ, तुम्हें क्या याद आया? अपने को पापिनी और हतभागिनी कहने का तुम्हें कैसे विचार आया, रेणु?'

रेणु ने अपने आँसू पौंछ लिये और छत की ओर देखते हुए कहा—'मैं भी तो पुरुष चाहती हूँ, पुरुष की सीमा में रहना चाहती हूँ, पुजारी! मैं इसी से पागल हूँ, मैं इसी से दीन हूँ। जैसे यही है, मेरा जीवन। यही है मेरा दृष्टिबिन्दु......!'

यह सुनते ही पुजारी ने उसके सिर पर रखा अपना हाथ खेंच लिया। वह खड़ा हो गया और उसी जगह खड़ा हुआ बोला—'रेणु, तुम जाने कब तक भ्रमती रहोगी।

तुम नारी न होकर किसी भी योनि में जातीं, तो आज की अपनी चाह को साकार और मूर्तिमान देख पातीं। तुम इसे पाप कहती हो। किन्तु पुजारी तो जानता है कि यही इस प्राणी-जगत् का अनुपम और पवित्र अनुष्ठान है, जो प्रकृतिदत्त आशीष को पाकर सदा-सर्वदा इस जगत् के प्राणियों द्वारा निर्मित किया जाता है। तुम भी वही एक हो। तुम जाने कितने जीवन के पवित्र संस्कारों को पाकर नारी रूप में आई हो। यह नारी जो पुरुष को प्रेरणा और समर्पण की परिभाषा सिखाती आई है, वही तुम हो। इस जगत् से तुम भी वही पाओ, रेणु !.........'

बात सुनने के साथ रेणु ने पुजारी की ओर देखा। लगता था, जैसे पुजारी की बात से उसे शान्ति और सुख का आभास मिला था। जो कोलाहल उसके अन्दर उठ या, वह अब नहीं था। अब आँधी के बाद जैसे सभी कुछ स्थिर और शान्त हो गया था। पुजारी बाहर देखने लगा था। रात की चाँदनी में दूर का पहाड़ दूध के फेन जैसा दिखाई दे रहा था। कैसा निर्मल और सुहावना दृश्य था वह ! उसी ओर देखते हुए उसने एक दार्शनिक की तरह गम्भीर और मौन होकर मन में कहा, 'आज समझा है, एक नारी का दर्द और उसका कारण। आज ही इस नारी की स्थिति क ज्ञान हुआ है। इसने अब तक हँसना ही सीखा था, आज रोना भी। ठीक तो है, उस नारी की तरह यह भी यौवन की दहलीज पर खड़ी है और उसके भाग की कल्पना करती है।

यहीं पर पुजारी के विचारों की गति रुक गई। वह जब रेणु के हृदय में उठे हुए आवेग की वास्तविकता पर आया, तो उस पर बिना अपना मत दिए, मन में मुसकराता हुआ बोला—'इस आयु में सभी ऐसा कहते हैं, सभी ऐसा सोचते और समझते हैं। शायद तभी कहा है, जवानी अन्धी है, जवानी.........'

पुजारी वहाँ से बढ़कर खिड़की पर खड़ा हो गया। क्षणेक बाहर की ओर देखते हुए, एकाएक ही उसने ईर्षालु और कड़वे भाव में अपने-आप कहा—जब पुरुष स्वतः ही मार्गभ्रष्ट हो, नारी का आवाहन करता हो, तो नारी का क्या दोष। यही तुम्हारी बात है पुजारी ! तुम भी रेणु के एक प्रेमी हो। तुम भी इसके साथ लगे हो। आदमी अपनी स्थिति को भूल जाता है। वही तुम भी। तुम जो थे, जो करने चले थे, आज वह कहाँ है, तुम्हारे पास। इस रेणु के सामने, तुम स्वयं ही लिप-पुत गए हो और एकाकार हो गए हो। नहीं तो, तुम क्यों हो, इस जमींदार की बेटी के साथ। गाँव कहता है, इसके नौकर-चाकर कहते हैं कि मैं भी हूँ, रेणु का एक प्रेमी। मुझ में भी प्रेम-साध है। मुझ में भी प्यास है,—रेणु को पाने की आशा है। जो अन्यत्र कहाँ है ? तुम यही पाना चाहते हो। तुम रूप चाहते हो, तुम स्त्री चाहते हो !......तुम अपने यौवन का, अपने इस भरे-पूरे जीवन का इसी प्रकार मूल्य चाहते हो, पुजारी ! जब यह

करना है तो ढोंग क्यों करते हो ? सेवा और दरिद्रनारायण की पूजा का क्यों अपने को और लोगों को पाठ देते हो ! तुम लम्पटी हो ! तुम धूर्त हो ! तुम स्त्री के—रेणु के रूप और यौवन के बहाव में बह आए हो !······

'पुजारी ! ओ, पुजारी !' जाने कितनी कठोरता से उसने स्वतः ही चीखकर पुकारा । उसके हाथों की दोनों मुट्ठियाँ भिंच गईं । माथे की नसें एक बार ऊपर को उभर आईं । वह आँखें फाड़-फाड़ कर कमरे को और कभी सामने के तारों-भरे आकाश को देखने लगा ।

उसी समय पीछे से रेणु ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—'पुजारी—!'

सुनते ही पुजारी ने जाने कितनी ग्लानि और वेदना के साथ तुरन्त मुड़ते ही उसके हाथ को झटक कर कहा—'हट जा ! दुष्टा कहीं की !···पापिनी······'

'ओह ! ओह !' कहते हुए वह उसी आवेश में धड़ाम से चारपाई पर जा गिरा और बोला—'तुम अपने धन से, अपने रूप से इस पुजारी को खरीदना चाहती हो, क्यों ! तुम नारी हो, तुम नीच हो ! तुम नारी-समाज का कलंक हो ! तुम पुरुष की भूखी हो ! लो खाओ ! लो, इस पुजारी को कच-कच चबा जाओ !······'

तब क्षण भर में सहमी और डरी हुई रेणु पुजारी के उस रूप को देख भय से काँप गई । वह एकाएक कुछ भी नहीं कह पाई । किन्तु जब पुजारी शान्त हो गया और वह देर तक कुछ नहीं बोला तो रेणु ने उसके पैरों की तरफ खड़े हो अपनी वाणी में समूचा माधुर्य लेकर कहा—'मैं सब-कुछ होकर भी, तुम्हें कभी भी मार्ग-भ्रष्ट नहीं करूँगी, पुजारी ! इस कल्पना से पूर्व ही मैं मर जाना चाहूँगी !······'

किन्तु मानो पुजारी वहाँ नहीं था । वहाँ उसका अस्थि-पंजर पड़ा था । जो निर्जीव हुआ, न सुन रहा था न कह रहा था और सचमुच ही, उसके अन्दर जो हाहाकार था, वह घने काले हुए बादलों के सदृश तब भी उसके हृदय पर आच्छादित हो रहा था । जो उसे विवेक-शून्य और विचार-शून्य करने के साथ ही न उसे रेणु की बात सुनने के लिये बाध्य करता था और न ही उसे पहिली स्थिति में आने देता था ।

तब जाने वह कितना भयंकर और कठोर बन गया था, जिसे न रेणु ने समझ पाया था और न उस प्रकार कभी पहले देख ही पाया था ।

× × × ×

जब देर तक पुजारी नहीं बोल पाया, तो रेणु उसे छोड़ अपने बिस्तरे पर जाते ही कटे धड़ की तरह गिर पड़ी । उसी प्रकार पड़े हुए वह अपनी देर की रुक हुई साँस को छोड़ कर बोली—'दुर्भागि रेणु !·········'

यह कहने के साथ उसके मुँह से बार-बार गरम साँसें आ-जा रही थीं, उस के सामने ही खिड़की के बाहर चन्द्रमा का निर्मल प्रकाश हो रहा था। सामने का पर्वत जैसे हँस रहा था और किलोलें कर रहा था। लगता था, जैसे वह रेणु को निमन्त्रण दे रहा था और कह रहा था कि आओ रेणु, तुम भी आओ, तुम भी मेरे साथ मिल कर हँसो-खेलो और इस चन्द्रमा की चाँदनी रात का आनन्द लो।

किन्तु रेणु ने उस ओर देखते ही उपेक्षा-लिये भाव में आँख उठा लीं। उसने फिर पुजारी की ओर देखा जो अब अपने बिस्तर पर नहीं था। वह बाहर चला गया था। किन्तु रेणु ने इस पर ध्यान न देकर पुजारी के उस तकिये की ओर देखा जिस पर आज ही उसने अपने हाथ का कढ़ा हुआ गिलाफ चढ़ा दिया था। रेणु उसी पर अपनी आँखें पसारती हुई बोली-'पुजारी ठीक कहता है, झूठ नहीं कहता। मैं पापिनी हूँ !···मैं पुरुष की भूखी हूँ ! मैं······'

वह कहते हुए रुक गई। उसका स्वर फिर अपने आप रुँध गया। उसके हृदय की नसें कठोर होकर तन गईं। माथे पर हाथ रख कर उसने आँखों को बन्द कर लिया। जिसके साथ ही रेणु ने अपने अन्दर एक ऐसी पीड़ा का अनुभव किया जो सचमुच उसे असह्य हो उठी थी। जिससे एकाएक ही उसका रोम-रोम काँप उठा था। तभी उसने अपने मन में कहा—पुजारी अभी गया है ! जाने कहाँ गया है !

यह कहते ही वह उठ कर बैठ गई। वह अपने हाथ की हथेली पर माथे को रख कर केवल इसी विचार में लग गई कि आखिर हुआ क्या ! आज उसने पुजारी ने क्या सोचा ! जो उसे कहना था, सभी-कुछ कहा-सुना। इस प्रकार वह पुजारी द्वारा कही बात को फिर सामने रख कर एकाएक ऐसी बन गई जैसे सचमुच ही वही था, उसके जीवन का अन्त। उसे वही उपयुक्त था। वही उसे पाना था।

कहीं देर बाद पुजारी कमरे में आकर अपने बिस्तर पर पड़ गया। रेणु ने उसकी ओर देखा। उसने चाहा कि वह उठे और पुजारी के पास जाकर पूछे कि कहाँ गए थे, इस रात में क्यों गये थे। किन्तु उसने यह सब नहीं किया।

अपने उस उपेक्षित और उदासीन विचार को लिये जब उसने अनायास ही फिर पुजारी की ओर देखा तो वह छत की ओर मुँह किए पड़ा था। वह आँख खोले हुए था। रेणु ने देखा कि उसके मुँह पर वही पहला भाव था जो सुकुमार और बालपन को लिये था। कुछ देर पूर्व जो पुजारी क्रोध और घृणा से विकृत हो गया था, वैसा अब नहीं था। रेणु ने एकाएक उसकी उन आँखों को देखा। उसे अनुभव हुआ जैसे वह आँखें अनायास ही बदल गईं थीं जो अब वही पहले की पूर्व परिचित बनी थीं, जिनमें पुजारी के जीवन का चिर और अनोखा बालरूप हँस रहा था और डोल रहा था।

यह देखते-देखते रेणु को लगा कि पुजारी की उन्हीं आँखों में उसकी शान्ति है। वह इसी दृष्टि-पथ पर अपने को अर्पित करती आई है। वह इन्हीं को देखकर अपने को खोती और खपाती जा रही है। यह सोचते ही, एक बार भी आतुर हो रेणु ने मन में चाहा कि वह उठे और पुजारी के पास जाकर उसके चरणों में सिर नवा दे। वह उन्हीं पैरों को पकड़कर कहे–'बताओ, मेरा क्या अपराध है? मैंने क्या किया है?' तभी एकबारगी उसके मुँह से निकला 'पुजारी—'

सुनते ही पुजारी ने उसकी ओर देखा।

'बताओगे, तुमने आज क्या सोचा है?'—हठात् रेणु ने पूछा—'तुमने मुझे किस बात पर पतित और घृणित समझा है? बताओ, मैं उपकार मानूँगी।'

यह सुनकर पुजारी चुप था। वह कुछ नहीं बोला।

यह देख रेणु उठी और उसके पास गई। वह तब दीनता और असमर्थता की साकार मूर्ति बन, जैसे निरी अपङ्ग बन गई थी। उसी भाव को लिये हुए उसने कहा—'अपने जीवन में मैंने आज तक ऐसा नहीं सुना। किसी ने भी मुझे इस प्रकार नहीं कहा। वह तुमने कहा है। मेरे लिये जो तुमने चाहा और सोचा है, वह कह दिया है। मैं सोचती हूँ, तुमने ठीक कहा है। तुमने ठीक ही विचारा है।

'मुझे क्षमा करो, रेणु!'

'नहीं; पुजारी!'—रेणु ने फिर उद्विग्न भाव में कहा—'आज तुमने कहा तो! मुझ में जो मान था, वह चूर-चूर हुआ। वह खण्ड-खण्ड हुआ। इस रेणु को जो कोई नहीं कह पाता, वह तुमने कहा। वह मैंने तुमसे सुना।'......

यह सुन पुजारी उठकर बैठ गया। वह एकाग्र हो, रेणु की ओर देखकर बोला—'रेणु, उस क्षण में सचमुच ही पागल और विचारशून्य बन गया था। उसे तुम भूल जाओ।'

सुनते ही रेणु के होठों पर रूखी और कसैली हँसी आ गई। उसी प्रकार वह खिड़की के बाहर देखने लगी।

स्वयं पुजारी उन तारों-भरे आकाश की ओर देख उसी प्रकार गम्भीर भाव में बोला—'रेणु, मुझे जो नहीं कहना था, वह तुम्हें कह दिया। मुझे पछतावा है। अभी गंगा के किनारे जाकर मैंने इसी बात पर विचार किया है। नहीं जानता, मैं किस शक्ति की प्रेरणा से तुम्हें कह सका। मैं यह भी नहीं जानता कि ईश्वर के किस आशीष को पाकर, तुम्हें अपनी अनुपम और अनोखी निधि समझता हूँ और नित-नित तुम्हारी ओर झुकता जाता हूँ किन्तु मैं चाहता हूँ, कि तुम इस पुजारी का दुरुपयोग मत होने दो। अपने परमेश्वर को साक्षी कर, यह सदा से इसी आकांक्षा-

हेतु तुम्हारी ओर झुका है कि तुम इसे प्रेरणा और शक्ति दोगी। तुम इसे पथ-भ्रष्ट नहीं होने दोगी।……'

रेणु चुप थी। वह उसी प्रकार बाहर की ओर देख रही थी।

पुजारी ने फिर कहा—तुम्हें देखकर मैं विश्व की कोमल और सूक्ष्म अनुभूति समझ पाया हूँ। जिस प्रकार यह चन्द्रमा अपनी ज्योतिर्मयी चाँदनी से जग-जग करता हुआ नित्य प्रति इस अखिल विश्व में प्रकाश करता है, क्या हम-तुम अपने हृदय में लिये प्रकाश से अपने जीवन को आलोकित नहीं कर सकते! यह चन्द्रमा जाने कब-कब से सारे विश्व पर अपना मुक्त आँचल पसारता और नव-जीवन प्रदान करता आया है। तुम भी इस अखिल-जगत् की एक आभा हो। जिससे प्रेरित हो मैं सदा ही आदर और श्रद्धा से तुम्हें देखता आया हूँ। तुम्हारे इस रूप के पीछे जो अगाध सौन्दर्य है, मैं उसी को पूजता हूँ और देखता हूँ, मैं इसी से जीवन और अनुभूति प्राप्त करता हूँ, रेणु! यह पुजारी नित्य ही अनुभव करता है कि तुम्हीं हो, इसके जीवन का दीप, जो इसके प्रगाढ़ अन्धकार को निरन्तर ही अपनी जग-जग करती हुई ज्योति से जाग्रत और प्रकाशित करती हो, कदाचित् तुम सोचती हो, हम आज ही मिले-जुले हैं और समीप आ बैठे हैं, परन्तु मेरा तो विश्वास है, हम जाने कब-कब के संयोग से आ मिले हैं और पास-पास आ बैठे हैं। ये जीवन की उठती हुई लहरें हैं, जो नित्य ही आती-जाती हैं। हवा का झोंका आयेगा, कि फिर दूर-दूर हो जायेगा यह जीवन! यह मिट जायेगा, यह कहीं और चला जायेगा।

'पुजारी तुम………'

'हाँ, रेणु! यह-ऐसा है जीवन! जिसे तुम नहीं देखतीं। तुम नहीं समझतीं। मैं जाने कब से कहता आया हूँ कि इस ऊपरी आवरण को छोड़ दो। जो आकांक्षाएँ हैं, तुम उन्हें भुला दो। तुम सब ओर से सपाट बन जाओ। तुम गंगा की निर्मल लहर के समान उठो और चमको। तुम अपने जीवन को इन महत्वाकांक्षाओं की गोद से निकाल कर सब ओर फैला दो। तब तुम सुखी होगी। आज जो तुम में उलझन है, जो टीस है, वह पुजारी और अनिल बाबू तक ही सीमित नहीं है। वह बहुत बड़ी है। मैं जानता हूँ, यह कभी तुम्हें सुखी नहीं करेगी। यह तुम्हें गला देगी और सड़ा देगी। उसमें जीवन नहीं है, वहाँ सड़न है। वहाँ………

'पुजारी…………' रेणु ने आतुर हो अपने सिर को पुजारी के पैरों पर डाल दिया।

किन्तु पुजारी उसी भावावेश में आगे फिर बोला—'रेणु, अभी बाहर मुझे अनुभव हुआ कि मैं जिस शांति और आत्मतुष्टि के लिये गंगा पर गया, वह वहाँ नहीं, यहाँ है। वह तुम्हारे पास है। जिस प्रकार यह चन्द्रमा की धवल किरणें सुख

और शांति देती है, वैसे ही, मै तुमसे पाता हूँ। मैं गंगा की लहरों पर भी तुम्हारा रूप देख पाता हूँ, रेणु, किन्तु तुम मेरी आँखों से नहीं देखतीं। तुम मेरे समान अपनी आकांक्षाएँ नहीं रखतीं। मैं क्या कहूँ ?'

रेणु ने अपने मुँह को पुजारी की ओर किया। उसने एकाग्र हो, विह्वल स्वर में कहा—'तुम्हारे इन अमर वाक्यों ने, रेणु को तुम्हारे चरणों में झुका दिया है। तुम इन्हें पखारने दो। अपने चरणों का उतरा हुआ जल इसे मुक्त होकर पीने दो, पुजारी !.........'

पुजारी ने सदय और आलोड़ित भाव में रेणु की ओर देखा। वह बोला—'इस पावन और शुभ निशीथ में, यह पुजारी सभी ओर से सिमट कर, अपने में एकांत और एकाकी बन कर तुम्हारे सामने प्रस्तुत है, रेणु ! विश्वास करो, यह ऐसा ही रहेगा। इसमें ऐसा कुछ नहीं है, जो भारी हो, जो कहीं पीछे दिया हो, इसने वास्तविकता से दूर रहना नहीं सीखा है। यह बहुत छोटी-सी सीमा पर टिका है। इसे किस पर गर्व ? इसे तो दिखता है, नित्य की ढलती-फिरती छाँह के सदृश हम आते हैं और जाते हैं। तुम आशीष दो इस पुजारी के जीवन में जो तड़पन है, जो निरन्तर की व्याप्त हुई टीस निहित है वह ऐसी ही रहे, वह अमर रहे।'

यहीं पर पुजारी ने रुक कर कहा—'तुम सोचती होगी, यह पुजारी दयालु है, यह उपकारी जीव है, जो दूसरों के दुख-दर्द में हाथ बँटाता है। परन्तु तुम देख पातीं तो समझतीं कि वह दर्द, वह जीवन का हा-हाकार स्वतः इस पुजारी के अन्दर हिर-कर रहा है। यह भी उसी में घुला-मिला है। जीवन का जो रौद्र रूप तुम दुनिया में देखती हो, पुजारी भी उसी का शिकार है, यह भी उसी से पीड़ित है, रेणु !' कहते कहते वह एकाएक फिर उमस से भर आया और बाहर की ओर देखने लगा। उसी ओर देखते हुए उसने कातर हुए भाव में फिर कहा—'कदाचित् यह सम्भव होता कि जिस प्रकार यह पुजारी अपनी आत्मा का हा-हाकार सुनता है, तुम भी अपने आत्म-पीड़न और चीत्कार को सुन सकतीं और देख पातीं ! विश्व तुम्हारा कुटुम्ब है। इसकी पीड़ा स्वयं हमारी है। हम अपने कुटुम्ब के जिन आत्मीयों से सम्बन्धित हैं, वह सभी दीन और मोहताज हैं, रेणु ! यह देश हमारा घर है। इसका समाज हमारा बन्धु-बान्धव है। इसकी दासता, इसकी असमर्थता-अपवशता ऐसी नहीं है, कि उपेक्षा की जाए, उससे उदासीन रहा जाए और तुम तो देखती हो, यह पुजारी भी गरीब है। सबकी तरह यह भी अपनी रोटियों के लिए चिन्तित है। किन्तु मैं तो सोचता हूँ क्या पैसा ही हमारा भाग्य है ? क्या यह कंकड़ और मिट्टी के टुकड़े ही हमारे अगुवा हैं ? आज यही दीखता है। जिसके पास पैसा है, सर्वत्र वही पुजता है। सब उसी ओर देखते हैं। तुम्हारे पास भी जो पैसा है, मान है, तुम जिस सम्पदा की स्वामिनी

हो, इस सबसे हीन होकर भी जाने तुम्हें कोई देख पाता या नहीं ! मैं अनिल बाबू या किसी अन्य को नहीं लेता , अपितु मैं स्वयं ही आज की तरह तुम्हारे निकट बैठता, या दूर होता, यह सभी सन्दिग्ध है, यह सभी विचार है, रेणु ! तुम्हारी सुन्दरता का तभी मोल होता । आज नहीं ।·········'

रेणु ने मर्माहत और उद्विग्न हुए स्वर में कहा—'मैं क्या करूँ ! मैं निरी अभागिन हूँ, पुजारी !

इसके बाद ही, उसने और अधिक अपने को झकझोरते हुए कहा—'मैं आज तक नहीं समझी ! मैं नहीं समझ पाती ।······'

यह सुनकर पुजारी ने कोमल और मधुर स्वर में कहा—'तुम जिन निर्धनों की बस्ती में बसी हो, बस उनकी ओर देखो । उनके जीवन को देखो । तुम्हारे समान ही उनकी आत्मा है । वह वैसी ही निर्मल है, रेणु !'

'तुम यही कहते हो ! तुम फिर-फिर यही सुनाते हो !' रेणु ने आतुर हुए स्वर में कहा—'तुम बताओ, मैं कैसे अपने को मार दूँ ? मैं कैसे अपने को लुटा दूँ ? मैं कैसे······'

तब पुजारी ने अपने होठों पर सरसता और हास्य लाकर कहा—'इस जीवन के बाद भी, जीवन आता है, रेणु ! तुम जिस खोने और खपाने की बात कहती हो, पुजारी उसे नहीं मानता'। यह तुम्हारी सम्पत्ति को भी नहीं देख पाता, जो तुच्छ और नगण्य है । उसे किस-किस को दे पाओगी । मैं इस परिपाटी को नहीं मानता । लेन-देन परायों के साथ होता है, वह अपनों के लिये नहीं । मैं तो तुम्हारे ही आत्मीयों की बात कहता हूँ । तुम उनके जीवन के समीप पहुँचो । उनके रोदन और चीत्कार को पहचानो । तुम उनके स्वर में अपना स्वर मिला दो । उनके जीवन से अपने जीवन की गाँठ बाँध लो । तुम उस दरिद्रनारायण की झोली में अपने को अर्पण कर दो, रेणु ! मैं इसी को ईश्वर की ईश्वरीयता मानता हूँ । तुमने जो जीवन पाया है, यह एक प्रसाद है । यह सीमित क्यों रहे ? इसे विश्व के कोलाहल में लीन कर दो । तुम देखोगी कि यहाँ कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे दूर है, जो तुम्हारा नहीं है । यह दूर-दूर हो गए हैं । हमारा भ्रातृत्व और मातृत्व आज खण्ड-खण्ड होकर टूट गया है, वह पतित हो गया है । उसे हमें पाना है । हम जिस धरातल पर आ टिके हैं, हमारी यह जगह नहीं है । यह सृष्टि-क्रम निरर्थक नहीं है । यह सदा ही अर्थपूर्ण रहा है । इसने सदा ही हमसे कुछ चाहा है । यह सदा ही हमारा नव-संस्कार करता आया है, रेणु !

उसने तब गम्भीर और कठोर हुए स्वर में फिर कहा—'निश्चय ही आज हम विद्रोही हो गए हैं । हमने अपने नायक के नेतृत्व को अस्वीकार कर दिया है ।

हमारा यही अपराध है। इसीलिये हम इस दासता और असमर्थता को सिर पर उठाये फिरते हैं। हम जिस झूठी अहंमन्यता के कलंक को अपने भावों पर चढ़ाए फिरते हैं, क्या वह लज्जा की बात नहीं है। हमने भाई को भाई कहना छोड़ दिया है। हमनें अपना ही स्वार्थ देखा है। अपना ही पेट पालना आज हमारा ध्येय और जीवन का परम लक्ष्य बन गया है। बताओ तो, यह कैसी पामरता और लांछना है। यह कैसी निरंकुशता है कि एक प्राणी कुत्ते-बिल्ली की तरह मुँह ताके, और दूसरा अच्छे और स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन करे, यह मनुष्यता है क्या ? मुझमें यही जलन है, मुझ में निरन्तर की यही टीस है और यही पीड़ा है।'

उसी समय रेणु ने पुजारी की आँखों से बहते हुए आँसुओं को देखा। उसने अपने आंचल से उन्हें पोंछते हुए कहा—'मैं तो जानती हूँ, कि तुम सदा ही, पीड़ा से भरे रहते हो। अच्छा ! अब यह रेणु भी तुम्हारे साथ रोने लगेगी। अब यही और शेष है। यह अब ऐसा ही करेगी। घर छोड़कर तो चली आई है, तुम्हारे हाथ में इसका हाथ है, जहाँ चाहो, इसे ले जाओ। यह जानती हूँ, जीवन के दो ही पथ हैं, जीने का और मरने का। जाने तुम किसे पसन्द करते हो ! तुम किसे चाहते हो ! पर जो होगा, यह उसे स्वीकार कर लेगी, यह उसे आँख मूँद कर मान लेगी, पुजारी !'

सुनकर पुजारी ने कहा—'रेणु, तुम सोचती होगी कि ऐसा क्यों है, पुजारी ! किन्तु जाने मैं किस जन्म का लेखा चुकाने-हेतु, यहाँ निर्मित हुआ हूँ, इसी से मैं सदा ही इच्छित रहा हूँ कि जिस कुटुम्ब का वासी हूँ, यदि उसके निमित्त मैं समर्पित हो पाऊँ, तो जीवन में सन्तोष और गर्व लिये, अपने रास्ते को पूरा कर पाऊँ, और चला जाऊँ।······

यह सुनकर रेणु कुछ न बोलकर निर्निमेष हो, पुजारी को देखने लगी और जाने किस आकांक्षा को लिये अपने अपूर्व ममता-भरे हृदय से उस हाथ को सहलाने लगी।

× × ×

प्रातः होने पर पुजारी और रेणु घूमने निकले और पहाड़ के ऊपर जा पहुँचे। पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते रेणु थक गई थी। चढ़ाई के ऊपर जाकर पुजारी की इच्छा हुई कि वह उस प्रभात-वेला में एकान्त पाए और बैठे। परन्तु रेणु जो साथ थी, वह उसे न कुछ सोचने देती थी, न कहीं देखने देती थी। वह अपने ही अनेक प्रश्न उठा रही थी, और पुजारी से उनके उत्तर माँग रही थी। तभी पुजारी एक ओर बढ़ गया, रेणु दूसरी ओर। इस प्रकार उनमें अकस्मात् ही, दूरी हो गई। दोनों अपनी प्रसन्नता और प्रफुल्लता को लिये एक पेड़ से दूसरे की ओर बढ़ रहे थे और, बढ़ते

आ रहे थे। दोनों अपने पास आने के लिये एक-दूसरे को बुला रहे थे और अपने मनचाहे दृष्टि-पथ पर टिके-के-टिके रहते थे।

इस प्रकार जब देर बाद रेणु उन आस-पास के पेड़ों और झाड़ियों के चक्कर काट कर एक टीले के पास पहुँची तो देखा—पुजारी उसी पर बैठा हुआ है और एकाग्र हो, उगते आए लाल अंगारे-सदृश उस सूर्य की ओर देख रहा है। सूर्य की लाल ज्योति पुजारी के मुँह पर आ रही है। वह अपनी आधी आँखें खोले उसी ओर बैठा है। पुजारी एकाग्र और एकमन हो, ध्यानस्थ हुआ बैठा था। प्रातः की बहती हुई मन्द और मधुर वायु उसके सिर के बालों से टकराती और उन्हें लहराती थी। जिससे उड़ते हुए बाल आपस में खेलते हुए कुछ माथे पर और कुछ पुजारी की कनपटियों पर आते-जाते, और पुजारी जैसे सचमुच ही सब ओर से अजान था, उसे अपने आस-पास के वातावरण का कुछ भी ज्ञान नहीं था।

यह देख कर रेणु ने चाहा कि वह अब पुजारी से उठने के लिये कहे और घर लौट चले। किन्तु उस क्षण वह स्वतः ही जाने कैसी भावना से भर गई। पुजारी के उस अपूर्व और अलौकिक दिव्य-रूप को देख वह ऐसी विभोर हो गई कि कई बार उस शिला के पास आ-जाकर भी फिर-फिर लौट आती और उस पत्थर का सहारा लेकर निरे बच्चे के सदृश जिज्ञासु की तरह पुजारी की ओर देखने लगती। उसे लग रहा था जैसे पुजारी का रूप अजेय और अमिट है जो निरन्तर फलता और फूलता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है, जो असीमित है।

और स्वयं वह? उसने जाने किस भावना के साथ अपने से प्रश्न किया। जिस के साथ बिना ईर्ष्या और दुर्भावना से कहा—'अरी रेणु तू! पुजारी के सामने पासंग भी नहीं है। पुजारी देवता है। पुजारी हीरा और माणिक है। तू तो कंकड़ पत्थर भी…'

यह कहते ही उसने फिर पुजारी की ओर देखा, उसने जाने कितने युगों की कितने जन्मों की अपनी आसक्ति और भक्ति-भावना को समेट कर पुजारी के चरणों के पास अपनी बाँहें फैलादीं। उसने वहाँ की मिट्टी उठा कर चुटकी में दाब ली और अपने माथे से लगाली। उसे लगाते हुए ही उसने कहा—'इस पुजारी के अन्दर जो ज्योति है, जो दिपती हुई आभा है वह अक्षुण्य है और अमिट है।' और इतना अपने मन से कहकर वह आनंद विभोर हो उठी।

उसने हिलोर जैसी अनुपम थिरकन के साथ तब एकबारगी हर्षातिरेक से उस पास खड़े हुए पेड़ के पास जाकर, उसकी फूलों से लदी डाल को पकड़ लिया और हिला दिया। डाल के हिलते ही छोटे-छोटे फूल कुछ उस पर बरस गए और कुछ नीचे गिर गए। उसी डाल को पकड़े हुए उसने बड़े मधुर स्वर में गाया—

सखि, तू आज भई दीवानी
तू चंचल अगम लहरों में
निशिदिन गोते खानी
सखि, तू आज भई दीवानी

गाते हुए वह अपने आप में विभोर और विह्वल हो गई। उसका रोम-रोम प्रसन्नता और हर्ष से भर गया, सिर से साड़ी का पल्ला खिसक कर नीचे गिर पड़ा। पहने हुए चप्पल निकलकर दूर जा पड़े; और वह स्वयं उस डाल पर झुकी-की-झुकी कभी झूलती और कभी गाए हुए पद को दोहराती—

जीवन है एक निशा अन्धेरी, पल में आनी-जानी
सखि, तू आज भई दीवानी !

उसी समय पुजारी उठ आया और रेणु के पास आकर खड़ा हो गया। रेणु को डाल पर झूलती और गाती देख वह देखने लगा कि ऊपर चढ़ आए सूरज की कुछ लाल और सफेद किरणें पेड़ से छन-छन कर रेणु पर पड़ रही हैं। पुजारी के उस गोरे और सलोने मुँह पर छन कर पड़ती हुई वह धूप भी अनुपम और लावण्यमयी लगने लगी थी ! एकटक हो, वह जैसे खड़ा था, उसी प्रकार दृश्य को देखता रहा। उसी समय हठात् उसने मन में कहा—'रेणु सदा ऐसी रही है। यह इतनी ही स्निग्ध और मधुर दिखाई दी है। यह अनोखी और अपूर्व भावनामयी रेणु.........।'

उसी समय रेणु ने पुजारी को देखकर कहा—'ओ, आगए तुम !'

पुजारी ने मुस्कराते हुए कहा—'हाँ, आ गया। पर अभी न आता तो ठीक था। कुछ ठहरता तो तुम्हारा गाना सुन पाता और झूलना देख पाता।'

'अच्छा ! अच्छा !—रेणु ने हँसते हुए डाल को छोड़ दिया और कहा—'आओ, अब चलें।'

पुजारी ने कहा—'आज भला लगा। मुझे यह जीवन पसंद है। जी चाहता है, यहीं रम जाऊँ। एक झोंपड़ी डाल लूँ और पड़ा रहूँ, इस पहाड़ी शिखर पर। तुम्हें भी यहीं रहने के लिये कहूँ। क्यों, तुम्हें सोहाएगा ?'

रेणु ने दूर पर पड़े चप्पल पहन लिये, साड़ी का पल्ला सिर पर कर लिया और तब मुस्कराते हुए पुजारी की ओर देखकर पूछा—'तब फिर ?'

'फिर क्या, न नौ मन तेल होगा, न राधिका जी नाचेंगी। न यहाँ जमींदारी के ठाट होंगे, न रेणु रह पाएँगी। रहीं तो दो दिन में यहाँ से भाग चलेंगी। यह तो क्षण भर का सुख है, जो मन भाया है। किन्तु इसमें सदा के लिये रहना तो अभ्यास और वैसे बनाए जीवन की बात है, रेणु !'

यह सुनते ही रेणु ने कहा—'हूँ।'

पुजारी ने फिर कहा—'हमारी जो गति है, वह सभी अभ्यास चाहती है।'

'तुम रह पाओगे?'

'हाँ, मैं क्यों नहीं रह पाऊँगा, मैं कहीं भी रह लूँगा।'

रेणुका ने अपने मन में सोचा और चाहा कि वह भी कह दे कि वह भी तुम्हारे साथ कहीं भी इस जीवन को काट लेगी। वह सुखपूर्ण होगा। किन्तु उसने अपनी बात को रोक लिया और उसी में उसने दृष्टिक्षेप करते हुए कहा—'अब घर चलना है, इधर नहीं, उधर से।'

पुजारी ने हँस कर कहा—'हाँ, हम घर ही चल रहे हैं।' यह वहीं का रास्ता है। इसी से तो आए थे। तुम मेरे साथ-साथ आओ।' कहते हुए उसने रेणु का हाथ पकड़ लिया और धीरे-धीरे ढलाव पर उतरता हुआ फिर बोला—'जीवन के ऐसे क्षण सभी के लिये मधुकर और सुखपूर्ण होते हैं और पुजारी तो जैसे सभी ओर से भाग्यवान् है, जो इस ब्रह्म-मुहूर्त में तुम्हें अपने साथ पाता है और देखता है।'

'और जब पहाड़ पर आजाओगे तब? तब कौन साथ होगा?'

पुजारी ने तुरन्त ही आलोड़ भरे स्वर में कहा—'तुम, और कौन!'

यह सुन रेणु का हृदय थिरक गया। उसने प्रसन्न हुए भाव में कहा—'ऊ-हूँ, यह बात झूठ है! भला रेणु के सिर में क्या खाज उठ आई है, जो इस पहाड़ पर आकर बस जायगी। जहाँ न खाने की ठौर, न पीने की। तुम्हें यही सूझता है!'

तब पुजारी ने रेणु के हाथ को और अधिक अपनी मुट्ठी में दाब कर कहा—'इस पहाड़ पर जो अलभ्य-सुख की ज्योति जलती दीखती है, वह तुम न देख पाई हो, न समझ पाई हो, इस क्षण भर के अवसान में तुम जो कुछ बदल गई हो, वह तुम नहीं भुलाओगी,—तुम अपने को नहीं भूलने दोगी। तुम अपने हृदय से नहीं कह रही हो। तुम मुझे बहका रही हो।' कहते हुए उसने रेणु का हाथ छोड़ दिया।

उसी क्षण रेणु ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—'रेणु तुम्हें बहका रही है, क्यों! ओ-फ-हो, तुम्हें! बारह वर्ष की जमी काई पर भी कभी रंग चढ़ता है। उस पर जो भी चढ़ेगा, वह गिरेगा। तुम ऐसे ही हो। एक रेणु क्या, तुम्हें हजार रेणु भी नहीं बहका पाएँगी, पुजारी!'

यह सुन पुजारी हँस दिया। वह रेणु की ओर देखकर बोला—'सच तुम बड़ी शोख हो, जो कहना है, कभी उससे चूकती हो, क्या? अच्छा, तुम कहो। पुजारी को एक तो कहने वाला मिला है, और उसकी न सुन पाए, तो खैर थोड़े ही है, इसकी! जमींदार की बेटी ठहरी, नाराज हो तो जरा-सी देर में गाँव से निकाल दे। जो पल में खुश, पल में नाखुश! ······'

सुनते ही रेणु ने विद्रूप के भाव में आँखें तरेर कर उसकी ओर देखा, जब कि वह मुस्करा रहा था और आँखों से हँस रहा था।

पहाड़ से नीचे उतर वह सड़क पर चढ़ लिये और घर की ओर चल दिये।

× × ×

हँसी-खुशी दोपहर होते-होते सब मसूरी चल दिए। जब मोटर पहाड़ों के रास्ते को पार कर रही थी, तो पुजारी और रेणु प्रकृति के उस विराट सौंदर्य को देखकर एक बार ही पुलकित हो उठे थे। रेणु उन अपूर्व और कौतुकमयी पहाड़ों की घाटियों को देख-देख मानो जीवन की एक नई और अमृतमयी छवि के दर्शन कर रही थी। पुजारी शान्त और स्थिर हो, अपने ही विचारों में लीन हुआ बैठा था। तभी अकस्मात् जाने किस ममताभरी भावना के साथ उसने पास बैठे बाबा की ओर देखा। देखते ही उसे अनुभव हुआ जैसे यह बाबा—रेणु का पुराना और विश्वस्त नौकर अब सचमुच ही बूढ़ा हो गया है। इसकी देह का मांस सूख चला है। मुँह पर झुर्रियाँ आ गई हैं। हड्डियाँ जैसे सूख गई हैं। जिसके सिर के बाल सन जैसे सफेद हो गए हैं। आँखें माथे में धँस चली हैं। कमर भी झुक गई है।

अपने बचपन के जाने किस क्षण से पुजारी बाबा को देखता आया था। जो जब-तब ऐसा नहीं था। कभी था, जब बाबा छाती तानकर चलता था। अपनी काली और बड़ी मूँछों को मरोड़ता था।······

उसी समय ऊँचे पर्वत की ओर देखते हुए पुजारी ने साँस भरी और छोड़ दी। उसने जाने कितनी दीनता और उदास हुई वाणी में अपने-आप कहा—'एक दिन सबका ऐसा ही आता है। सब ऐसे ही बनते हैं। कोई इससे पहिले ही, कच्ची और बे-पकी आयु में ही चल देते हैं। परन्तु यह बाबा है, जो जाने जीवन के कितने उतार-चढ़ाव, गर्मी-सर्दी और सुख-दुःख अपने सिर पर उठाए, जीवन के इस छोर पर आ लगा है। यह लम्बा युग पार कर आया है।

यह कहते हुए पुजारी ने फिर आतुर हो बाबा की ओर देखा। बाबा बाहर की ओर देख रहा था। कदाचित् वह स्वयं भी किन्हीं विचारों में लीन हुआ बैठा था। तभी उसकी ओर देखते हुए पुजारी ने पूछा—'क्यों बाबा, तुम्हारी क्या आयु होगी? अस्सी वर्ष की होगी?'

बाबा ने बिना किसी विस्मय के एकबारगी कहा—'हाँ, भैया! इसमें भी क्या भूल-चूक! इसी से देख लो, जब बिटिया के घर आया था, तो चालीस से ऊपर ही था, कम नहीं। इतने ही यहाँ हो गए, नौकरी करते!

पुजारी ने फिर पूछा—'जब आए थे, तब क्या तुम्हारा अपना कोई नहीं था? स्त्री और बच्चा भी नहीं था?'

'हाँ, पुजारी मैं तब सभी से छूट कर, अपने घर से निकल पाया था। वह बीमारी क्या आई थी, आँधी की तरह, समूचे घर को उड़ा ले गई थी। बस, मैं बच्चा था और एक मेरी लड़की। बाद में वह भी मर गई। तब मैं उस घर में न रह सका। इन चालीस वर्ष में बस एक बार उधर गया था, सच, तब मैं बड़ा मन लेकर गया था। जाकर देखा अपना कोई नहीं था। किन्तु अपना गाँव था, जिस घर में पैदा हुआ था, वह ढह कर गिर गया था। रात भर पराए की तरह चौपाल में पड़ा रहा। कोई भी अपना न दिखाई दिया। जैसे गाँव ही बदल गया। जो परिचित थे वह सभी मर गए थे। जो बच्चे थे, वह बड़े और बूढ़े हो गए थे। बस, गया सो गया। फिर नहीं गया। उसके बाद मैं गाँव ही भूल गया। यह ध्यान ही नहीं आया, कि कहीं मेरा भी घर था, बीबी-बच्चे थे, मिलने-जुलनेवाले और भाई-बन्धु थे।......'

'तुम दुर्भागी निकले।' एकाएक देर की रुकी हुई साँस को छोड़ कर पुजारी ने कहा—'तुमने जो घर बसाया, वह यों मिट गया, वह तुम्हारे देखते-देखते मिट गया। कहते हुए वह बाहर की ओर देखने लगा। उसी ओर देखते हुए उसने अपने मन में कहा—सुनने में तो छोटा-सा दीखता है, इस बाबा के जीवन का इतिहास; पर इसमें सभी-कुछ तो आ गया। जिसमें हर्ष भी आया और जीवन का रोदन भी।......

उसी समय उसने फिर बाबा की ओर देखा। उसे देखते ही उसने समझा कि बाबा की आँखों में आँसू हैं, वह उसी से भर आई हैं। वह यह देख ही रहा था कि इतने में जैसे ही बाबा ने उन भरी हुई आँखों पर उठे हुए पलकों को डाल दिया कि वह भरे आँसू निकलते दिखाई दिए और फिर उसकी डाढ़ी के सफेद बालों में छिप गए। यह देखते ही पुजारी ने कहा—'बाबा, कुछ याद आया क्या? तुम्हें व्यर्थ ही रुला दिया, मुझे क्षमा करना। तुम्हारी जो सोई हुई बातें थीं, जो तुम्हारे जीवन-गह्वर में कभी खो चुकी थीं, मैंने उन्हें फिर स्मरण करा दिया। सच, यह मैंने अच्छा नहीं किया। बताओ, तुम्हें क्या याद आया? स्त्री-बच्चे, गाँव और उसके साथी?......'

यह सुनते हुए बाबा ने आँखों को पोंछ लिया। उसने कहा—'हाँ, पुजारी, आज फिर सभी कुछ याद आ गया। मुझे दिखता है, जैसे वह सब कल ही हुआ है। तुमसे कैसे कहूँ, मैं अपनी स्त्री और बच्चों के लिये तब महीनों रोया था और तड़पा था। जाने कितने दिन खोया-खोया-सा बना रहा था। जमींदार के घर आया, तब कहीं भूल पाया था। नहीं तो जब नया-नया आया था, तो रात को पड़ते ही और आँख मूँदते ही सभी-कुछ सामने आता था और जाता था। आज भी वही। दिखता है, वह खेल रही मेरी लड़की, वह रही उसकी माँ.........!

'बाबा! कहते हुए हठात् पुजारी रुक गया। वह जो कुछ कहना चाहता था, तब चाह कर भी नहीं कह सका था। उसने इस प्रसंग को छोड़ दिया।

उसी समय रेणु ने पुजारी को लच कर पूछा—'अब और कितनी दूर है ? यह पथ बड़ा भयानक है। देखते भी डर लगता है। मोटर गिरे तो फिर ...!

यह सुन पुजारी तनिक मुसकराया। उसने रेणु की ओर देखा। वह बोला—इस तरह जीवन को कहाँ-कहाँ बचाये रहोगी, रेणु! इसका अन्त अवश्य है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। यह गिर कर हुआ तो, बिस्तर पर बीमार रह कर हुआ तो!

सुनते ही रेणु ने कहा—'यह कुछ नहीं! मैं इसे नहीं मानती। जब जीवन पाया है, तो इसकी रक्षा करना भी हमारा काम है। आदमी सभी स्थितियों को देखना और समझना चाहता है।'

यह सुन पुजारी हँस दिया। उसने कहा—'देख-सुनकर आदमी डरता भी है, मुझे इसी पर आपत्ति है। वह जिस विपत्ति की लीला को मानता है, उसे व्यवहारिक मानता, उस पर विश्वास नहीं करता, रेणु!'

रेणु ने कहा—आदमी, आदमी है। वह मस्तिष्क रखता है। वह अपनी स्थिति पर विचार करता है, तब आपत्ति क्यों ?'

यह सुन पुजारी ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—हाँ, वह अवश्य विचार करे। किन्तु तुम जिस राह की कठिनता को अनुभव करती हो, मैं कहता हूँ, वह झूठ नहीं है, वह सत्य है। यहाँ न जाने कितनी मोटरें गिरी हैं और सदा के लिये अपनी सवारियों के साथ सो गई हैं। वही आज भी सम्भव है। इसी से मैं नहीं सोचता। यह मेरा काम भी नहीं है। जो मेरे सामने है। मुझे वही देखना और करना है और तुम जीवन के दूर-बहुत दूर देखती हो। देखो, मुझ में तो जब तक यह प्राण झंकृत हैं, तब तक प्रकृति के इस विराट सौंदर्य की ओर हर्षना ही मेरा काम है।

'ओह, तुम बड़े विचित्र हो, पुजारी! तुमसे कुछ कहा नहीं कि अपने को उलझाया। क्या जरा-सी बात थी, खेंच-तान कर बढ़ा दी। बड़े आदर्शवादी कहीं के! किसी मुसीबत में फँसो तो पता चले कि क्या है, जीवन और क्या मृत्यु। तुम जीवन के जिस लेखे-जोखे को रात-दिन देखते हो, आखिर वही क्या है ? तुम तो कहोगे, एक खेल,—विपत्ति का एक तमाशा! कठोर जो ठहरे। निरे पत्थर कहीं के!......'

यह सुनते ही पुजारी जोर का ठहाका मार कर हँस पड़ा। वह तब अन्य मुसाफिरों को देख खिड़की के बाहर देखने लगा।

रेणु ने उसे फिर टंकोर कर पूछा—'हँसे कैसे ? जो मैंने कहा, वह असंगत लगा ?'

'नहीं, मुझे सभी संगत लगा!' पुजारी ने बाहर देखते हुए कहा।

'निरा झूठ! कोई और कहता तो मानती, पर तुम नहीं!'

इस पर पुजारी ने कुछ नहीं कहा। वह फिर मौन बना रहा।

उसी समय बाबा ने कहा—'मसूरी आ गई।'

तब देखा मसूरी के बंगले और कोठियाँ आने लगीं और पीछे छूटने लगीं। उसी समय बाबा ने फिर पूछा—'होटल में ठहरेंगे न?'

रेणु ने कहा—'हाँ, होटल में।'

और तभी मोटर होटल के सामने जा रुकी।

ड्राइवर ने पुजारी से पूछा—'आप यहीं उतरेंगे?'

यह सुन उसने रेणु की ओर देखा। रेणु ने कहा—'हाँ, यहीं।'

'अच्छा, उतरो।' पुजारी खड़ा हो गया। मोटर से उतर कर वह रेणु के साथ होटल में गया। ठहरने के लिये स्थान ले लिया। सामान उतर कर कमरों में लग गया। उसी समय जब रेणु अपने दोनों आदमियों को आदेश देती हुई सामान रखाने में लगी थी तो पुजारी छज्जे पर खड़ा मसूरी का दृश्य देख रहा था। इस प्रकार जब वह खड़ा था, तो अचानक ही, उसने सड़क पर जाती हुई एक गाड़ी की ओर देखकर कहा—'अरे, अनिल बाबू ....! कहते और देखते ही उसने चाहा कि वह आवाज दे और अनिल को बुलाये। किन्तु वह ऐसा नहीं कर सका, नहीं कर सका। गाड़ी चली गई। वह दूर जाकर अदृश्य भी हो गई। तब पुजारी वहाँ से कमरे की ओर जाता हुआ बोला—निश्चय ही अनिल बाबू को पता है, कि रेणु मसूरी आई है। उसका मसूरी रहने का विचार है। अनिल इसी उद्देश्य से आया है। तब कमरे में जाकर पुजारी ने काम में व्यस्त हुई रेणु को देखा, उसने चाहा कि वह रेणु को अनिल के आने की खबर दे। किन्तु उसने नहीं कहा। वह रेणु के साथ उसके काम में योग देने में लग गया।

× × × ×

इस प्रकार अनिल की समस्या में पुजारी देर तक उलझा रहा। वह स्वयं इस निश्चय पर नहीं पहुँच पाता था कि रेणु को अनिल के आने की सूचना दे या नहीं। इसके साथ उसने यह प्रथम बार ही अनुभव किया कि रेणु एक ऐसा अलभ्य और अमोल पदार्थ है, जिसे पाने के लिये यह अनिल बाबू अपना सभी-कुछ अर्पण कर देना चाहते हैं। वह धरातल पर आए हुए अपने दीन को एकबारगी छोड़ देने के लिये प्रस्तुत हो गया है। वह रेणु के लिये ही यहाँ तक चला आया है, पीछे-पीछे चला आया है।

यह सोचते हुए पुजारी के मन में अनायास ही अनिल के प्रति दया और सहानुभूति उपज आई। किन्तु, तत्क्षण ही, जब उसने स्वतः अपने को अनिल का प्रतिस्पर्धी रूप पाया, तो वह फिर अपने में विलीन हो गया। अनिल क्या चाहता है,

उसका स्वार्थ क्या है, उसे लक्ष करते ही, जब वह कुछ अधीर और म्लान हुआ, तो तुरन्त आतुर हो, छूटते ही बोला—'नहीं, मैं अनिल से कहूँगा, मैं कुछ नहीं हूँ, हाँ, कुछ नहीं। वह जो पाना चाहता है, वह पाए।......'

दिन कट गया। रात भी आ गई। पुजारी चाहता था कि वह सुयोग पाकर रेणु से अनिल के आने को खबर दे। उसी से जब रेणु सोने लगी, तो तभी पुजारी ने कह दिया कि अनिल यहीं है, वह उसने देखा है।

अनुमानतः पुजारी जानता था कि सुनते ही रेणु को आश्चर्य होगा। किन्तु जब उसने कहा और रेणु ने सुन लिया, तो यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि रेणु ने इस पर न तो अपना कोई मत ही दिया और न अचरज ही दिखाया।

यह देखकर पुजारी ने फिर कहा—'अनिल बाबू यहाँ अवश्य आयेंगे। मुझे उन्होंने देख लिया है।'

'तब! तब!!' एकाएक रेणु ने रोषपूर्ण होकर कहा—'देखती हूँ, तुम न स्वयं सोओगे, न मुझे सोने दोगे। जब आधी रात आई है, तो कहने चले हो। जब तक तुम बात को तोड़-मोड़ नहीं लोगे, न किसी से कह पाओगे, न भूल पाओगे। बताओ तो, अनिल बाबू तुम्हारा कौन है, और मेरा कौन? तुम घूमने क्या आए हो, सच, मुझे मारने आए हो। दिखता है, तुमने यही ठाना है। अच्छा, जो तुमने सोचा है, वह नहीं छोड़ोगे। दिन भर सोचते रहे, रात के बारह बजे तक सोचते रहे और अब एक बजे आए हो किनारे पर कि बता दिया जाय, अनिल यहीं है। वह भी घूमने आया है। तुमने सोचा होगा रेणु सुनते ही प्रसन्न होगी, यह खिल उठेगी। इसका अनिल ही तो है, सब कुछ। इसे वही चाहिए। पुजारी, तुम......तुम...... !' रेणु का गला रुँध गया। उसका स्वर भी भारी हो गया।

यह देख पुजारी स्तब्ध रह गया। वह उठकर रेणु के पास गया और उसके पलंग की पट्टी पर बैठ उसका सिर सेहलाता हुआ बोला—'रेणु, पगली कहीं की। ऐसा भी क्या, सुनते ही जो मन में आया कह दिया। तुम क्यों क्लान्त और क्षुब्ध हुई हो? तुम सोचती हो, मैं विश्वास नहीं करता, तुम्हें नहीं पहचानता।'

'तुम कहो कि अब कभी अनिल का प्रश्न मेरे सामने नहीं रखोगे। मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो।'—रेणु ने कहा और स्वयं पुजारी का हाथ अपने सिर पर रख लिया।

पुजारी ने पूर्ववत् गम्भीर बने हुए कहा—'अच्छा, तुम्हें यही रुचिकर है। तुम्हें यही पसन्द है।' और तभी उसने हँस कर कहा—'तुम फिर भी असन्तुष्ट और असहमत होगी, रेणु!...'

रेणु उठ कर बैठ गई। वह पुजारी के कन्धे पर अपना सिर रखकर बोली—

'तुम जिसे असन्तोष और असहमति कहते हो, मैं उसी को जीवन का सुख मानती हूँ, पुजारी ! मैंने जिस देवता के सामने अपने को अपर्ण किया है उससे क्या इतना भी न कह पाऊँ, मेरा देवता इतना भी न सुन पाए ! जाने कब-कब की पूजा से मैंने यह अधिकार पाया है। जो तुमने स्वयं दिया है। चाहो तो छीन लो। इसे लौटा लो। तब फिर मैं कुछ नहीं कहूँगी। मैं जहाँ से चली थी, फिर वहीं लौट जाऊँगी। मैं खाली हाथ ही लौट जाऊँगी, पुजारी !...'

उस क्षण पुजारी स्वतः अनोखी भावनाओं से भर गया था। वह रेणु के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला—'तुमने स्वयं ही मुझे अपने पथ पर खेंच लिया है। तुमने अपनी स्वेच्छा से मुझे बाँध लिया है, रेणु !'

उसी समय पास के चौराहे पर घड़ियाल ने तीन बजा दिए। पुजारी ने उठ कर कहा—'अच्छा, अब सो जाओ। मैंने ठीक ही किया, जो तुमसे कह-सुन दिया। नहीं तो, आज की रात में इतने सुख से वंचित रह जाता।' कहते हुए वह अपने पलंग पर जाकर पड़ रहा और कुछ ही देर में सो गया। किन्तु रेणु थी, जो कुछ देर तक आँख बन्द किए, मन में जाने क्या-क्या सोचती रही। जब उसने पुजारी की सोती हुई साँसें सुन पाईं, तो उठ कर वह पुजारी की ओर देखने लगी। उसे लगा, जैसे पुजारी समूचे विश्व की सुन्दरता पा गया है, जो अब सुखमय ही आँख मूँदे पड़ा है। जैसे वह सो नहीं रहा है। जाग रहा है और मुसकरा रहा है। इस प्रकार देखते, रेणु में अथाह मोह व्याप गया। जिस को लिये वह उठी और पुजारी के पलंग पर जा बैठी। वह पुजारी के पैरों पर हाथ फेरने लगी और उन्हें दबाने लगी। उस समय प्रातः की सन-सन करती हुई हवा आ रही थी, जिससे रेणु काँप रही थी। किन्तु जैसे वह अपने को भूल कर, उस क्षण पुजारी की सीमा में बँध गई थी। जिसके विपरीत पुजारी गहरी नींद में सो गया था। वह रेणु के आने और पैर दबाने से भी नहीं जाग पाया था।

इस प्रकार रेणु अधिक नहीं टिक पाई। वह पुजारी के पैर दबाते हुए ही एकाएक उन पैरों पर झुक गई और सो गई।

जब दिन चढ़े पुजारी की आँख खुली और उसने रेणु को अपने पैरों के पास सोए देखा, तो वह आश्चर्य से भर गया। वह उस दिगम्बर प्राण रेणु को जाड़े में सुकड़ी पड़ी हुई देख, जीवन की समूची ममता से भर गया। उसने रेणु के ऊपर दूसरी चादर डाल दी और तब अपने नित्य-कर्म में जा लगा। जब वह देर बाद कमरे में लौट कर आया, तो देखा रेणु जाग रही है और चादर से मुँह निकाले कमरे की छत की ओर देख रही है। यह देख पुजारी ने हँसते हुए कहा—'तुम भी खूब सोती हो। नींद भी अपना काम करती है। तुम जाने कब आईं और कब

पैर दबाते सो गई । मैं जब जागा, तो देखा, देवी जी सुकड़ी और नंगी पड़ी थीं । यह नहीं देखतीं कि यह पहाड़ी जगह है । यहाँ की पहाड़ी हवा है । ठण्ड लग गई, तो बस, बिस्तर पर पड़ जाओगी ।'

रेणु ने यह सुना और मुसकरा कर अनसुना कर दिया ।

पुजारी ने फिर कहा—'अब उठो हाथ मुँह धो डालो । एक घण्टे के बाद हमें चलना है । यहाँ एक तरुण-समाज है, जिस में साहित्यिक और समाज सेवक हैं । वह पहाड़ी क्षेत्र में सेवा का काम करते हैं । उन्हीं में कुछ मेरे परिचित हैं । मैंने हरिद्वार से लिख दिया था और उन्हें यहाँ आने का समाचार दे दिया था ।'

रेणु ने पूछा—'वहाँ क्या होगा ?'

'यही गप शप ! यह भी पता चलेगा कि आज कल उनका क्या कार्य-क्रम है । आज रविवार भी है । आज उनका विशेष अधिवेशन होना है, व्याख्यान भी ।'

रेणु उठी और अंगड़ाई ले मुँह-हाथ धोने के लिये कमरे के बाहर चली गई ।

उसी समय दो व्यक्ति पुजारी के पास आए, उनमें एक उसके मित्र थे । जिन्होंने आते ही पूछा—'कहाँ हैं, आपकी रेणु ! उन्हें भी ले चलिए । आज समिति के अधिवेशन में आपको भाषण भी देना है ।'

रेणु कमरे में लौट आई । उसे देखते ही, पुजारी ने अपने मित्र से कहा—आपने जिन्हें आते ही पूछा है, वह यह हैं, रेणु ।'

यह सुन उन्होंने रेणु को नमस्ते किया और कहा–'अपने पत्रों में पुजारी जी ने अनेक बार आपका उल्लेख किया है । आज दर्शन करके देखता हूँ, पुजारी जी ने जैसा लिखा, वैसी ही आप हैं ।'

रेणु कुर्सी पर बैठ गई और हँसते हुए बोली––'पुजारी ने जाने आप को क्य लिखा और आपने मुझ में क्या देख पाया है । पुजारी ने जो लिखा होगा, निःसन्देह वह अत्युक्तिपूर्ण होगा ।'

मित्र ने कहा—'पुजारी अत्युक्ति नहीं करता, भूल कर सकता है । जो आपके लिये वह भी सिद्ध नहीं होती । हम दूर बसे हुए पर्वतीयों को जो मिलेगा, वह सदा सन्मानीय होगा । आप समय-समय पर जो पुजारी की सहायता करती रही हैं, वह सभी पुजारी ने हमें लिखा है ।'

'ओ ! तो सचमुच ही पुजारी ने आपको बहका दिया ।'

पुजारी ने प्रस्तुत प्रसंग को छोड़ कर कहा—'यह अपनी समिति में ले चलने आए हैं, रेणु ! आओ, हो आएँ ! परन्तु हां चलने से पूर्व जलपान हो जाये ।'

यह सुन रेणु ने बाबा को बुलाया और चाय आदि लाने के लिये कहा ।

पुजारी के मित्र ने कहा—'यहाँ मलेरिया फैल रहा है। उससे बहुत व्यक्ति मर गए हैं। आज के अधिवेशन में हमें यही निश्चय करना है कि समिति इस निमित्त क्या करे।'

रेणु ने पूछा—'आपकी समिति के कितने सदस्य हैं?'

'उनकी कई हजार संख्या है। किन्तु जो स्थायी हैं, वह बहुत कम हैं। वह सभी आजीवन समिति से सम्बद्ध हैं। पुजारी उन्हीं में हैं। यह समिति के संगठन-कर्ताओं में भी हैं।'

रेणु ने आश्चर्य से कहा—'यह मुझे आज ज्ञात हुआ। पुजारी ने मुझे नहीं बताया।'

'हम तो चाहते हैं, पुजारी समिति के स्थायी निरीक्षक और सभापति रहें, पर यह स्वीकार नहीं करते। यही कारण है, हम पुजारी को आज-तक नहीं पा सके। वैसे समय-समय पर इनका नेतृत्व अवश्य मिलता रहा है।'

उसी समय बाबा मेज पर चाय और खाने का सामान रख गया। पुजारी ने कहा—'अब चाय पी जाय और खाना खाया जाय।'

खा-पीकर जब चलने को उद्यत हुए तो रेणु ने पुजारी से पूछा—'भोजन किस समय होगा? हमें कितनी देर में लौटना होगा?'

'एक या दो घण्टे में। मैंने बाबा को बता दिया है।'

'अच्छा, चलो।'

सब होटल से निकल कर सड़क पर चल दिए। कुछ दूर जाकर जब वे एक बड़े भवन के सामने पहुँचे, तो पुजारी के मित्र ने कहा—'आइए, यहीं समिति का नया प्राप्त हुआ भवन है। यह अभी दान में मिला है।'

अन्दर जाकर देखा, बड़े हाल में सभा जुड़ी है। दो-तीन सौ स्त्री-पुरुष बैठे हैं, और एक वक्ता का भाषण सुन रहे हैं। यह सभी मंच पर गए और बैठ गए।

जो वक्ता बोल रहे थे, जब वह कुछ देर बाद ही अपना भाषण समाप्त कर बैठे, तो तभी पुजारी का नाम आया और उनसे भाषण के लिये कहा गया।

पुजारी उठा। वह सभापति की कुर्सी के पास जाकर खड़ा हो गया और श्रोताओं को सम्बोधित कर भाषण देने लगा। रेणु के लिये यह पहिला अवसर था कि पुजारी का भाषण सुने। उसे यह भी भरोसा नहीं था कि पुजारी धारावाहिक रूप से बोल पाएगा और जनता को अपना अभिप्राय समझा पाएगा। किन्तु उसने देखा कि पुजारी का वह गौरवर्ण चेहरा बोलते हुए जैसे और चमक उठा था। पुजारी कह रहा था—'अपने जीवन में, इसे मैं एक दिन भी स्वीकार नहीं करूँगा कि विश्व की सारी आपदाओं से दूर, हम अपने जीवन के भोग में लिप्त हो जाएँ। वह

व्यक्ति जो केवल अपने तईं ममता और प्रेम की परिभाषा समझता है, निःसन्देह वह अपने प्रति भी पाप करता है और समाज के प्रति भी। आपके हृदय में जो मानवीय प्रेम का प्रगाढ़ स्रोत व्याप्त है, वह केवल आप तक ही सीमित नहीं है, वह समूचे जन-समाज की निधि है। आप इतने उदार बनिए कि उसमें सृष्टि-जगत् का कोई भी प्राणी गोता मार सके। आपका धन और जीवन सीमा नहीं चाहता। उसे सीमित कर रखिए, आप उसे मुक्त कर विश्व के अर्पण कर दीजिए।

आगे बोलते हुए पुजारी ने कहा—'व्यक्ति समाज का अंग है। जो क्षुधा की पीड़ा से कराह रहा है। मैं पूछता हूँ, आपका विवेक क्या इसे स्वीकार नहीं करता कि जो आपके पास रोटी है, वह उस क्षुधित को भी बाँट दी जाय। आज के मानव को यही चाहिए। आपके पास जो पैसा है, आप उसके दास मत बन जाइए। जिस प्रगति की रचना आपके द्वारा हुई है, वही आज अट्टहास करती हुई खिलखिला रही है। कदाचित् आप अपने पिछले पथ को देखते तो समझते कि जिस मानव की रचना, ईश्वरीय निर्माण-कार्य में सहायक होने के लिये थी, आज उसके विपरीत मानव ने मानव का सँहार किया है। हम नहीं खोजते कि हमारा विवेक और सत्य कहाँ है? आप शायद कभी गाँवों की ओर भी नहीं जाते, उन दलित जातियों की ओर भी नहीं देखना चाहते, जो आपके अंग हैं, आपके शरीर के ही एक भाग हैं। आपके शरीर के यह अलग-अलग हुए टुकड़े जब तक नहीं मिलेंगे, तो निश्चय ही, एक दिन आप मर जाएँगे। आप जिस अहं की खाई में जा पड़े हैं, उसके प्रमादी कारणवश यह भूल गए हैं कि आप जो-कुछ हैं, वह स्वतः और अकेले नहीं हैं। आपको प्रस्तुत करने के लिये जिन शक्तियों और विधियों को जुटाया गया है, आज आप उन्हीं के प्रति उपेक्षित हैं। आप जो कुछ हैं, समाज के हैं। आप स्वतः कुछ भी नहीं हैं। जब तक आप इस सत्यता पर आश्रित रहे, सुखी और स्वस्थ रहे। किन्तु जब से यह अहंमन्यता उदय हुई, आप स्वतः ही पतन की तरफ अग्रसर हो गए हैं। आपका नित-नित ह्रास हो रहा है। नियति आप से चीख-चीख कर पुकार रही है, वस्तु-स्थिति सदा-सर्वदा आपके कानों पर खतरे का घड़ियाल बजाती है और आपको जगाती है और आप, सो रहे हैं, आप दिन-पर-दिन अपनी ही सीमा में लीन होते हैं। अपनी किलोलें और जीवन को भोगने की नित-नई उपलब्ध हुईं सामग्रियाँ जुटाना ही जैसे आपका परम लक्ष्य बन गया है। आपके जीवन के पार भी कोई और जीवन है, जो सिसक रहा है और अपने भाग्य को धुन रहा है, वही इस कोलाहल में आपको नहीं सुन पड़ता। वह आपको दिखाई नहीं देता।'

उस समय रेणु देख रही थी कि पुजारी क्षण-क्षण भर तेज और गम्भीर हो रहा था। उसकी आँखें चढ़ गई थीं, जिस हाथ को उठा-उठाकर वह बोल रहा था,

वह अब मुट्ठी बाँध कर रह गया था। रेणु को ऐसा पहले-पहल दीख पड़ा था कि यह पुजारी है, जो इतना गहरा है, जो रोष और पीड़ा से भरा है। तब जाने कितनी तन्मय हो और उसी में लीन हो, वह उसे देखती थी, और देखती जाती थी।

पुजारी ने भाषण का अन्त करते हुए कहा—'भाइयो, जिस पीड़ा से मुक्त मैं आपके सामने उपस्थित हूँ, विश्वास कीजिए, मैं यह नित्य ही अनुभव करता हूँ। जो हमारे सामाजिक, मानसिक और नैतिक संस्कार हैं वह आज सभी-के-सभी गन्दे और अर्थहीन बन गए हैं। आज हम धार्मिक और सांस्कृतिक नहीं रह गए हैं, हर एक ऐसे अर्थहीन जीवन की पूजा कर रहे हैं, जो हमारे लिये स्वप्न में भी उपादेय और सार्थक नहीं है।'

पुजारी बैठ गया। उसके मुँह पर आए पसीने को देखकर रेणु ने अपना रूमाल दिया और पसीने पोंछने के लिये कहा। इसके कुछ देर बाद ही पुजारी उठ लिया और अपने अन्य परिचित मित्रों से विदा हो रेणु को साथ लेकर चल दिया। द्वार पर जाते-जाते वह रेणु के साथ अभी सड़क पर चला था कि पीछे से अनिल बाबू का स्वर सुनाई दिया—'रेणु—'

पुजारी के साथ रेणु ने सुना और पीछे की ओर देखा। पुजारी भी रुक गया। देखते ही वह तपाक से बोला—'कहिए, अनिल बाबू, आप कब आए?'

अनिल ने कहा—'मैं परसों आया था।'

'आइए, आइए, आप यहाँ ठहरे हैं?' पुजारी ने फिर पूछा।

अनिल ने बताया कि वह एक रायसाहब की कोठी पर ठहरा है। उन्होंने जबरदस्ती उसे ठहरा लिया है।

रेणु के साथ-साथ होटल की ओर चलते हुए अनिल ने कहा—'तुम खूब मिलीं। रेणु आज सिनेमा चलना। यहाँ अच्छे चित्र चलते हैं। आज चलो पुजारी तुम भी!'

पुजारी चलते-चलते कहीं और देखने लगा था। बात सुनकर बोला—'कहाँ अनिल बाबू?'

अनिल ने कहा—'सिनेमा।'

'जी, नहीं। मुझे सिनेमा नहीं भाता।'

यह सुनकर अनिल क्रुद्ध गया। वह अपनी भावना को दबा कर बोला—'नहीं पुजारी, दुनिया में जो कुछ है, हमें वह सभी देखना है।'

पुजारी ने ऊपरी भाव से कहा—'इसे मैं भी मानता हूँ।'

होटल आ गया। कमरे में जाते ही पुजारी ने बाबा से कहा—'खाना ले आओ।'

बाबा ने पूछा—'दो थाल ?'

यह सुन पुजारी ने अनिल की ओर देखकर कहा—'नहीं, तीन थाल।'

उसी समय बाबा के जाने पर पुजारी भी मुँह-हाथ धोने चला गया।

अनिल ने रेणु से कहा—'आज चुप-चाप कैसे हो, रेणु! मुझे खेद है, तुमने पहाड़ पर घूमने का प्रोग्राम बनाया और मुझे नही बुला पाया। बुलातीं तो मैं निश्चय ही आ जाता। यह तो भाग्य की बात थी कि मैं स्वयं ही आ गया। कब आई ?'

रेणु ने कहा—'कल।'

'कैसा संयोग कि मैं आ मिला ?

रेणु ने साधारण स्वर में कहा—'कोई विचार तो था नहीं, अचानक ही निश्चय हो गया। आपको व्यर्थ ही कष्ट देती।'

'अच्छा, तो अब मुझे तुम्हें नहीं छोड़ना होगा। मैं यहाँ अनेक बार आया-गया हूँ। सिनेमा चलोगी !'

'अभी निश्चय क्या ?' रेणु ने सुर्ख होंठों पर हास्य लाकर कहा।

'नहीं चलना ! चित्र देखोगी, तो प्रसन्न होगी। फिर नित्य देखोगी।'

यह कहने के साथ ही, अनिल के मन में आया कि वह कहे मै उसी कारण तुम्हारे गाँव गया, वहाँ से हरिद्वार और फिर तुम्हारे पीछे ही यहाँ आ गया हूँ, मैं चाहता था कि तुम्हें पाऊँ। किन्तु अनिल ने यह नहीं कहा; उससे नहीं कहा गया।

× × × ×

दिन ढलते-ढलते पुजारी, रेणु और अनिल बाबू घूमने निकले। उसी समय पुजारी के मन में एक बात उठ आई। वह पहिले ही आ-जा चुकी थी। किन्तु उस समय वह जैसे पूरे बल के साथ सम्बोधित कर उद्वेलित हो उठी थी। अनिल जब से होटल में आया था, पुजारी तभी से गम्भीर बना हुआ था। जिसे रेणु ने लक्ष नहीं किया था। लेकिन पुजारी जो अपनी बात पर उलझा, तो उलझता ही गया, वह उससे दूर नहीं हो सका।

रास्ते में जाते हुए पुजारी ने अनुभव किया कि वह जो कुछ सोचता और विचारता है, कदाचित् उस पर वह एक क्षण भी नहीं टिका है। वह स्वयं भ्रमित है। जैसे वह अपनी दृष्टि में ही उपहास और वेदना की वस्तु बन गया है। वह भ्रमता हुआ नित-नित अपने पथ से दूर, एक और ही दिशा की ओर बढ़ चला है, जो उसकी नहीं है। वह रेणु की है, और उसी के द्वारा निर्मित हुई है।

उसी समय एकाएक पुजारी में अनिल बाबू के प्रति ममता और दया का भाव उठ आया। वह उसी को लक्ष कर सोचा—क्या यह सब ऐसे ही चलता रहेगा। इस अनिल को यह रेणु ऐसे ही भ्रमाती और अपनी ओर आकर्षित करती रहेगी। तब

तो सचमुच ही रेणु धूर्त है। मुझमें कुछ है, अनिल में कुछ है।.........'

यह कहते ही मानो पुजारी अपने-आप में ही डूब गया था। उसे यह नहीं लग रहा था कि जो अनिल इस प्रकार रेणु के प्रति अर्पित हुआ है, यह न उससे अपेक्षा दिखा पाती है, न प्रेम कर पाती है। वह जैसे एक निपुण सौदागर की तरह वस्तु की वास्तविकता को परखती है और देखती है। और स्वयं पुजारी है, जो स्वतः ही, अनिल जैसी स्थिति में आ गया है। जो अपनी दिशा से दूर हो, आज सचमुच इस रेणु के प्रति समर्पित हो गया है। लेकिन यह उसे कभी भी मान्य नहीं हुआ है।

यह सोचते ही पुजारी ने कुण्ठित हुए स्वर में कहा—'यह झूठ है! यह तुम्हारा दम्भ है, पुजारी! रेणु पर तुम भी आसक्त हो। तुम भी.........'

वह रुक गया। वह अपने हृदय के चोर को साथ लिये, यह स्वीकार करने के लिये बाध्य हो गया कि वह भी रेणु का प्रेमी है। वह भी उसकी ओर झुका है।

यह सोचते ही जाने किस प्रेरणा से भर कर पुजारी लजा गया। वह एक बार ही अपने में सिकुड़ गया। वह भिंचा-भिंचा-सा हो, चलते-चलते अपने पथ को छोड़ दूसरी ओर चलने लगा।

उसी समय रेणु ने हँस कर कहा—'पुजारी किधर!! तुम्हें रास्ता भी नहीं सूझता! देखते नहीं, उधर खाई है!'

यह सुन कर पुजारी ने रेणु की ओर देखा। वह फिर रास्ते पर आ गया। वह तब फिर अनिल की ओर देख, सामने के हरे आसमान की ओर देखता हुआ बोला—'आदि पुरुष की तरह यह अनिल भी है, जो नहीं लजाता, नहीं शरमाता। यह इतना भी नहीं देख पाता कि यह रेणु बरबस ही इसे नाच नचाती है। यह इसे नित-नित नई आशा और आकांक्षाओं सब्ज बाग दिखा कर मोहती है।'

'तब! तब क्या हो?' हठात् पुजारी ने फिर अपने से प्रश्न किया। उसने चाहा कि वह तुरन्त ही अवसर पाए और अनिल से कहे, तुम सुनो, तुम मेरी बात मानो अनिल बाबू, मैं तुम्हारी राह का काँटा नहीं हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ। तुम अपनी बात जानो। तुम क्यों उलझे हो? तुम रेणु से निश्चय करो और कहो।'

किन्तु तभी उसने देखा कि अनिल भी धूर्त है। यह भी धनिक और सुन्दर स्त्री चाहता है। यह किसी निर्धन को पसन्द नहीं करता। कुरूप भी नहीं चाहता।

यह सोचते ही जैसे पुजारी के घूँसा लग गया। उसकी आँखें अन्धेरे में घुस गईं। वह पहले से अधिक उदासीन बन गया। अपने जीवन की जिस व्यर्थता और असमर्थता पर लज्जित था, उस पर टिका हुआ ही, वह जाने कितनी गहरी वेदना के साथ तड़प गया और अपने अन्दर के परमेश्वर को साक्षी कर अपने-आप कहने लगा—'मुझे रेणु से कुछ नहीं कहना है। मुझे अनिल से कहना है। इसके पैर पकड़ कर,

इसकी विनती कर कहना है, भाई, इस हरे-भरे जीवन को क्यों सुखाते हो, इसे क्यों मारते हो। तुम युवक हो, तुम सुन्दर और स्वस्थ हो, यह एक रेणु क्या, तुम हजार रेणु पाओगे। यह जब तक दूर है, शायद तभी तक तुम्हारे लिये सुन्दर है और तुम इसके पास आते हो, फिर आते हो—इस रेणु के पास।

पुजारी ने अनिल की ओर देखा। वह जाने किस जन्म के ममत्व को लिये उसे देखने लगा।

उसी समय रेणु ने कहा—'पुजारी—'

सुनकर पुजारी ने फिर उसकी ओर देखा।

रेणु ने कहा—'चुपचाप ही रहोगे। कुछ नहीं कहो-सुनोगे। देखते हो, इस पहाड़ का दृश्य कितना सुन्दर है! आओ, वहाँ सामने बैठें!'

यह सुनकर पुजारी कुछ नहीं बोला। लेकिन मन में जिन विचारों का द्वन्द्व उठ आया था, वह तब पल मारते में लोप हो गया,—वह खण्ड-खण्ड हो गया। वह तब हँसती हुई और थिरक कर आगे बढ़ सामने पड़ी बेंच पर बैठती हुई रेणु को देखने लगा जो उसे बुलाकर कह रही थी—'आओ, पुजारी बैठ लो। तुम आज अपनी कविता सुनाओ।' और तभी उसने अनिल की ओर देखकर कहा—'बैठो, अनिल बाबू, आज तुम भी पुजारी की कविता सुनो।' और इतना कहकर उसने मुसकराते हुए दोनों की ओर देखा।

अनिल बैठ गया। उसने पुजारी की ओर देखा, कि उस समय पुजारी अपनी भवों को ऊँची किये सामने के विशालकाय पर्वत की ओर देख रहा था। उसी ओर देखते हुए उसने कहा—'बैठो, पुजारी! सच, आज कुछ सुनाओ। कोई मधुर और भावमय संगीत सुनाओ।'

यह सुनकर पुजारी मुस्कराया। उसने बेंच पर बैठते हुए अनिल की ओर देखा।

अनिल ने फिर कहा—'कवियों के लिये इससे सुन्दर और मोहक कौन-सा स्थान होगा? यहाँ सभी-कुछ उपलब्ध है। प्रकृति जैसे साकार और मूर्तिमान होकर सामने खड़ी है। जो हँस रही है और बोल रही है।'

यह सुनकर पुजारी हँस दिया। वह बोला—'आप तो स्वयं कविता कर रहे हैं, अनिल बाबू।'

सुनते ही रेणु भी हँस पड़ी।

अनिल ने कहा—'मैं कविता नहीं कर सकता। इसी से मैं कवियों के भाग्य पर ईर्ष्या करता हूँ।'

पुजारी ने कहा—'ईर्ष्या तो आदमी जाने किस-किस पर करता है। आपकी

क्या बात ! आदमी तो स्वतः अपने को भी हीन और ईर्ष्यालु समझता है। वही आप भी।'

अनिल ने बात का प्रसंग बदल कर रेणु से कहा—'सिनेमा का समय तो हो गया। 'आज एक अच्छा खेल चल रहा है। मुझे वह देखने जाना है।'

यह सुनकर रेणु ने पुजारी से पूछा—'पुजारी चलोगे ?'

पुजारी ने कहा—'तुम जाओ।'

'तो नहीं, मैं नहीं जाती।'

सुनते ही पुजारी ने कहा—'वाह ! यह भी कोई बात है। जब खेल अच्छा है और तुम्हें जाने की चाहना है, तो क्यों न जाओ ? मैं कहता हूँ तुम जरूर जाओ। अनिल बाबू साथ हैं। मुझे क्यों न यहाँ घूमने दो और बैठने दो। तुम जब तक आओगी, होटल पहुँच जाऊँगा।'

अनिल ने कहा—'आज तुम भी देख लो, पुजारी।'

'नहीं, अनिल बाबू ! मुझे सिनेमा नहीं रुचता। मैं कहता हूँ, जिसकी जो पसंद है, वह क्यों न पाए। वह जरूर पाए।'

अनिल ने रेणु से कहा—'यह ठीक तो है, रेणु ! तुम सोचती हो, पुजारी रुष्ट है। देखो हँस रहे है।'

यह सुनकर रेणु ने पुजारी की ओर देखा।

पुजारी ने कहा—'भला यह कोई बात है ! तुम कभी तो निरी बच्ची और अबोध बन जाती हो। तुम मे रे कहे पर ही जाओ। सच, आज जरूर जाओ।'

रेणु ने कहा—'तो तुम क्यों नहीं चलते। तुम मेरे कहे पर भी नहीं चलते।'

यह सुनते ही पुजाी जोर का ठहाका मार कर हँस पड़ा।

रेणु ने फिर आलोड़ के स्वर में कहा—'चलो, उठो।'

पुजारी ने अपने मुँह और वाणी पर गहरी दीनता का भाव लाकर कहा—'तुम मुझे छोड़ दोगी, तो उपकार होगा, रेणु ! मैं कुछ लिखना चाहता हूँ। मैं इसी से एकांत भी चाहता हूँ।'

'तो होटल पहुँच जाना,—जल्दी।' रेणु ने कहा।

उसी समय अनिल जैसे व्यर्थ ही कुपित और कुण्ठित हो गया। वह देर से खड़ा हुआ पुजारी और रेणु की बात सुन कर ऊब गया था। तभी एकाएक उसने कहा 'पुजारी तुम खुशामद करा रहे हो, जो तुम्हें नहीं शोभता। तुम पढ़े-लिखे हो। तुम अपने को कवि कहते हो !'

अनिल की बात सुन पुजारी क्षण भर हतप्रभ रह गया। वह सामने के पर्वत की ओर से आँख फेर अनिल की ओर देखकर बोला—'तुम कुछ क्रोधित हुए हो,

अनिल बाबू ! पर मैं बता दूँ, मैं कुछ न होकर भी, जैसा हूँ, उसी में सुखी हूँ ।'

रेणु ने तपाक से उठकर कहा—'आप व्यर्थ ही कुपित हुए अनिल बाबू ! चलिए, मैं आपके साथ चलती हूँ ।'

रेणु और अनिल बाबू चल दिये । पुजारी वहीं बैठा रहा । जब देर के बाद उसने सामने के पथ की ओर देखा तो वह दोनों अदृश्य हो गए थे । पुजारी के सामने अनेक प्रकार के फूलों से खिलता हुआ उद्यान था, ऊपर हरा-भरा पर्वत था, जिसकी ओर जब पुजारी का ध्यान नहीं था । लगता था, जैसे वह बैठा-बैठा भिंचा जा रहा था । वह अपने आप ही आँखें चढ़ाए काँप रहा था । लगता था, वह जैसे रोएगा, वह रो पड़ेगा ।

इस प्रकार पुजारी उत्तरोत्तर जीवन के अंधकार में लीन होता जा रहा था । उसका मस्तिष्क विकृत और विषैला हो, जैसे अपने-आप ही, विक्षिप्त हो गया था ।

धीरे-धीरे सूरज छिप गया था । संध्या का अन्धकार हो चला था । ओस पड़ने लगी थी । ठण्ड बढ़ गई थी । दूर सड़क पर कोहरे से चारों ओर धुआँ दीखने लगा था । किन्तु पुजारी जिस प्रकार बैठा था, बैठा रहा । वह मौन हुआ, उस शून्य स्थान पर इस प्रकार बैठा था, जैसे उसे वहीं बैठना था और विचार करना था । वैसे वह स्वभाव का एकान्तप्रिय था । किन्तु उस क्षण वह जिस बात पर टिका था, उसके लिये, मानो उस स्थान से उपयुक्त उसे और कहीं उस समय नहीं मिलना था ।

पुजारी के सामने बात थी कि वह जिस उलझन में फँस गया है, और अकारण ही रेणु और अनिल के बीच में आ गया है, अब उससे दूर हो । वह यहीं से दूर हो । उसमें जो शिथिलता है और उसकी जन्मजात कमजोरी है, वह स्वयं उसी ने निर्मित की है । वह उसी ने पाई है…… ।

पुजारी ने अपने कुरते के गले को पकड़ते हुए अधीर होकर कहा—'तुम दुभाषिये रहे, तुम निरे धूर्त रहे, पुजारी ! कभी तुमने जाने क्या-क्या सोचा था, क्या-क्या करना चाहा था, जो सभी धूल हुआ, वह सभी हवा के झोंके में तुम्हारे देखते उड़ गया । यही है, तुम्हारे जीवन का सत्य ! यही जीवन है । तू मर क्यों नहीं जाता ! इस पहाड़ के बर्फ में गल क्यों नहीं जाता, तू ……' और पुजारी का तन बदन एक कम्पन से डोल उठा ।

किन्तु पुजारी की उस दयनीय स्थिति से दूर, जो रेणु अनिल के साथ सिनेमा पहुँच गई थी और चलते हुए चित्र को देखने लगी थी, तब यह वहाँ देर तक अपना मनोरंजन नहीं कर सकी । सिनेमा हाल में बैठे-बैठे, जब उसे इस बात का ध्यान आया कि पुजारी को छोड़ आई है और अनिल के साथ चली आई है, तो जाने किस प्रकार अपने-आप ही उद्विग्न और खिन्न बन गई । खेल आरम्भ हुए देर हो

हृदय में जो रेणु के प्रति एक जिज्ञासा जाग गई थी वह बरबस उसे उद्वेलित और अशान्त बना रही थी। किन्तु जब पहाड़ पर पुजारी रेणु की उपेक्षा कर आगे बढ़ गया, वह रेणु के ठोकर खाकर गिरने और चीखने पर भी न रुक सका था, न उसकी ओर देख सका था, तो वहीं एक पेड़ के पास खड़े हुए अनिल में जो एकाएक रेणु के प्रति ग्लानि और उदासीनता व्याप्त हुई, वह कठिनाई से उसे सहन हो सकी। उसकी आँखों देखते वह जिस प्रकार पुजारी के प्रति समर्पित हुई, वह सचमुच ही अनिल को कड़वी और अप्रत्याशित बात दिखाई दी। जिसके विपरीत पुजारी रेणु को शून्य में छोड़ निरा निर्मोही बन कर चल दिया। यह देखकर अनिल ने चाहा कि वह मुड़ जाये, वह चला जाये। वह अब तक जिस रेणु के प्रति आतुर और मोहित हुआ चला आया, अब उसे छोड़ दे। किन्तु तभी वह अनजाने ही रेणु की ओर बढ़ गया। उसे जमीन पर से उठने में सहारा दिया और कहा—'रेणु, जाने तुमने क्या सोचा है? तुमने क्या करना चाहा है। तुम ऐसी हो, तुम पुजारी के पीछे फिरती हो। इसी से, तुम्हें जो नहीं देखना था, वह आज देख लिया। जो नहीं समझी थीं, वह भी शायद तुमने आज समझ लिया है। अब उठो। आओ, होटल चलो। मैं तो जानता हूँ, तुम अपनी जिद्द की एक ही हठीली हो।'

अनिल की बात सुनकर रेणु ने चाहा कि वह कहे, 'तुम जाओ, अनिल बाबू। तुम न आते तो न यह देखना पड़ता न सुनना पड़ता। परन्तु उस समय वह स्वयं इतनी उद्विग्न और अव्यवस्थित हो गई थी कि उससे कुछ भी नहीं कहा गया। वह उठी और चुपचाप ही वहाँ से होटल की ओर चल पड़ी। उसके तमाम बदन में इस समय विचित्र कम्पन थी।

साथ-साथ चलते हुए, रास्ते में अनिल ने कहा—'पुजारी इतना उद्दण्ड और दम्भी है, यह मैंने आज समझा। वह कुछ नहीं जानता, वह कुछ नहीं समझता।...'

यह सुनकर भी रेणु से नहीं बोला गया। वह जिस गति से चल रही थी, उसे छोड़ और तीव्रता से अपना रास्ता पार करने लगी। कुछ ही देर में वह होटल पहुँच गई। वह सीधी अपने कमरे में आकर बिस्तर पर बैठ गई। उन दोनों को देख बाबा ने सामने आकर तब बड़े कौतुक और अचम्भे से अनिल की ओर देखा। उसने तब रेणु की उस स्थिति को पढ़ना और जानना चाहा।

अनिल ने उसे सुनाते हुए कहा—'अच्छा हुआ, जो चोट न आ पाई। नहीं तो सिर फट जाता। खून बह निकलता।'

'क्या हुआ बाबू?'— छूटते ही बाबा ने पूछा—'क्या बिटिया गिर गई? पुजारी नहीं आया?' और उसने रेणु की ओर देखकर कहा—'पुजारी नहीं मिला, बिटिया? दिखता है, तुम सचमुच ही गिर गई हो, कैसे........?'

अनिल ने कहा—'कैसे क्या, तू तो जानता है बाबा, कहाँ एक रईसजादी जमींदार की बेटी और कहाँ वह भूखा-नंगा पुजारी, जो........'

यह सुनते ही रेणु ने बीच में रोक कर कहा—'आप मुझे शान्ति से पढ़ने दें, अनिल बाबू! पुजारी क्या-कुछ है, वह मैं जानती हूँ।'

अनिल ने कहा—'ओह, मैं नहीं जानता था कि पुजारी के नाम पर, पुजारी का कुछ कहने-सुनने पर तुम रूठ जाओगी! अच्छा।'

'मैं तंग आ गई, अनिल बाबू! किस-किस को कहूँ, किस-किस को समझाऊँ! कभी पुजारी रूठता है, कभी आप! शायद मैं स्त्री हूँ, इसी से इन दो पुरुषों के हाथ की खिलौना बन गई हूँ। मैं पूछती हूँ, आप लोगों ने क्या कभी भी विवेक सीखा और देखा नहीं? जाने आप कैसे पढ़े-लिखे हैं? आप स्त्री को केवल एक ही दृष्टि से देखना सीखे हैं। मैं कहती हूँ, आप यही चाहते हैं, तो लीजिए, इस अभागी और दुर्भागिणी रेणु को खा जाइए। आप इसे हड्डी की तरह कच-कच चबा जाइए। तब आप सन्तुष्ट होंगे। तब आप............'

अनिल ने खड़े-खड़े उसी क्षण रेणु की ओर देखकर कहा—'तुम बहुत तीव्र और कुण्ठित हो गई हो, रेणु! तुम शान्ति से काम लो। तुम स्थिर होकर पुरुष का हृदय परखो और समझो।........'

'जी, समझा!' छूटते ही रेणु ने कहा—'जो नहीं समझा गया है, वह अब समझा जायगा,—क्यों? पुरुष जो कहता और करता आया है, आप भी वही करेंगे। मैं आपके सामने उपस्थित हूँ, देखिए तो, आखिर इस रेणु में क्या है, जो आपको ललचाए हुए है, और आपको बार-बार उसके पास आने के लिये बाध्य किए हुए है?'

'ओह! यह बात है, तुमने पहले नहीं कहा। यह बात तुमने पहले नहीं सुनाई। अच्छा!......'

रेणु ने उसी प्रकार बाहर की ओर देखकर कहा—'यह कहना मुझे नहीं सुहाता। मुझे अच्छा नहीं लगता। आज जब तंग हो गई हूँ, तो कह पाई हूँ। आपने जो कष्ट किया, मैं उसके लिये आभारी हूँ। उसने अनिल की ओर देखा, जो वहाँ नहीं था। वह अपनी बात कहने के साथ ही क्रोध में भरा हुआ खट से द्वार के बाहर हो गया था।

यह देख रेणु ने अपने-आप कहा, गए अनिल बाबू! चलो अच्छा हुआ। यह मेरी बात सुनने से पहिले ही चले गए। वह बिस्तर पर गिर गई और कमरे की छत की ओर देखती हुई फिर बोली—'इस अनिल बाबू से जितना मुझे कहना था, आज वह भी कह दिया। जो पुजारी से नहीं सुनना था, वह आज इससे सुन लिया।' यह कहते हुए उसने पास खड़े और गुमसुम हुए बाबा की ओर

देखकर पूछा—'क्यों बाबा, इस जीवन के लिये क्या चाहिए, तुम जानते हो ?'

बाबा उस आकस्मिक प्रश्न से हतप्रभ रह गया। वह निरुत्तर हो रेणु की ओर देखने लगा।

रेणु ने फिर पूछा—'क्यों तुम नहीं जानते बाबा ? बताओ, मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ। मैं जीना चाहती हूँ।'

यह सुनते ही बाबा ने सरल भाव में कहा—'जीने के लिये सभी कुछ चाहिए, बिटिया रानी, रोटी-कपड़ा भी और शान्ति भी।'

'हाँ, बस, मुझे शान्ति चाहिए। मेरी शान्ति अब अलग हो गई है। लगता है, अब जैसे वह मुझसे दूर हो गई है। तुम इसका कारण जानते हो ?

बाबा एकाएक कुछ नहीं कह सका। किन्तु उसने समझा कि अवश्य कोई बात है, जिससे बिटिया अधीर है। लगता है आज फिर पुजारी और बिटिया में कहा-सुनी हो गई है और पुजारी नहीं आया है। वह अवश्य कहीं और चला गया है। तभी कुछ सकुचाए भाव से उसने रेणु की ओर देखकर पूछा—'पुजारी कहाँ गया, बिटियारानी ! वह नहीं आया, वह ऐसे शीत में भी नहीं आया।'

रेणु ने कहा—'अब वह नहीं आएगा। वह नहीं आ सकेगा।' उसने साँस भर कर फिर कहा—'उसका मोह छोड़ दो। उसे मत बाँधो। वह जैसा है, उसे वैसा ही रहने दो और अब मुझे भी शान्ति से जीने दो, बाबा ! मैं इन सभी से भर पाई। अब जिसकी जो राह है, वह उसी पर जाए और अपनी मनचाही करे, मैं कौन ? मैं व्यर्थ ही टाँग अड़ाती हूँ। मैं व्यर्थ ही किसी के रास्ते में बाधा डालती हूँ।' यह कहते हुए वह फिर अशान्त हो गई।

और कुछ रुकने के बाद ही उसने फिर कहा—'हम कल प्रातः ही होटल छोड़ देंगे। कल ही फिर गाँव के लिये चल देंगे।'

यह सुन बाबा ने मधुर स्वर में कहा—'अच्छी बात है, बिटियारानी, कल जरूर चल देंगे। अब तुम खाना खाओ और आराम करो।'

यह सुनते ही—रेणु ने रुआसी होकर बाबा की ओर देखा।

बाबा ने फिर उसी स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—'ऐसी रात में जाने पुजारी कहाँ पड़ा होगा ? न ओढ़ने को कपड़ा, न पास में पैसा। न कहीं टिकने का ठौर-ठिकाना !'

रेणु ने पीड़ायुक्त झुँझलाहट से भर सूखे होठों से मुसकराकर कहा—'जिसे जैसे रहना है, रहेगा। तुम कौन ! वह तुम्हारी बात नहीं सुनेगा।'

'तो तुम्हें खाना लाऊँ ? अब कितनी देर हुई।'

'मैं नहीं खाऊँगी। मैं खा नहीं सकूँगी।'

'हूँ !'—बाबा ने रुक कर खिड़की के बाहर की ओर देखा। उसी

ओर देखते हुए वह कहने लगा—'पुजारी की बात पर तुम बाबा को रोकती हो, इसे समझाती हो, और स्वयं तुम,' यह कहते ही उसने फिर रेणु की ओर देख कर कहा—'बिटियारानी, तुम कहो न कहो, निश्चय ही, तुम पुजारी की बात लिये हो। तुम उसी के लिये सोचती हो।'

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा।

पास आकर बाबा ने उसके सिर पर हाथ रखा और देखा कि रेणु रो रही है। वह ऊपर मुँह उठाए छत की ओर भरी हुई आँखें किए हुए है।

देखते ही बाबा ने कहा—'बिटिया, तुम सचमुच ही दुखिया बन रही हो। सब कुछ पाकर भी, तुम सुखी नहीं हो। जाने तुम क्या सोचती हो, क्या करना चाहती हो?'

रेणु उठकर बैठ गई। आँखों को पोंछकर वह खिड़की के बाहर देखती हुई बोली—'मेरी शांति उठ गई। जीवन में जो आशाएँ थीं, वह भी मिट गई।'

बाबा ने कुछ दृढ़ और संयत स्वर में कहा—'जिस पुजारी के लिये तुम चिन्तित और उदास हो, तुम उसे अपना बनाना चाहती हो, उसके लिये कुछ त्याग भी करो बिटियारानी।' जितना किया है, उसे पाने के लिये उतना ही काफी नहीं है। कहते हुए बाबा बाहर की खिलती हुई चाँदनी की ओर देखकर फिर बोला—'मैं जानता हूँ पुजारी घमण्डी नहीं है। जब बेबात ही उसका दिल दुखाया जाता है, तो वह दुखी होता है। वह फिर अपने को मारना भी पसन्द करता है। शायद आज यही हुआ है। तभी तो ऐसे जाड़े में, जाने कहाँ, वह रातभर के लिये रह गया है। उसने यही करना चाहा है।'

बाबा की बात सुनती हुई रेणु बाहर की चाँदनी की ओर देख रही थी। दूर पर कोहरा पड़ रहा था, वह जैसे उसकी विषमता को भी अनुभव करती थी।

बाबा ने फिर उसकी ओर देख कर कहा—'कहो तो, मैं और रामदीन पुजारी को देख आएँ। वह जरूर मिलेगा। कहीं-न-कहीं वह किसी पेड़ के नीचे बैठा मिल जायगा।'

'वह तुमको अब नहीं मिलेगा, बाबा! नहीं मिलेगा।'

'वह क्यों नहीं मिलेगा! वह जरूर मिलेगा, बिटियारानी।' आत्मविश्वास के स्वर में बाबा ने कहा।

यह सुनकर रेणु ने जाने कितनी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर देख कर फिर कहा—'यह तुम्हारा अकेले का काम नहीं है, बाबा। यह मेरा काम है और यह ही क्या ठीक कि पुजारी मिलकर भी आजायेगा! वह नहीं आयगा। जब एक बार नहीं आया तो वह अब क्या आयगा?'

'तुम हमें जाने दो, बिटियारानी ! वह मिला तो जरूर आयगा ।'

यह सुन रेणु ने चेस्टर पहन लिया । गरम चादरा कन्धे पर डाल लिया और तब बाबा से कहा— 'आओ, मेरे साथ चलो । रामदीन को भी ले लो । आज फिर एक बार तुम अपनी आँख से देख लो, इस रेणु ने क्या-कुछ नहीं किया है, इसने पुजारी से क्या कुछ नहीं सुना है !'

बाबा दूसरे कमरे की ओर जाता हुआ बोला—'तुम्हारा बाबा तो पहिले ही सभी कुछ जानता है । आज नई क्या बात ? अपनी जिस बिटिया को यह नन्ही-मुन्नी से बड़ी देख पाया है, तब वह इतना भी न जान पायगा ? पर जब तुम दुःखी दीखती हो, तो मैं कैसे कहूँ, इस बाबा को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है,—इसे कुछ भी नहीं सुहाता । कहते हुए बाबा दूसरे कमरे में जाकर रामदीन को चलने के लिए कह, स्वयं भी चादर ओढ़ कर तैयार हो गया । उसने अपने डण्डे को भी ले लिया और फिर रेणु के पास आकर बोला—'चलो बिटिया ।'

सुनते ही रेणु चल पड़ी । वह बाबा और रामदीन के साथ फिर उसी पगडंडी पर बढ़ चली, जिस पर से वह अभी-अभी लौट आई थी ।

× × × ×

रेणु के निर्देश पर साथ-साथ चलते हुए बाबा और रामदीन शहर से काफी दूर निकल गए । रेणु के सदृश वह भी जाड़े से काँप रहे थे और आगे बढ़ते जा रहे थे । इस प्रकार जब रेणु स्वयं थक गई और आगे बढ़ने में असमर्थ हो चली तो वह एकाएक चलते-चलते रुक गई और झुँझलाहट के साथ बोली—'अब कहाँ तक जाओगे । इस रास्ते का अन्त नहीं है । अब लौट चलो । जो यहाँ तक नहीं मिला है, वह आगे भी नहीं है ।'

बाबा ने कहा—'वह सामने गाँव दीखता है, बस वहीं तक । शायद पुजारी वहीं हो, और देखो, कोई आ रहा है । उससे भी पूछ लें ।'

रेणु ने उसी भाव में कहा—'तुम्हें मिला पुजारी । पैर थक गए । कपड़े भी बर्फ जैसे हो गए ।'.........

यह सुनकर बाबा ने आलोड़ के स्वर में कहा—'हमारी मेहनत अवश्य सफल होगी, बिटियारानी ! मुझे भरोसा है ।'

उसी समय वह सामने से आता हुआ आदमी पास आया । बाबा ने उसे रोक कर पूछा—'क्यों भाई, तुम्हें कोई मिला, जिसके बड़े-बड़े बाल, जवान और गोरा, एक कुरता पहने और चादर ओढ़े............'

सुनते ही उस व्यक्ति ने कहा—'अजी, वह बाबू,—वह मेरे घर बैठे हैं । उन्हीं के कहे पर मैं डाक्टर के पास जा रहा हूँ । मेरा लड़का बीमार है । जो बिना

दवा के पड़ा है। वह बड़े भले और नेक बाबू, हमारे तो परमात्मा बन आए...... !'

बाबा ने उल्लास-लिये स्वर में पूछा—'उसका नाम क्या,—पुजारी ?'

'जी, हाँ, पुजारी। उन्होंने यही नाम बताया। उन्होंने यह बीस रुपये दिए हैं जिन्हें डाक्टर के निमित्त लिये जा रहा हूँ।'

तब रेणु ने आर्द्र होकर कहा—'जाओ भाई, तुम डाक्टर ले आओ।'

'हाँ, देखो, वह गाँव के कोने पर मकान है। दीपक जल रहा है, मैं अभी आया।' कहते हुए वह आगे बढ़ गया। वह क्षणभर में पेड़ों और खाइयों की ओट में जाकर अदृश्य हो गया।

उसी समय बाबा ने रामदीन से कहा—'ऐसा है, पुजारी। किसी के भी दुःख-दर्द में काम आता है। अपनों के लिये तो सब करते हैं, भाई। पर गैर के लिये, यह पुजारी ही अपना सब-कुछ वारता और निछावर करता दीखता है।'

रामदीन ने कहा 'पुजारी पुण्यात्मा और धर्मात्मा है।'

अपने उन दोनों आदमियों की बात सुन रेणु मुसकराई। वह चलते-चलते जाने कैसे सुख के साथ दूर के अन्तरिक्ष की ओर देखने लगी। उसी ओर देखते हुए वह अपने मन में बोली—'यह ठीक तो कहते हैं, पुजारी सचमुच ही ऐसा है। उसके कुर्ते की जेब में बीस रुपये थे, वह एक कहानी के पुरस्कार-रूप आए थे।'

यह सोचते और कहते हुए वह रामदीन और बाबा के साथ गाँव के पास पहुँच गई। उस लक्षित मकान के द्वार पर जाकर वह रुक गई। बाबा मकान के अन्दर गया और लौट आकर रेणु और रामदीन को साथ ले गया। जाते ही रेणु ने देखा कि पुजारी रोगी की चारपाई के सिरहाने बैठा है और उसके सिर पर कुछ मल रहा है। पास ही एक स्त्री बैठी है, वह रोगी की माँ है, किसी दवा को घिस रही है।

अन्दर जाते ही बाबा ने पुकारा—'पुजारी.........'

चौंक कर देखते ही पुजारी ने कहा—'ओ, बाबा तुम—रेणु.........'

उसी समय सब आगे बढ़ गए। पुजारी बोला—'तुम्हें इस लड़के का पिता मिला होगा। उसी ने बताया होगा। जाने ईश्वर की किस प्रेरणा से मैं यहाँ आ गया। आज मुझे फिर याद आया कि ईश्वर जो कुछ करता है और हमसे कराता है, वह ठीक ही कराता है।' उसने रेणु को लक्ष्य करके कहा—'तुम देखती हो, इस बेचारी माँ का एक ही लड़का है। पाल-पोस कर बड़ा किया है। यह सख्त बीमार है। मैं जब इधर आया था, इस घर के द्वार से निकला जा रहा था। इस बेचारी माँ का रोना सुना तो बरबस ही यहाँ खिंचकर आ गया। बस फिर न जा सका और तुम ऐसे जाड़े में, ऐसी भरी रात में आई हो! इतनी ठण्ड में आई हो तुम ......!'

बात सुनने के साथ रेणु देख रही थी कि पुजारी बात कर रहा था और बेहोश हुए रोगी के तेल मल रहा था। उसने अपनी चादर को रोगी के ऊपर डाल दिया था। स्वयं केवल एक ही कुर्ते में बैठा-बैठा काँप रहा था परन्तु मुख पर प्रसन्नता का भाव स्पष्ट था।

बाबा ने भी यह देख लिया। उसने कहा—'हम तो चलकर आए हैं और तुम यहाँ बैठकर भी काँप रहे हो, पुजारी ! यह ठण्ड इन पहाड़ियों को सहन है, तुम्हें नहीं।'

रेणु ने अपने गरम शाल को पुजारी के ऊपर डालकर कहा—'इसे ओढ़कर बैठो, तेल मुझे मलने दो।'

'नहीं, नहीं, रेणु, तुम बैठ जाओ।'—पुजारी ने कहा—'वह आग की अँगीठी अपने पास खेंच लो। बाबा, तुम और रामदीन भी अपने को गरम कर लो। तुम सब व्यर्थ ही इतनी ठण्ड में और ऐसी रात में आए हो। जानते तो हो कि पुजारी बच्चा नहीं है, जो कहीं भी भटक जायगा। यह जीवित रहता, तो अवश्य ही, घूम फिर कर तुम लोगों के पास पहुँच जाता। 'कहते हुए उसने ठीक रेणु की ओर देखकर फिर कहा—'सच, तुमने कुछ नहीं सोचा रेणु ! पहाड़ी देश है। जंगली हिंसक पशु, चोर-डाकू,—सभी आपदाएँ तो यहाँ दीखती हैं और तुमने एक बार भी आगा-पीछा नहीं देखा।' कहते हुए वह उठा और बीमार की माँ से बोला—यह जो दूसरा लेप है, इसे तुम पेट पर मल दो।'

इसके बाद ही उस स्त्री को लेप करते देख रेणु ने कहा—'ऐसे नहीं, बहिन, लाओ मुझे दो।' उसने जब लेप का प्याला ले लिया, तो उस माँ ने कहा—'बहिन तुम———'

'हाँ, हाँ, तुम्हारा लड़का मेरा कुछ नहीं लगता क्या ? यह मेरा भी कुछ है। यह मेरा भाई है।'

उस माँ ने फिर पुजारी के लिये पूछा—'यह तुम्हारे कौन हैं ? पति है ?'

रेणु ने कहा—'हाँ, पति हैं।'

'तुम बड़भागिनी हो बहिन, जो ऐसा देवता पाया। ऐसे दयावान् और पुण्यात्मा······।'

इसी समय उसका पति द्वार पर लौट आया। उसने आते ही कहा—'डाक्टर नहीं आया। वह बीस रुपये में नहीं आ पाया।'

'डाक्टर नहीं आया ! क्यों ?' हठात् रेणु ने पूछा।

उसने बताया—'वह कहता था, ऐसी ठण्ड में नहीं जाऊँगा। पचास से कम लिये बगैर नहीं जाऊँगा।'

'हूँ' बात सुनकर कहते हुए पुजारी ने अपने हाथों की मुट्ठियों को भींच लिया। वह क्रोध से भर दाँत पीसता हुआ, बरबस इस-उस ओर फिरने लगा। वह एक अस्थिर हो उठा।

रेणु ने उसकी ओर देखकर कहा—'डाक्टर नीच है। वह आदमी नहीं, पशु है।' कहते हुए तत्क्षण ही उसने अपने बटुए से पचास रुपये निकालकर बीमार के पिता की ओर फेंककर कहा—'लो, उसके मुँह पर यह पचास रुपये दे मारना और कहना, अब चल रुपये के लालची—जलील कुत्ते''''''।'

उन पचास रुपयों को देखकर वह पिता सकुचाया। रेणु ने फिर क्रोधपूर्ण स्वर में कहा—'देखते क्या हो, जाओ। जल्दी जाओ।'

यह सुनकर वह फिर पुजारी की ओर देखने लगा।

पुजारी ने कहा—'हाँ, जाओ भाई! उस रुपयों के भूखे और व्यवसायी डाक्टर को यह पचास रुपये जाकर दो और ले आओ।'

यह सुन वह आतुर और दुःखी पिता जैसे ही फिर लौट जाना चाहता था कि उसने देखा लड़के का साँस एकाएक तीव्र हो गया। जिसने अपनी बन्द हुई आँखें भी खोल दीं। तब लगता था, वह जैसे अथाह पीड़ा से व्यथित हो, अन्दर-ही-अन्दर छटपटा गया था। वह अधिक व्याकुल हो गया। उसकी पीड़ा जैसे सचमुच ही, उसे मथने और मसलने पर उतारू हो गई थी।

सबकी तरह पुजारी भी एकटक होकर उसे देखने लगा। उसी समय रेणु ने उसकी ओर देखकर अधीर स्वर में कहा—'इसे बचाओ, पुजारी! किसी प्रकार बचाओ। यह व्याकुल है। यह पीड़ा से व्यथित है। यह बोल भी नहीं रहा है। दीखता है, इसके ऊपर अब मृत्यु ने अपना हाथ डाल दिया है।'

यह कहते हुए उसका गला भर आया। उसकी आँखों में जो पानी छलछला आया, उसके साथ ही बरबस उसने दूसरी ओर मुँह कर लिया।

पुजारी ने कहा—'हमारा इतना ही काम था, रेणु! इससे आगे नहीं। वह मनुष्य का नहीं, नियति का काम है।'

रेणु ने दूसरी ओर मुँह किए हुए कहा—'नियति कठोर है। जाने क्यों, वह मनुष्य को इस प्रकार तड़पाकर मारती है? यह व्यथा असह्य है। यह मनुष्य के देखने-योग्य नहीं है।'

यह सुनकर पुजारी जाने कितने कड़वे भाव में मुस्करा दिया। वह द्वार के बाहर की ओर देखता हुआ बोला—'मुझे नहीं सूझता कि नियति कठोर है, या हम। शायद हमीं कठोर हैं।''''''

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा।

उसी समय लड़के की माँ ने अपनी रोती हुई आँखों से पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कहा—'मेरे लाल ...... मेरे बच्चे !......'

उस ओर देख पुजारी ने साँस भर कहा—'अब मृत्यु अपना काम कर रही है। जिस डोरी पर प्राण अटके हुए हैं, अब शायद उसके तेज दाँत उसी को काटने पर लगे हैं !......'

'मैं इसे नहीं देख सकती। मैं इसे नहीं सहार सकती। इतनी पीड़ा...इतनी व्यथा...... !' रेणु ने उसकी ओर देखकर कहा।

पुजारी ने कहा—'हाँ, रेणु, यह वही समय है, जिसकी कल्पना से मनुष्य काँपता है और जीवन भर भयभीत रहता है। यह क्षण भर की पीड़ा कभी भी शान्ति नहीं देती। जो मृत्यु है और प्राणों की वायु है, वह इसी प्रकार इस देह का त्याग करती है और इस लम्बे-चौड़े शरीर को छोड़ पाती है।

तभी सबने देखा कि लड़का कुछ कहना चाहता है, वह अपनी माँ की ओर करुणा और रहस्यभरी दृष्टि से देख रहा है, और आँखों-ही-आँखों में पीड़ा से छटपटा रहा है। उसी क्षण उसकी साँस और तीव्र हुई और एकबारगी रुक गई। उसकी गर्दन भी झुक गई। यह देख पास खड़ा हुआ पिता पछाड़ खा गया। माँ पुत्र की छाती पर सिर पटक कर चीख उठी। यह देख रेणु ने अपने काँपते हुए और रोते हुए हृदय को लिये उस माँ के सिर पर हाथ रख कर कहा—'बहिन, शान्त बनो। अब ईश्वर को याद करो, इस मुर्दे को छोड़ दो।'

बाबा और पण्डित रामदीन लड़के के पिता को समझाने लगे। कुछ गाँव के स्त्री-पुरुष भी आ गए। लड़का जमीन पर उतार लिया गया। बात-की-बात में लोगों ने उसकी अर्थी का सामान भी जुटाना आरम्भ कर दिया। किन्तु इस सबके विपरीत पुजारी न रो रहा था, न किसी को समझा रहा था। वह तब द्वार के किनारे खड़ा हुआ, सामने पड़ते हुए कोहरे के धुँए के पार जैसे अन्तरिक्ष को देखने की चेष्टा कर रहा था। वह उसी में लीन मौन हुआ खड़ा था। उसी प्रकार खड़े-खड़े उसने कहा—'क्या यही है, जीवन ? हाँ, बस इतना ही जीवन का नाम है। इसी पर लोग मरते हैं और जीते हैं ?......'

वह कहने लगा—'जाने कैसी दीनता और अपवशता है, यह जवान अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान, यों ही मर गया। यह ईश्वर की फुलवाड़ी का एक फूल बिना खिले ही मुरझा गया। यह बिना परिचर्यों के, बिना दवा-दारू के ही यहाँ से चल दिया !......'

उसी समय उसने खुले स्वर में कहा—'चलो, जो हुआ, अच्छा हुआ। इसे जिसने दिया था, उसने ले लिया। बेचारा यहाँ क्या-कुछ सुख पा रहा था। रोटियों

और कपड़े के चिथड़ों को झटकता था। कहीं का निरा अभागा और दीन !......'

रेणु ने उसके पास आकर कहा—'तुम्हारा इतना ही था, जो कर दिया।'

यह सुन पुजारी ने फिर लड़के की अर्थी और उसकी रोती हुई माँ की ओर भारी मन से देखा।

रोतें हुए लड़के के पिता ने आकर पुजारी के पैरों को पकड़ लिया और कहा—'आप अपने रुपये ले लीजिए, बाबू! बहिन तुम भी, यह लो।' कहते हुए उसने रुपये निकाल कर आगे बढ़ा दिए।

रेणु ने कहा—'यह तुम्हें दिए हैं। लड़के के लिये दिए हैं। इसका भली प्रकार संस्कार करो।'

पुजारी ने उस पिता को ऊपर उठाकर कहा—'अब शान्त बनो, भाई! अपनी स्त्री को भी समझाओ। जो होना था, हो लिया।'

उसी समय उसकी स्त्री ने रोते-रोते रेणु और पुजारी के पैरों के पास सिर रख कर कहा—'अब मैं क्या करूँगी, मैं मर जाऊँगी! मेरा लाल......मेरा बच्चा...?'

रेणु ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—'बहिन, अब चुप हो जाओ। ईश्वर पर भरोसा करो, वह उसी की वस्तु थी, उसी ने पाई। हम-तुम कौन? उससे तुम्हारा इतना ही सम्बन्ध था। जो टूट गया! अब तुम से दूर हो गया।'

यह कहते बरबस ही रेणु का गला भर आया। वह उस परिवार की वेदना और तड़पन को देख अपने को न संभार सकी और न अपनी आँखों में रुका हुआ आँसुओं का प्रवाह रोक सकी।

तभी बाबा ने कहा—'अब चलो पुजारी।'

पुजारी ने रेणु के गालों पर बहते हुए आँसुओं को देखकर कहा—'अच्छा चलो।'

वह सब से विदा ले रेणु के साथ द्वार से बाहर हो लिया और चल दिया। वह चारों व्यक्ति उस रोते हुए परिवार से दूर हो चले, चुपचाप सब अपने-अपने विचारों में डूबे हुए, जैसे खोए हुए अपने आप में लीन, धीरे-धीरे पैर बढ़ाते हुए शहर की ओर बढ़ रहे थे।

सूरज निकल रहा था और प्रातःकाल समक्ष था।

× × × × ×

बाबा ने पुजारी को बता दिया था कि उसके पीछे अनिल बाबू और बिटिया-रानी में क्या बात हुई! अनिल के दिल पर कैसी चोट लगी! वह चला गया। जैसे सदा के लिये चला गया। अब नहीं आएगा, अब नहीं मिलेगा।

मौन भाव में, बाबा की बात सुनकर, पुजारी मन में, अप्रत्याशित रूप से कोलाहल से पूर्ण था। उसके मन में एक नया विचार उदित हो रहा था। वह जीवन

में पहिली बार जैसे किसी अपराधी के सदृश अपने को पा रहा था। वह अनिल और रेणु के समक्ष दोषी था। अतएव, वह स्पष्ट रूप से अपनी स्थिति साफ करने की बात भी अपने मन में उठती पा रहा था। उसके मन में बार-बार आरहा था कि अनिल के समान वह भी रेणु पर आसक्त है,—निश्चय ही रेणु का सौंदर्य, कौमार्य और नारी-जीवन अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। वह स्वयं पथ-भ्रष्ट हुआ है, याचक बना है। उसका मन जैसे किसी पथरीली चट्टान पर गिर कर स्वतः ही क्षत-क्षत हो गया है!

'तो क्या हो......हाँ, क्या ?' बारबार पुजारी का अन्तर पुकार रहा था। वह उससे प्रश्न कर रहा था। जैसे पुजारी को खोज रहा था। और इससे अभी पुजारी मौन था,—जैसे निर्वाक्! उसका पथ कोहरे में छिप गया था। वह दूर तक नहीं देख पाता था।

पुजारी के मन में यह विश्वास था कि अनिल अभी लौटा नहीं है, पहाड़ पर है। इसी होटल के आस-पास है। अतएव, उसने इच्छा की कि वह अनिल को पाए, उसके निकट जाए, अनिल के प्रति समवेदना लिये, वह उससे कहे, ऐ भाई! आओ, आज हम-तुम बात करें। रेणु के विषय पर करें। जीवन के विषय पर करें। और कुछ एक-दूसरे को समझें।

किन्तु पुजारी को यह भी पता था कि वह मगरूर अनिल, बात सुन कर भी उपेक्षा से टाल देगा, हँस देगा, पुजारी को पागल बता देगा। बहुत मुमकिन है कि वह उसे मूर्ख भी कहेगा। लेकिन पुजारी को अपमान का जहरीला घूंट पीने का अभ्यास हो गया था। अतएव, वह इस ओर से निश्चिन्त था। फलस्वरूप, अवसर की बात कि एक दिन जब पुजारी अकेला ही एक बगीचे में भी था, तो तभी, वहाँ पर अनिल आ निकला। वह अकेला नहीं था। उसके साथ एक सुन्दर युवती नारी थी। जब अनिल पास से गुजरा तो पुजारी ने उस नारी को तुरन्त पहचान लिया कि वह उसी प्रांत के एक बड़े जागीरदार की विधवा पत्नी थी। अनिल अँग्रेजी वेश-भूषा में था। वह नारी भी पाश्चात्य ढंग के जनाने जूते पहिने, हाथ में बटुवा लिये, साड़ी के ऊपर चेस्टर पहने, जैसे एक कुमारी के सदृश, उस अनिल के साथ, पुजारी के पास से निकल गई। पुजारी को याद नहीं कि पहिले भी कोई ऐसा अवसर आया या नहीं कि उसे अनिल ने देखा और न बोला हो! अतएव, उसे पास से निकल कर जाते हुए देख, वह समझ गया कि अनिल के मन में जरूर कोई फोड़ा है। वह सूजा हुआ है। वह कसक रहा है। अन्यथा, कारण नहीं था कि अनिल उसे देखे और मुँह फेर कर निकल जाए। अनिल और जागीरदार की पत्नी जहाँ तक देख पड़े, पुजारी देखता रहा। वह अपने मन में एक विचित्र प्रकार का असमंजस लिये हुए, कदाचित् जीवन में पहिली बार इतना भी देख-सुन सका कि इस नारी के कारण, अथवा नारी इस पुरुष

के कारण मानो सदा से ही भ्रमित रहे हैं। एक-दूसरे के प्रति ममतामय रहे हैं। क्रूर और दम्भी भी रहे हैं।

मन में इतना आते ही, पुजारी का मानस हिल गया। उसमें कोलाहल भर गया। जैसे बदन के रोंगटे खड़े हो गए। वह काँप गया। उसका अन्तर बदल गया। हाथ की मुट्ठियाँ बंध गईं, वह अपनी उस कातर और दयनीय बनी हुई अवस्था में ही, ऊपर के खुले अन्तरिक्ष की ओर देखकर, जैसे अपने आप कहने लगा, हाय! हाय! ऐसा है, यह मानव! इतना दीन! ऐसा मोहताज। और यह नारी......राम-राम। इसका तो समूचा जीवन बिगड़ गया; सांस्कृतिक रूप बदल गया। इस नारी ने अपने को बेच दिया। मातृत्व, पत्नीत्व और भगिनीत्व का भाव, सचमुच ही इसके अन्तर से हवा के समान उड़ गया।

निःसन्देह, अपनी उस मौन अवस्था में, पुजारी अतिशय गम्भीर था। उसका स्थूल शरीर यद्यपि साकार रूप से उस फूलों के बगीचे में बैठा था, परन्तु पुजारी का मन तो जैसे हवा के परों पर बैठा हुआ, देश-देशान्तर, समुद्र-पहाड़, जल-जंगल सभी को लाँघता हुआ एक ऐसे देश की ओर उड़ा जा रहा था कि जहाँ कदाचित् नारी नहीं होगी, पुरुष भी नहीं होगा। वहाँ होंगे अनुभूति से पूर्ण, प्राणान्तर में मिले हुए प्राण, जो एक-दूसरे की वाणी सुनते और समझते होंगे।

किन्तु उसी समय, एकाएक 'पुजारी ....।' पीछे से अनिल का स्वर सुनाई पड़ा। अनिल मुस्कराता हुआ और मुँह में लगी हुई सिगरेट का धुँआ छोड़ता हुआ सामने आकर बोला—'मैं समझता था, तुम बैठे होगे। यहाँ मिल जाओगे।' कहते हुए अनिल उसी बेंच पर बैठ गया और बोला—'पहचान गए थे न, उस महिला को, वह तुम्हें जानती है। वह आज यहाँ आई है। मुझे अपनी जागीरदारी का मैनेजर बनाने की बात कहती है। पूर्ण अधिकार देती है।' और उसने तभी हाथ की ली हुई सिगरेट फेंक कर ऊपर आसमान की ओर देखकर कहा—'तो कब तक रहेगी, रेणु? कुछ रहेगी?'

पुजारी ने कहा—'हाँ, रहेगी।'

पुजारी का वह संक्षिप्त उत्तर अनिल के मन में चुभ गया। 'हाँ, रहेगी' में जैसे प्रभुत्व था, आत्मविश्वास था, और तभी अनिल के सामने प्रश्न आया कि रेणु में उसने ऐसा प्रभुत्व नहीं पाया। इतना भरोसा नहीं। मानो उसे अधिकार नहीं। उसकी इतना सामर्थ्य नहीं। रेणु तक पहुँच नहीं।

किन्तु पुजारी ने बात का उत्तर देकर ही जब अनिल की ओर देखा, तो किंचित् वह मुस्कराया, होठों से हँसा। वह अनिल के मुँह पर विषादमयी छाया को

सच कर एकाएक बोला—'तो अनिल बाबू अब आप नई जागीर के मैनेजर बनेंगे। बहुत अच्छा है। आप वहाँ भी चमकेंगे।'

अनिल ने कहा—'लेकिन रेणु ने मेरा अर्थ नहीं समझा।'

सुनकर पुजारी क्षण भर मौन रह गया। तदनन्तर बोला—'शायद यही हो।' उसने कहा—'किन्तु भाई बहुत-सी बातें प्रायः भ्रम में खो जाती हैं। शायद आपके साथ भी यही हुआ है। बताइए तो, आपके मन में क्या है? क्या रेणु? उसकी गम्भीर?' वह बोला—'देखो, अनिल बाबू, एक बात आज स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। आप मेरे प्रति कुछ न सोचें। यह भी अच्छा हो कि आप रेणु के प्रति भी कुछ न सोचें!' पुजारी कहते हुए रुक गया। फिर वह कहने लगा,—'मैं आज तक इस बात को नहीं समझ सका कि पुरुष आखिर यही क्यों पसन्द करता है कि वह सुन्दर नारी और धन का उपभोक्ता हो,—मालिक हो। मैं सोचता हूँ, क्या यही मनुष्य के लिये प्राप्य है?—सुगम है। यही लक्ष है। न, भाई।' पुजारी ने ठीक अनिल की उस वासनामयी आँखों में झाँक कर कहा—'क्या ही अच्छा हो, कि आप सरीखे चतुर, जीवन के खिलाड़ी इस वासना की दलदल में न फँसें। यों अपने सुन्दर प्राण न खोने दें।' कहते हुए पुजारी गम्भीर बन गया। उसकी आँखें चढ़ गईं। माथे में बल पड़ गए। वह अपने सीधे हाथ की हथेली को आँखों के नीचे करता हुआ बोला—'यह न समझिए कि मैं उपदेश दे रहा हूँ। आप से निवेदन कर रहा हूँ कि आप इस अनुभूतिपूर्ण जीवन को यों ही न खो जाने दें। इस सड़ी हुई गन्ध में न डूब जाने दें। मैं आपके प्रति अनुरक्त हूँ। मैं इसलिये भी हितचिन्तक हूँ कि आप उस रेणु के प्रति आकर्षित हैं कि जो मुझे प्रायः याद आती है, जो मुझे अपने पास बुलाती है·········'

अनिल हँस दिया—'पुजारी, तुम अतिशय भावुक हो। हर्ष है कि तुम में सचाई है। मैं भी मानता हूँ कि रेणु तुम्हें प्रेम करती है।'

तुरन्त ही, पुजारी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'परन्तु वह मुझे नहीं चाहिए······नहीं चाहिए।' वह बोला—'अनिल बाबू, मुझे जिस पर प्यार की दरकार है, वह मुझे अभी नहीं मिला। पुरुष की वासना को प्रज्वलित कर देने वाला प्रेम मुझे नहीं चाहिए। वह तो आग है, वह तेज है। उसकी लपटें क्या बुझाई जा सकती हैं? वे तो जलती ज्वाला हैं······इस इन्सान को मारती हैं। देखता हूँ वह तुम्हें भी।······'

उसी प्रकार अपने स्वर पर जोर दिए हुए, अनिल बोला—'पुजारी महाराज!'

'हाँ, मेरे प्यारे अनिल! यदि मैं अपना विसर्जन करके भी तुम्हारी इस आग को बुझा दूँ, इस पर पानी डाल दूँ, तो क्या यह मेरे जीवन का सफल प्रयत्न नहीं होगा, मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा? मैं यही तुम से कहता हूँ। तुम अभी जिस जागी-

न्दार की विधवा पत्नी के साथ जा रहे थे, मैं उससे परिचित होकर ही कहता हूँ, कि वह भ्रष्ट है, निंद्य है, अमानुषीय है। जानता हूँ पैसे के बल पर वह नित-नए मैनेजर और नौकर रखती है, मित्र भी बनाती है। वह हर रोज बाजार की चाट के सदृश नया पत्ता चाटना पसन्द करती है······निरी भूखी······जैसे कुतिया······'

अनिल मौन था। वह अपने जूते का तला घास के ऊपर रगड़ रहा था।

पुजारी ने कहा—'इस नारी ने लाखों रुपया वासना की भट्टी में झोंका है। रुपया तो क्या, कहता हूँ इसने अपना यह सुन्दर शरीर ही उस लपलपाती हुई आग के अर्पण कर दिया है। दिखता है, यह नारी छल रही है···चट-चट चटख रही है।'

अनिल ने कहा—'रुपए का यही उपभोग है, पुजारी! आनन्द पाना ही जीवन का लक्ष है।'

सुना, तो पुजारी जैसे सहम गया। वह तुरन्त कातर भी बन गया। उसे लगा कि जैसे सचमुच ही, वह पास बैठा हुआ अनिल भ्रान्त हो गया है। उसने जीवन और पैसे के व्यापार को गलत समझ लिया है। तभी उसने कहा—'भाई तुमने जीवन और पैसे का सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व नहीं समझा। उपयोग भी नहीं।' वह बोला—'तुम सोचते हो, तुम,—तुम हो! पर मैं कहता हूँ, मैं,—मैं नहीं हूँ। अपना नहीं, मैं पराया हूँ। दूसरों का हूँ, धरोहर हूँ। यही पैसे की अवस्था है, दोनों का ही एक सामूहिक अर्थ है,—व्यापार है। जहाँ स्वार्थ और दम्भ के लिये स्थान नहीं, अपनत्व और अहंमन्यता का भी स्थान नहीं।'

अनिल ने कहा—'यह दार्शनिक बात है। बहुधन्धी मनुष्य भला इतना कहाँ समझता है?'

'तभी तो भूल है! पथ-भ्रष्टता है। अशांति है! स्वार्थ और वंचकता का बोलबाला है!'

इतना सुना, तो अनिल ठहाका मारकर हँस दिया। उसने तब बरबस ही पुजारी को चौंका दिया।

अनिल ने कहा—'पुजारी, संसार का उपभोग करना ही जीवन का लक्ष है। जो पदार्थ है, वह व्यवहार की माँग करता है। नारी और पुरुष का योग कोई चमत्कारिक बात नहीं, प्रकृति का स्वभाव है। यह नियम है। तुम इसे नहीं मानते, यह दूसरी बात है। वैसे मैं कहूँगा, रेणु का प्रेम, रेणु का रूप, रेणु का पैसा तुम्हें भी मन में आकर्षण पैदा करता है। क्यों ठीक है न?'

सुनकर, पुजारी ने जैसे स्थिर दृष्टि से अनिल की ओर देखा। उसने उस व्यक्ति को जितना समझा, उसकी बात को सुना, उसके आगे भी समझना और सुनना पसन्द न किया। उसने देखा कि यह उद्दण्ड अनिल जैसे पुजारी के मुँह पर

चपत मार रहा है, उसे नोंच रहा है, झकझोर रहा है। वह अपने मन की उस जलन रूपी प्रतिक्रिया को यों शब्दों के प्रवाह में बहा रहा है।

और अनिल ने कहा—'महाशय पुजारी, तुम जीत गए, मैं हार गया। तुम्हारा साधु वेश, यह चिर मलिन रूप, रेणु को इतना आकर्षक लगा कि उसका मन तुमसे दूर नहीं हो सका। मैंने उसे अपनी बनाना चाहा, लेकिन देखा ऊसर भूमि में जल देना बेकार ही रहा।'

पुजारी मुसकरा दिया—'तुमने जल नहीं दिया, अनिल बाबू। भूमि कोई ऊसर नहीं। तुम में श्रद्धा हो, लगन हो और फिर असर न हो, भला क्या बात? तुमने पूजा नहीं की। अपने में श्रद्धा नहीं पैदा की।'

रूक्ष भाव में अनिल ने कहा—'मैं पैर पूजने का अभ्यास नहीं करूँगा। ऐसा नहीं कर सकूँगा।'

'तो तुम्हें वरदान नहीं मिलेगा। जहाँ मरने की लगन नहीं, झुकने की बात नहीं, वहाँ क्या उद्देश्य पूर्ण होगा।' ऐसे बनो, ऐसा करो, तो जरूर तुम रेणु को पाओगे। उसके पति भी बन सकोगे। बोलो करोगे?' पुजारी ने जैसे निरे भावनामग्न स्वर में कहा—'सच, तुम ऐसा ही करो, अनिल बाबू। तुम सरीखा पति रेणु को मिले, उसके अन्य आत्मीयों के साथ मुझे भी प्रसन्नता होगी! यह बात मुझे भी भली लगेगी' इतना कहते हुए पुजारी ने अपने पैरों को बेंच पर रख लिया। वह पलोथी मार कर बैठ गया। उसी अवस्था में वह फिर बोला—'यदि मैं भ्रम में नहीं हूँ, तो कह सकता हूँ, तुम्हारे जीवन में यदि रेणु का प्रवेश हो, तुम्हारी माँग स्वीकार हो, तो समझता हूँ, तुम बदलोगे! तुम आज से अधिक रेणु को समझ सकोगे। उसके मन की कोमलता, सरलता और पवित्रता पाकर तुम अपना जीवन पखार सकोगे, अनिल बाबू! वह अलभ्य वस्तु है। उसमें सुगन्ध है। उस सुगन्ध में ऐसी मस्ती है कि सच, तुम एक विचित्र लोक की कल्पना करने लगोगे! और भाई, तुम्हारे मन में यह हो कि यह पुजारी उस रेणु को पाना चाहता है, ठगना चाहता है, सो, तुम विश्वास रखो, मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं है। रेणु के प्रति नहीं। यह तो मैं नहीं कहता कि मैं नारी के प्रति उदास हूँ, विरक्त हूँ, परन्तु इतना कह देना पसन्द करता हूँ, मेरे सामने जो लक्ष्य है, नारी की चाह, नारी का मोह, उससे बड़ा नहीं। अतएव, मेरी दिशा और है, लक्ष्य और।'

अनिल ने प्रश्न किया—'तो तुम रेणु को नहीं पाओगे,—उसे भोगोगे, नहीं?'

इतनी बात सुनी, तो पुजारी का मन फिर काँप गया। अनिल के शब्दों में कितनी अभद्रता थी, इतना उसने समझ लिया। किन्तु उस बात को न लेकर, वह

सीधे-स्वभाव से बोला—'भाई, यह प्रश्न ही नहीं उठता। तुमने न रेणु को समझा, न पुजारी को। तुमने एक अजीब प्रकार की तुलना में अपना मस्तिष्क लगा दिया।'

किन्तु अनिल के मन में जो-कुछ डोल रहा था, वह उसी को फिर अपनी वाणी पर साध कर बोला—'पुजारी महाराज! तुमने अपने साथ पाप किया या नहीं, परन्तु सुन्दर रेणु के साथ जरूर किया। तुमने उसे इच्छा मारने का सबक दिया। जागीरदार की बेटी को योगिनी बनाना पसन्द किया। भला, यह क्या ठीक हुआ? निरा अकल्पित और अव्यावहारिक हुआ। तुम्हें योगी बनना है, तो बनो। जब नारी नहीं चाहते, उसे भोगना नहीं चाहते, तो क्यों रेणु के पास आते हो? क्यों उसके मन की दिशा मोड़ते हो?' वह बोला—'तुम न होते, तो जरूर रेणु मेरी पत्नी बन जाती! हम दोनों के जीवन की एक सीधी डगर बन जाती। पर तुम ऐसे रास्ते में आए, जैसे पत्थर! लगता है, निरे क्रूर। निरे बर्बर…'

एकाएक मानो विक्षिप्त स्वर में पुजारी ने कहा—'अनिल बाबू……'

अनिल ने खड़े होकर कहा—'तुम जड़ हो, तुम अचेतन……'

और इतना आरोप पाकर भी, पुजारी मौन रह गया। वह खड़े हुए अनिल की ओर देखने लगा।

अनिल ने कहा—'अच्छा, मैं जाता हूँ।' वह चल दिया।

तभी, मानो चौंककर, पुजारी ने पीछे से कहा—'कल मिलना, अनिल बाबू! यहीं।'

हाथ उठाकर अनिल ने कहा—'अच्छा, अच्छा!'

वह चला गया

× × ×

पहाड़ की वह रात, चारों ओर गहरा और काला कोहरा। लगता कि जैसे वह क्रूर शीत इन्सान की हड्डियों को फोड़कर प्रवेश करने के लिये सन्नद्ध था। इन्सानी बस्ती के उस समूह में,—उस पर्वताकार व्यूह के अन्तर्पट में बैठा हुआ पुजारी रात का आधा पहर बीत जाने पर भी सो नहीं सका। देर हुई कि रेणु ने उस ईरानी कम्बल से अपना मुँह ढक लिया था जो बिजली के प्रकाश में
लग रहा था। वर्ष भर पूर्व वह कम्बल पुजारी की पसन्दगी से ही खरीदा गया था। रेणु की इच्छा थी कि पुजारी उस कम्बल को ओढ़े, परन्तु पुजारी ने वह रेणु के लिये ही नियत किया था। यों, घण्टा भर हुआ कि रेणु सो गई थी। निद्रा की साँसें भी पुजारी को सुनाई देने लगी थीं। उसी समय पुजारी अपने बिस्तर से खड़ा हुआ और उस बन्द कमरे की एक खिड़की को खोलकर बाहर के अन्धकार में देखने लगा। आह! कितना कठोर और घोर अन्धकार था वह! मानो निरा विकराल!

भयावह। उसी समय, पुजारी ने देखा कि बाहर पड़ते हुए उस कोहरे में न सामने के पर्वत दिखाई दिए, न मसूरी के बाजार के विद्युत-लैम्प! हाँ, हवा की सन-सनाहट के परों पर बैठा हुआ और इधर-उधर दौड़ता हुआ, कहीं से,—शायद किसी होटल से गाने का स्वर अवश्य आ रहा था। वह मधुर-स्वर उस एकान्त में—उस निशा में—कितना भला लग रहा था। उसमें कितना कम्पन था। कितनी हिलोर थी।'

खिड़की पर जाते हुए, पुजारी ने पास ही रखी रेणु की गरम चादर ओढ़ ली थी। उस चादर के नीचे बदन पर केवल बनियान थी। अतएव, जब खिड़की से ठण्डी हवा आई, वह पुजारी के शरीर से टकराई, तो बरबस अपने स्वभाव के अनुकूल शरीर में कँपकँपी उत्पन्न हुई। किन्तु जिस द्रुत-गति के साथ पुजारी का मन उसे छोड़कर कहीं दूर जा रहा था, तो निश्चय ही, उस ठण्ड की ओर पुजारी का ध्यान नहीं था। लगता कि जैसे केवल हड्डियों का ढाँचा उस खिड़की के द्वार पर खड़ा था। वे अवशेष हड्डियाँ!'

और पुजारी का वह मन जैसे बरबस ही, एकाएक चीखकर, झुँझलाकर, मानो स्वयं अपने-आप से कुढ़कर, यह कह सका, हाय! तू भी नराधम रहा! तू भी पत्थर रहा! तू भी जड़ रहा, रे, पुजारी! बता तो, तेरा अर्थ क्या? इस विश्व का अर्थ क्या? इस नारी का और इस नर का अर्थ क्या?

पुजारी कहने लगा, उसकी आँखों के समक्ष संध्या का वह दृश्य आया कि जब अनिल जागीरदार की विधवा पत्नी के साथ गार्डन से निकता जा रहा था। उसे यह भी स्मरण हो आया कि लौटकर अनिल ने उससे कहा—क्या कहा? तो अनिल और जागीरदारनी के उस वैभव, उस महत्व, मन की उस साधना के मध्य मानो पुजारी ऐसे रह गया, ऐसे बन गया कि जानो सचमुच, वह मूर्ख था, समुद्र में पड़े हुए तिनके के सदृश था। उसका कोई अस्तित्व नहीं था, कोई लक्ष्य नहीं था। और यह अनिल, यह जागीरदारनी, यह वैभव-पूर्ण विश्व, यह उल्लासमयी नारी—हाँ, यह सभी कोलाहलपूर्ण वातावरण क्या यों ही है, न इसके पास गर्व है। संघर्ष है। जैसे आत्मानुभूति भी है। तो, इसी स्थल पर पुजारी सोचने लगा, वह मानो चीखकर कहने लगा, जब यह उल्लास है, गर्व है, आत्मानुभूति है, तो विषाद क्यों? मानव का चीत्कार क्यों? और यह शोषण क्यों······'

पुजारी के मन में बात उठ रही थी, वह दीमक के समान उसे कुरच रही थी, कि गाँव का वह दरिद्र, कंगाल, डाक्टर को बीस रुपया भेंट करके भी, उसकी सहायता प्राप्त नहीं कर सका। जिसके पास पैसा नहीं, वह पचास रुपया भी कहाँ से देता। और पर्वतों के मध्य निर्मित उस सौंदर्यमयी, उल्लासमयी तथा रहस्यमयी नगरी

के उस अन्तराल की जब पुजारी ने कल्पना की, उसकी वास्तविक कहानी उसके सामने आई, तो बलात् वह होठों से फुसफुसा कर कह बैठा, इसीलिए है यह स्वार्थ कि आदमी शोषण करे और अपनी इच्छा का पोषण करे। यह पैसा,—यह चाँदी-सोना इसीलिये इस विश्व द्वारा नियोजित किया गया है कि आदमी,—यह इन्सान—वैभव-मयी नगरी का निर्माण करे और उस नगरी का राजा बनकर, उस पर एकाधिपत्य स्थापित करके, अपनी इच्छाओं के समक्ष इन्सान को सिर झुकाता हुआ देखे। वह इन्सान के उस सिर पर पदाघात करे! इन्सान तड़पे, मचले और वह अट्टहास करता हुआ, मानो विजयोल्लास से पूरित हुआ यह चीत्कार करे,—अरे, मूर्ख! तू दास है, तू मेरी जूतियों का तला है···तू एक क्षुद्र तिनका······

उन्हीं क्षणों में पुजारी को लगा कि इन्सान के मन की इस परिस्थिति ने ही, नारी का अपहरण किया है। यह धूर्त और कुटिल इन्सान नारी का ही पतन करने में सफल हुआ है। उसके मन ने कहा, इससे अधिक क्या कि नारी को अपनी इच्छा का पोषण करने के लिये, बाजार के कोठे की रूपसी बना दिया है। नाटक की नायिका··· प्रदर्शन के विनोद की एक सार्थक और पूर्ण सामग्री······

अतएव, मनुष्य इतना नाटकीय है, दुष्ट प्रकृति का है, जब उस निशा में एक बार फिर पुजारी के पास यह विचार उठा, तो समुद्र के गहरे पानी के सदृश जैसे अपने-आप ही तूफान से भर गया। लगा कि वह सुन्दर कमरा, वहाँ की समस्त सामग्री एक-एक बिच्छू, एक-एक साँप बन कर उसे डसने के लिये अग्रसर थीं, आतुर थीं। उसी समय पुजारी ने मुड़कर देखा, रेणु की ओर देखा कि उसने अपना मुँह कम्बल से बाहर कर लिया था। वह सुन्दर मुँह, विद्युत् के प्रकाश में, —उस गुलाबी प्रकाश में-कितना सुन्दर, कितना भोला लग रहा था, वह रूप! मानो वह रेणु नीलम परी! विश्व की सौन्दर्य प्रतियोगिता में सर्वप्रथम। उसके वह घुँघराले बाल, वह नोकीली नाक, वह सुराहीदार गर्दन और वह उठे हुए उरोज···बोला पुजारी, सच, यही तो है वह केन्द्र, वह मर्मस्थल कि जिस पर अनिल गिरा है, मरा है, प्रताड़ित और क्षुभित हुआ है······रेणु के इस रूप के कारण ही, अनिल सोचता है कि धूर्त पुजारी ने रेणु को ठग लिया है, डस लिया है, अपना मन्त्र-जाल डाल कर मुझसे दूर कर दिया है······

सन्ध्या को ही बाबा ने पुजारी से कहा था कि अब अनिल यहाँ नहीं आएगा। वह रेणु से आकर नहीं मिलेगा। जो सम्बन्ध एक दिन बना था, अब वह पहिले सरीखा नहीं रहेगा।

किन्तु इतना सुनकर, पुजारी को भला नहीं लगा। वह अनायास ही स्वयं दोषी बन गया। जीवन में प्रथम बार उसे अनुभव हुआ कि अनिल के समान वह

मी भूखा है। नारी का चाहक है······रेणु का उपासक! अन्यथा, जब वह पुजारी है, जीवन का दास है, इन्सान की अनुभूति के प्रति समर्पित है, तो वह क्यों अनिल और रेणु के मध्य में आता है। वह क्यों, रेणु को आकर यह याद दिलाता है, टंकोरता है, कहता है कि हाँ, रेणु! मैं भी हूँ, तेरा बचपन का साथी, तेरा चाहक, तेरा उपासक······

अपने मन की ऐसी स्थिति में ही, सचमुच, पुजारी का मानस अतिशय करुणार्द्र और पदाघात से पूरित हो गया। उसे लगा कि अनिल के समान वह भी धूर्त है! अनिल व्यावहारिक है, दुनियाँदार है। वह दुनियाँ के मन की बात समझता है। अपनी इच्छा पूरी करना जानता है। और पुजारी,—अर्थात् वह—वह स्वयं, एक ओर आदर्श की दुहाई देता है, तो दूसरी ओर इस रेणु के द्वार पर बार-बार आकर टकराता है। इससे कहता है, रेणु, देख, मैं भी हूँ तेरा उपासक, तेरा चिर-साथी।

एक दिन बाबा ने पुजारी को सुनाकर कहा था, रेणु को साथी चाहिए। इसके मन की बात समझने वाला चाहिए और वह हो, तुम। अनिल और तुम में अन्तर है। अनिल अपनी बात कहता है, सुनता नहीं। वह स्वार्थमय है। उसके पास भय नहीं, ममता नहीं, जीवन की सजीवता नहीं, प्रेम नहीं। वासना है, स्वार्थ है, लोभ है।

किन्तु तब बाबा की बात सुनकर तो पुजारी ने कुछ नहीं कहा, जब वह उस रात में, उस एकान्त में—खिड़की के पास खड़ा हुआ, अन्तर्द्वन्द्व से पूरित हो रहा था, भारी हो रहा था, तो अपने आप बोला, बाबा ने समझा नहीं। स्वार्थ मेरा भी है। मैं भी अनिल हूँ, मैं भी क्रूर हूँ। मैं भी वासनासिक्त हूँ। यदि मेरे पास कामनाओं का द्वन्द्व न होता; तो क्या बार-बार जाकर भी इस रेणु के पास आता। मैं इच्छाओं को संजोता। उन्हें पूरित करता। फलस्वरूप, जब इस प्रकार पुजारी के मन में व्याघात उत्पन्न हुआ और समकक्ष ही, मानव का रोदन, मानव का चीत्कार उसे सुनाई दे रहा था, तो तभी, उसने एकाग्र होकर कहा, इस पैसे की दुनियाँ ने आज सभी-कुछ एकाकार कर दिया है······मानव पतित बना दिया है। रेणु के पास पैसा न होता, तो शायद यह रूप का यौवन भी इस प्रकार प्रेरणात्मक न दीख पड़ता। अनिल और पुजारी यों पथभ्रष्ट भी न होते। यह भोली बाला, यह पैसे के नर्तन में लीन, यों कठपुतली का तमाशा भी न बनती और इन दो व्यक्तियों को अपनी उँगलियों पर भी न नचाती दीख पड़ती······बोला पुजारी, रेणु भोली है तो, पुजारी या अनिल की उपासक है तो, है वासनामयी, जहरीली नागन······यह भी फुफकारती है, यह काटना जानती है। यह भी आदमी को प्रताड़ित और लज्जित करती है। भला क्यों? हाँ, क्यों? केवल इसलिये कि इसके पास रूप है, यौवन है, उसका प्रहरी है चाँदी-सोने का

संसार···वह कुटिल और कठोर दानव। इसी स्थल पर पुजारी को फिर वह गाँव का व्यक्ति और उसकी पत्नी का स्मरण हो आया। उसके युवा पुत्र की अर्थी भी सामने आ गई और उसने नितान्त भयावह बनी हुई स्थिति में आते-जाते कहा, हाय! एक और इच्छाओं का अन्त। दोनों में कितना अन्तर है······कितना बेमेल संसार! और फिर भी कहते हैं लोग, वाणी से और लेखन से पुकारते हैं कि संसार एक है। सर्वत्र मातृत्व की पुकार है। सभी एक पिता की संतान है। यह कहते हुए पुजारी के मन में रोमांच उठ आया। उद्वेग आँखों में छलक आया। बरबस, उसने अपना मुँह खिड़की की चौखट पर टिका दिया और फूट-फूट कर रोता हुआ चीख दिया—'मेरे परमात्मा!'

उसी समय, ठीक उसकी पीठ पर रेणु ने आकर कहा—'पुजारी!'

किन्तु पुजारी बोला नहीं। वह रोता रहा। वह अपनी उन अश्रुमयी आँखों से सामने के अन्धकार को देखता रहा।

रेणु ने कहा—'मैं देर से आई थी। एक स्वप्न देखकर जाग गई थी। तुम यहाँ खड़े हो, यह भी देख रही थी। तुम्हारे मन में क्या है, उसे सुन न पाकर भी, कल्पना कर रही थी। पर मैं कहती हूँ, मैं तुम्हारे समक्ष हूँ, सदा की तरह, इस कठोर रात्रि में भी निवेदित हूँ, मुझे आज्ञा करो······मुझे जीने और मरने का आदेश प्रदान करो, पुजारी।' इतना कहते हुए, रेणु ने पुजारी की कमर पर पड़ी चादर ठीक की। वह ज़मीन से उठाई और तब बोली—'आओ, बिस्तर पर चलो। बैठो, देखो तुम्हारा बदन भी बर्फ बन गया है। आओ, इस रात्रि में, इस एकान्त में, जीवन के इस शांत प्रहर में, मैं फिर तुम्हारे पास बैठूँ, तुम्हारी बात सुनूँ। आज बहुत दिनों में ऐसा अवसर आया है। परसों तुमने ऐसी ही रात्रि में मुझे सजने का आदेश दिया था। मुझे रूप की परी कहा था। पर आज मैं कहती हूँ, तुम बैठ कर मुझ से कहो, मैं नागिन हूँ, मैं कलमुँही! मैं मदपूर्ण······'

पुजारी ने अपनी आँखें पोंछ लीं। उसने रेणु की ओर देखा। शायद आँखों से कुछ कहा।

किन्तु रेणु ने अपने होठों पर विषादमयी मुस्कराहट लाकर कहा, 'यों खड़े-खड़े तुम जो-कुछ कह रहे थे, उसका कुछ अंश मैं सुनने में भी समर्थ हो गई। उसी आधार पर मैं समझ गई कि तुम अपनी आदत के अनुरूप किसी नारी पर ही अटके हो। पर तुम किसी से कुछ कह तो पाते नहीं। अपने से कहते हो। अपने को कुपित और कुण्ठित बनाते हो, यों अब रो भी पड़े हो। आओ, बैठो। अपने बिस्तर पर चलो।'

पुजारी अपने बिस्तर पर आकर बैठ गया। रेणु ने उसे कम्बल उढ़ा दिया, और तभी उसने दूसरे कमरे के द्वार पर जाकर बाबा को वहाँ बुलाया। बाबा खुर्राटे भर रहा था। आवाज सुनकर जाग गया। उठ आया। रेणु ने कहा, 'बाबा, स्टोव जला लो। चाय के लिये पानी रख दो। दो घण्टे से ऊपर हुए कि पुजारी खिड़की पर खड़े थे। ठिठुर रहे थे, रो रहे थे।'

बाबा ने बात सुनकर, अपना मत नहीं दिया। पहिले उसने कमरे की खुली हुई खिड़की को बन्द कर दिया और तब स्टोव जलाने के लिये दूसरे कमरे में चला गया। जब वह दो प्याले चाय लेकर उस कमरे में आया, तो तभी रेणु ने बाबा की ओर देख, भारी स्वर में कहा—'बाबा, तुम जानते हो, कैसे होता है, इस जिन्दगी का अन्त?'

छोटी टेबिल पर वे दोनों प्याले रख कर, बाबा ने बात सुनी और रेणु की ओर देखा। वह अपने बूढ़े होठों से मुसकराया—'बिटिया, मैं इतना कहीं समझदार हूँ? तुम्हीं बताओ! पुजारी से पूछो।'

रेणु ने साँस भरी और चाय का प्याला उठा लिया। उसने घूँट भरा और फिर प्याले को मेज पर रख कर कहा—'पुजारी नहीं बताएगा और यह विषय क्या यों ही समझा जायेगा। न, यह तो मेरी भी समझ में नहीं आयेगा। उसी समय उसने फिर चाय का घूँट भरा और निरलक्ष भाव से पुजारी को लक्ष करते हुए कहा—'सोचती हूँ, पैसा न पाती, पढ़ी न होती, तो शायद मैं सुखी होती। ऐसे जीवन-मृत्यु के विषय पर भी न अटकती।'

किन्तु पुजारी तो मौन था, चाय पी रहा था।

बाबा ने कहा—'फिर भी बात क्या है?'

रेणु ने साँस भरी और कहा—'बात बहुत हैं बाबा, कुछ भी नहीं। हाँ, न सोचूँ तो कुछ भी नहीं।'

बाबा ने कहा—'बिटिया, तुम यहाँ अपना स्वास्थ्य ठीक करने आई हो, तो मन स्वस्थ रखो। हर्ष की बातें करो।'

रेणु ने चाय का प्याला खत्म कर दिया। उसे मेज पर रख कर कहा—'मन प्रसन्न करने के लिये जिस साधन की आवश्यकता है, वह मेरे पास नहीं। वह साधना भी नहीं।'

बाबा ने कहा—'भाग्य की बात है, बिटिया! सामने रखी खीर की थाली भी उठ जाती है।'

'तो हाँ, मैं ऐसी ही दुर्भागी हूँ, बाबा! सब-कुछ पाकर भी कुछ नहीं पाती।'

तब बाबा मौन रह गया। वह पुजारी की ओर देखने लगा। किन्तु पुजारी

कमरे की छत की ओर मुँह किए हुए था। जैसे रेणु और बाबा की बात में डूबा हुआ था।

उसी समय, बाबा ने उसे टँकोरा—'क्या बात है, पुजारी ! क्या कुछ है ?'

पुजारी ने जैसे चौंक कर बाबा की ओर देखा।

तभी बाबा ने फिर कहा—'जिस कथा को तुम और बिटिया देर से बाँच रहे हो, वह क्या बीच में रहेगी ? मैं तो सोचता था अब वह पूर्ण हो जायगी। उसे खत्म करो, पुजारी !'

पुजारी ने कहा—'तुम जिस कथा की बात कहते हो, वह पूर्ण नहीं हुआ करती बाबा ! वह फिर कथा नहीं। जीवन की कथा के पृष्ठ इतने कम नहीं कि जो जल्दी ही समाप्त हो जाएँ, पढ़ कर खत्म कर दिए जाएँ।'

बाबा आँखों से हँसा, मुसकराया—'इतनी गहरी बात भला मैं कहाँ जानता हूँ, पुजारी ! मैं तो इतना कहता हूँ, अब तुम बिटिया का हाथ पकड़ लो। लोगों को बता दो, तुम एक हो, दो होकर भी एक जीवन बन गए हो।'

बाबा के अनुरूप पुजारी भी होठों से मुसकरा दिया—'अब यह कहने की बात नहीं रह गई है, बाबा ! बीती कहानी है। पुरानी है। देखी-सुनी है। तुम्हारी बिटिया तो इस पुजारी के जीवन में मिल गई है। यही भावना मुझे आनन्दित करती है। देखता हूँ, भ्रष्ट करती है। मेरी भावना ही मुझे धोखा देती दीखती है।' वह बोला—'बाबा, आज संध्या समय मुझे अनिल मिला। वह उस जागीरदार की विधवा पत्नी के साथ था। उसने कहा, अब वह उस जागीरदारन की जागीर का मैनेजर होगा। सारा प्रभुत्व उसके हाथों में रहेगा।'

एकाएक बाबा ने कहा—'पुजारी, उस अनिल का रास्ता और है। उसकी आँखें भी और। नीयत भी और। वह औरत को ठगता है। मैं कहूँ कि वह तो अपने जीवन को ही ठगता है। वह मौत की ओर जा रहा है। वह तेज चल रहा है। शायद भाग रहा है। उसे नहीं दीखता कि सामने खाई है, उसी में गिर जाना उसके लिये अवश्यम्भावी है।'

पुजारी ने कहा—'खाई में सभी गिरते हैं, बाबा ! मौत को सभी प्राप्त होते हैं।'

बाबा चकित बन गया—'क्या सभी ? क्या कृष्ण भगवान् भी ? राम भी ?'

पुजारी ने कुछ हँसने का प्रयत्न किया—'मौत का अर्थ है, अन्त। सो, वह सभी का होता है, राम और कृष्ण का भी हुआ है।'

बाबा ने फिर बात पकड़ी—'पुजारी, मुझे याद है, एक बार तुम्हीं ने कहा था कि आदमी की यह मौत अन्त नहीं। आदमी तो एक जीवन में ही हजारों बार मरता

है·और जीता है, सो, मेरी भी यह बात है कि अनिल बाबू-सरीखा इन्सान जीता तो है, पर मरता भी है······आँखों देखते मरता है। वह तो अपनी इच्छाओं का दास है। कुत्ता है, हड्डी पर मुँह मारता है······चारों ओर धन और नारी की गन्ध पाकर दौड़ा हुआ फिरता है।'

पुजारी ने कहा—'इसमें अनिल ही अकेला दोषी नहीं है, नारी भी है। वह जागीरदार की विधवा पत्नी भी है,—शायद रेणु भी।'

चौंक कर बाबा ने कहा—रेणु बिटिया भी!'

लेकिन पुजारी ने अपने स्वर में स्थिरता लाकर कहा—'हाँ, तुम्हारी रेणु बिटिया भी।'

और तभी बाबा ने देखा कि रेणु के मुँह पर आँसू की वह बूँदें आ गई थीं जो तभी उसकी आँख से बाहर निकल आई थीं।

× × ×

वह रात यों एकाएक ही बीत गई। पुजारी को उसकी कीमत चुकानी पड़ी। पुजारी की अवस्था को देख, रेणु के मस्तिष्क पर गहरी चोट पड़ी। बरबस ही, उसके मन में यह बात आई कि पुजारी उसके प्रति उपेक्षित है। अतएव, प्रातः होने तक रेणु के सिर में दर्द और ज्वर हुआ। अगले दिन वह दिन भर बिस्तर पर पड़ी रही। इस बात को पुजारी और बाबा दोनों जानते थे कि रेणु का दिल इतना कठोर नहीं कि वह किसी व्याघात को सहन करे। जब वह दिन भर ज्वर में पड़ी रही और सन्ध्या तक भी बिस्तर से नहीं उठी, तो कमरे के बाहर छज्जे पर खड़े हुए, पुजारी को लक्ष्य कर बाबा ने कहा, रात बिटिया को सर्दी लग गई। तुम्हारी बात भी उसके लिये कठोर बन गई।'

बाबा से, रेणु के प्रति पूर्ण सदाशयता पाकर, पुजारी ने किंचित् उसे लक्ष्य क्या। उसकी आँखों को देखा। उसने बाबा का अन्तर्मन पूर्णरूप से समझना चाहा। किन्तु तत्क्षण ही, वह फिर समीप देखते पर्वतों की ओर देखने लगा। नीचे बाजार का कोलाहल भी उसके कानों में आने लगा। यद्यपि, बाबा के आने से पूर्व, उस बाजार की भव्यता को लक्ष्य कर, रंग-बिरंगी साड़ियों से सज्जित नारियों, सुन्दर पोशाकों से सम्पन्न रईस और बाबुओं को देखकर, उसके मन में आ रहा था, यह संसार कभी एक नहीं रहा······एक-दूसरे के समीप नहीं रहा······भ्रातृत्व और ईश्वरी-पन का भाव भी इस इन्सान में एकात्मीयता के साथ उदित नहीं हुआ। वह इस इन्सान के लिये मान्य भी नहीं रहा। कदाचित्, पुजारी के मन में यह बात इसलिये उठी थी कि बाजार की इस भव्यता में, इन्सानों की उस सजी हुई दुनियाँ में, होटल के उस छज्जे पर खड़े हुए, बाजार में ऐसे भी अनेक स्त्री-पुरुष,—युवक-वृद्ध और

बच्चे—दिखाई दिए कि जो वस्त्र-हीनता के कारण सचमुच ही जाड़े से सुकड़ रहे थे। कदाचित् भूख और दरिद्रता से पेट के समान उनके गाल भी पिचक रहे थे। आँखें माथे के अन्दर धँस रही थीं। जवानी की भरी दोपहरी में ही, वे समाज के प्राणी निरे कृश और वृद्ध होते दिखाई देते थे। समाज की उस अवस्था को देखकर ही, उस विशाल अन्तर को पाकर, निश्चय ही, पुजारी के मानस में कोलाहल था, रोमांच उठ आया था। उसे स्पष्ट लग रहा था कि शान्ति नहीं, चैन नहीं, कहीं अपनत्व नहीं········।

किन्तु पुजारी के मन की उस दयनीय स्थिति में ही, एकाएक बाबा वहाँ आया। उसने आते ही, रेणु की बात को उठाया। उसका पक्ष लिया। निश्चय ही, उसने पुजारी को उद्बोधन प्रदान किया। किन्तु अजीब बात तो यह थी कि स्वयं पुजारी किसी और लोक की,—कदाचित् परलोक की कल्पना कर रहा था। वह क्रांति की आकांक्षा में लीन था। उसका मन निश्चल हो, जैसे महाप्रलय का आवाहन, श्रेष्ठ मानता था। और वह प्रलय आए, समूचा जन-समाज उस मृत्युदायिनी महाप्रलय की गोद में समा जाए, तो सोचा पुजारी ने, फिर नए सिरे से मानव का जन्म आरम्भ होगा। उसके साथ नई भावनाएँ संग्रहीत होंगी। मानव की उस नई उत्पत्ति पर,—उन नव-नियोजित संस्कारों के जन्म पर प्रकृति का भी नया अनुपम आशीष सभी इन्सानों को समान रूप से वितरित किया जायगा। वह सभी को प्राप्त होगा। इन्सान सन्तुष्ट होगा। इन्सान सुखी होगा······।

परन्तु इतनी बड़ी कल्पना करके भी, मानो पुजारी को सन्तोष नहीं था। उसका हृदय तब भी धड़क रहा था, वह उन्मन था। बेचैन बना था। पुजारी को स्पष्ट लग रहा था कि तालाब का जल तो नित्य ही नया आता है, पुराना जाता है। यह जीव-जगत नित नया जीवन पाता और खोता है। परन्तु उन जीवों की पारदर्शकता, उनकी अजेयता में क्या अन्तर आया? बड़ी मछली ने सदा छोटी मछलियों का भक्षण किया और अपना पेट भरा। उसी समय, पुजारी को याद आया कि वह जब एक बार एक तीर्थ पर पहुँचा था और वहाँ के एक बड़े जल-कुण्ड में स्नान करने के लिये प्रस्तुत हुआ, तो तभी किनारे पर ही, एक बड़े मगरमच्छ ने उसे लक्ष्य किया और अपना विशाल मुँह खोल दिया। उस जलचर ने जिस भयंकरता के साथ मुँह खोल कर साँस ली और अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से,—मानो कसाई की दृष्टि से पुजारी को लक्ष्य किया, तो उसी दृश्य को याद कर पुजारी ने कहा, निश्चय ही, वह मगरमच्छ प्रसन्न हुआ होगा कि शिकार आ गया,—इन्सान का भक्षण करना आज उसके लिये सफल बन गया। उस तीर्थ पर ही, पुजारी ने देर तक देखा था कि जलाशय में मगर एक नहीं, अनेक थे। वे सभी अपने शिकार की प्रतीक्षा में थे।

वे जब अपना मुँह खोलते, तो हजारों छोटी-छोटी मछलियाँ आस-पास ही, अपने उदर-कुण्ड में उतार लेते थे। किन्तु होटल के उस छज्जे पर खड़े हुए, बाजार के अन्तर्पट की ओर देखते हुए, पुजारी ने अपने मन पर झटका खाया, उसकी आँखों के समक्ष अन्धेरा छा गया और लगा कि सचमुच, उसके मानस का खून बरबस ही सूख गया। उस अवस्था में ही, पुजारी ने कहा, यह इन्सान भी गोश्तखोर है, जीवखोर है, आदमखोर......'

किन्तु जब बाबा ने अपनी बात आकर कही, तो क्षणभर मौन रहकर, पुजारी ने एक ऊँचे पर्वत की ओर दृष्टि ले जाते हुए कहा, 'बाबा, जिस रोग की बात मुझसे कहने आए हो, उसकी औषध मेरे पास नहीं है। वह अनिल के पास है। उसे बुलाओ। उसे रेणु से बात करने का अवसर दो!'

किन्तु पुजारी से ऐसी बात सुनकर, बाबा चल दिया। उसे अच्छा नहीं लगा कि पुजारी अपने स्वभाव के विपरीत कठोर बात कह रहा है। निश्चय ही, यह रेणु को गलत समझ रहा है। उसका अपमान भी कर रहा है। यहाँ घर से दूर,—पर्वतों में रहकर, शायद यह समझता है कि मेरे हाथ ही रेणु का जीवन है, तो मेरे इशारे पर ही, उसे चलना है, जीना और मरना है!

बाबा को मौन देखकर, पुजारी ने फिर कहा,—'बाबा, यह न समझना कि मेरी बात का कोई भा[illegible] अर्थ है! सीधी बा[illegible] मेरी, मुझे रेणु और अनिल के रास्ते से हट जाना चाहिए, यह मेरे जीवन की बहुत बड़ी कमजोरी है कि जमींदार की बेटी रेणु से परिचय किया। उसकी उदारता को प्राप्त किया। मैं उसकी कृपा का पात्र बन गया।'

अपने होठ, पर खेदपूर्ण मुसकराहट लेकर, बाबा ने कहा—'और क्या यह भी कहोगे कि रेणु ने अपनी अपनत्व को देकर, तुम्हें गलत समझा, तुम्हारा अपमान किया!' वह बोला "पुजारी, बिटिया का मन बड़ा दुर्बल है! वह अकेली है। आज तो निराश्रित है। उसका अपमान मत करो! उसे दुःखी मत बनाओ! देखो, वह अपने माता-पिता से भ दूर हो गई है। उसका व्याह होता, अब तक हो गया होता, तो दो-चार बच्चों की माँ होती। उसका मन लगता। हमारी बिटिया भी माँ बनी हुई प्रसन्न होती।'

छज्जे पर खम्भे के सहारे पुजारी खड़ा था। जब बाबा ने अपनी बात कही तो पुजारी का मुँह नीचा होगया। यों, बाबा का एक-एक वाक्य उसके अन्तर में उतर रहे थे। वे मानो उसे समझाने के लिये बाध्य हो रहे थे। अतएव, जब बाबा ने अपनी बात समाप्त की और कुछ सुनने के लिये पुजारी की ओर देखा, तो तभी, पुजारी ने अपनी आँखें खोलीं। बाबा को लक्ष किया। उस समय उसके होठ सूखे

थे। आँखें भी सूखी थीं। लगा कि उन क्षणों में जैसे पुजारी का मन स्वयं ही द्रवित होगया था।

उसी समय, रामदीन वहाँ आया। वह चंचल स्वर में बोला—'क्या, तुम यहाँ हो ! पुजारी तुम देखो न, मालकिन ने उल्टी की है। पित्त निकला है। बड़ी बेचैनी है।'

सुनते ही, बाबा चल पड़ा—'उल्टी हो गई बिटिया को ! हे राम !'

साथ चलते हुए, रामदीनने कहा—'बुखार भी तेज है। आँखें जल रही हैं।'

बाबा कमरे में पहुँच गया। उसने आते ही अपना ठण्डा हाथ रेणु के माथे पर रखा—'बिटिया रानी······'

किन्तु रेणु ने आँख मूँदे ही कह दिया—'मुझे बुखार है क्या ? प्यास भी है।'

बाबा ने कहा—'पर पानी पीना तो ठीक नहीं होगा, बिटिया !'

सुनकर, रेणु ने फिर अपना मत नहीं दिया। उसने आँख खोलीं, चारों ओर देखा। शायद पुजारी को देखा। पर जब उसे वहाँ पर वह नहीं दीख पड़ा, तो उसने फिर अपनी आँखों को बन्द कर लिया।

बाबा ने कहा—'पुजारी बाहर हैं, अभी आते हैं।'

रामदीन ने कहा—'पुजारी नीचे गए हैं।'

बाबा ने कहा—'नीचे गए हैं, क्यों ? क्या घूमने गए हैं ?'

रामदीन नहीं बोला।

उसी समय रेणु ने बाबा की ओर देखकर कहा—'बाबा, कल घर लौट चलेंगे समझे न तुम, अब मैं शान्त रहूँगी ! पुजारी से कुछ न कहना। उसे कष्ट न देना !'

बाबा ने रेणु के गरम हाथ पर अपना ठण्डा हाथ रखा। उसे सहलाया। उसने कहा—'समझा नहीं जाता बिटिया, कि यह पुजारी भी क्या है·········क्या पत्थर है ?'

कदाचित् रेणु कुछ कहती कि तभी कमरे में पुजारी आया। साथ में डाक्टर था। वह डाक्टर को सीधा रेणु के बिस्तर के पास ले आया। आते ही बोला—'अभी उल्टी हुई है। पित्त गया है। निश्चय ही, ठण्ड लग गई है ! दो दिन से असावधानी भी बरती गई है।'

डाक्टर ने नब्ज देखी। परीक्षा की। बोला—'निःसन्देह, ठण्ड लगी है। सावधानी की आवश्यकता है। फेफड़ों में निमोनिया की हरकत आरम्भ हो गई है। आज रात्रि में ठीक से नींद आई, तो कल प्रातः तबियत बदल जायगी।'

जब डाक्टर चलने लगा, तो पुजारी ने अपने-आप ही रेणु के बिस्तर पर से बटुआ उठा लिया। उसने डाक्टर को फीस दी। दवा के लिये रामदीन साथ कर दिया। डाक्टर चला गया।

उसी बिस्तर पर बैठ कर, पुजारी ने रेणु के माथे पर हाथ रखा। उसने कहा—'दर्द होगा।' कहते हुए वह दबाने लगा। यह देख, रेणु ने चाहा कि रोक दे, इन्कार कर दे। परन्तु इतना कहना तो दूर, उसकी बन्द आँखों से गरम जल आया और वह रेणु के गुलाबी गालों पर वह चला। यह देख,पुजारी ने भी मुँह से कुछ नहीं कहा, उसने रेणु की पहिनी हुई साड़ी का पल्ला लिया और उन आँसुओं को पोंछ दिया। इसी बीच बाबा इसके कमरे में चला गया। सिर दबाते हुए, उस अवस्था में ही, पुजारी ने कहा—'जब दो पथिक एक-दूसरे पर सन्देह करते हैं, तो उनको पथ काटना भी दूभर हो जाता है। वे दो होकर भी अकेले और एक दीख पड़ते हैं! आज तुम्हारी भी यही अवस्था है। शायद मेरी भी......'

किन्तु रेणु फिर भी मौन थी। वह आँख बन्द किए थी। होटल के नीचे ही डाक्टर की दुकान थी। रामदीन दवा ले आया। उसने पहिले पुड़िया खाने के लिये दी। मिक्श्चर की दवा को एक-एक घण्टा बाद पीने के लिये बताया। पुजारी ने पुड़िया ले ली। उसने रेणु से मुँह खोलने के लिये कहा। पानी के साथ वह पुड़िया खिलाकर, उसने बाबा को बुलाया और कहा—'बाबा, आज दिन भर हो गया कि चाय पीने के लिये भी मुँह नहीं खुला। अब एक प्याला चाय दो।'

बाबा ने कहा—'तुमने भोजन भी नहीं किया। बिटिया ने कई बार पूछा, पर हमें कह देना पड़ा, तुमने आज भोजन कर लेने से इन्कार कर दिया।' वह बोला—'बिटिया ने सुबह ही कह दिया था कि तुम ताहरी पसन्द करते हो, तो मैंने रामदीन महाराज से वही बनाने के लिये कहा। वह अब भी रखी है।'

पुजारी ने कहा—'मैं उसी को खा लूँगा। पहिले एक प्याला चाय पिऊँगा।'

तभी रेणु ने अपनी आँखें खोलीं और उसने बाबा की ओर देखकर कहा—'बाबा, तुम्हें इतना नहीं मालूम कि खिचड़ी या ताहरी ठण्डी अच्छी नहीं लगती। वह नहीं खाई जाती। अब आलू-गोभी का शाक और परांवठे बनाने के लिये रामदीन से कह देना। धनिए की चटनी बना दे। शाक में पानी न डाले। आटे में ज़रा-सा बेसन भी मिला ले। और पापड़।'

इतना सुनकर, पुजारी हँस दिया—'बाबा, तुम्हारी बिटिया रानी के मुँह में पानी आ गया है। जरूर, बुखार का बहाना है।'

किन्तु बाबा ने कहा—'पुजारी, तुम क्या पसन्द करते हो, बिटिया को इसका सब पता है।'

पुजारी ने कहा—'तभी तो, तुम्हारी बिटिया ने मेरी नीयत को बिगाड़ दिया है। भला मुझे ऐसा भोजन करना क्या शोभा देता है? मुझे सूखे चने मिल जाएँ, तो यही मेरे भाग्य का बहुत बड़ा सौदा है।'

किन्तु पुजारी की बात सुनकर, बाबा चला गया। कमरे में रेणु रह गई और पुजारी।

उसी समय, पुजारी ने रेणु के बालों पर हाथ फेरा। वह उन बालों को सहलाने लगा। उसी अवस्था में वह बोला—'अपने मन को इतना दुर्बल रखोगी, तो आज समझ लो, तुम इस पुजारी को भी धोखा दे जाओगी। समझती तो हो, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। परन्तु मैं यह समझने के लिये सदा भ्रम में रहता हूँ, क्या तुम्हें भी मेरी आवश्यकता है?' इतना कहते हुए उसने रेणु का सिर अपनी गोद में रख लिया। वह रेणु के मुँह पर झुक गया। उसने कहा—'मैं यह नहीं चाहता मेरे समान तुम भी योगी रहो। तुम भी अपने वैभव से शून्य रहो। और सोचता हूँ मैं, बार-बार ही मन में उठती हुई इस बात को दोहराता हूँ कि संसार के इस वैभवपूर्ण जीवन में आकर, तुम्हारे निकट बैठकर, मैं अपनी साधना को भूल जाऊँगा। मैं अपनी इस दुर्बलता को तुम्हारे समक्ष रखते हुए इसलिये भी नहीं हिचकिचाता कि जानता हूँ, तुम इसका अर्थ न लगाओगी। तुम मेरी वास्तविकता को समझोगी।' पुजारी ने इतना कहकर रेणु के मुलायम, गोरे गालों पर अपना हलका हाथ फेरा और उँगलियों से बालों को सहलाया।

उसी समय, रेणु ने अपने पलक उठा दिए। अपनी दोनों बाहें भी उठा दीं और वे पुजारी के गले में डाल कर ऐसे ढीली छोड़ दीं कि जैसे सचमुच ही, वे निःशक्त थीं, कातर थीं, रेणु के मुँह पर झुका हुआ पुजारी का वह मुँह, उसकी गरम साँसें, उन सभी को पाकर, नहीं कहा जा सकता कि रेणु और पुजारी की चंचलता कितनी व्यग्र हुई, दोनों की गरम साँसें कितनी सन्निकट हुईं कि पुजारी के होंठ, रेणु के होंठों पर टिक गए, वे दोनों इस प्रकार आलिंगन में आबद्ध हो गए कि मानो जाने कब-कब की प्रतीक्षा के बाद मिले थे, कितने उत्कण्ठित, कितने याचक?

× × × ×

पिछली रात जितनी कठोर और विषम होकर गुजरी, प्रस्तुत रात्रि उतनी ही सुखद और मनोरम बन कर आई। पुजारी ने भोजन कर लिया। रेणु का बुखार भी हट गया। दूसरे कमरे में बाबा और रामदीन सो गए थे। अपने कमरे में पुजारी और रेणु जाग रहे थे। रात्रि के उस समय में ही, रेणु ने अपनी वे सरस आँखें पुजारी की

आँखों पर टिका कर कहा—'आज मैं तुमसे कहती हूँ, सहर्ष कहती हूँ, मैं तुम्हें बन्धन में न रखूँगी। तुम तपस्वी बनो। अपने कार्य में लगे रहो। मैं केवल तुम्हें अपना पति मान कर ही इस जीवन में सुख अनुभव करूँगी। मैं अब लोगों से कह दूँगी, पुजारी मेरे पति हैं।'

पुजारी उस समय गम्भीर नहीं था। वह रसिक बना हुआ था। भोजन के उपरान्त ही, वह रेणु के बिस्तर पर लेट गया था, और रात के बारह बजे बाद भी वह उसी बिस्तर पर तकिये के सहारे सिर रखे पड़ा था। रेणु देर तक बैठी रही। परन्तु बाद में वह भी पड़ गई। बुखार के कारण रेणु ने दिन भर कुछ खाया तो था नहीं, एक घण्टा पूर्व उसने चाय पी और अब पुजारी के समीप पड़ी हुई, वह एक ऐसे सुख की विभूति से भरी थी, जो कदाचित् उसे जीवन में प्रथम बार ही उपलब्ध हुआ था।

लेकिन जब पुजारी ने उसकी अन्तिम बात सुनी, तो वह तनिक मुसकराया और रेणु की ओर करवट लेकर बोला—'तो क्या तुम समझती हो कि यह व्यावहारिक है ? निभने वाला है ?'

रेणु ने कहा—'क्यों नहीं, यह निभेगा ?'

'और लोग यह न कहेंगे कि इस भूखे पुजारी ने जमींदार की बेटी को ठग लिया। तुम्हारे सम्बन्धी कुपित होंगे और मुझे मार देंगे।'

इतना सुन रेणु हँस पड़ी—'कायर कहीं के !'

लेकिन पुजारी ने उसी स्वर में फिर कहा—'मेरी बदनामी होगी। मुझे अप्रतिष्ठा मिलेगी।'

रेणु ने दुलार के साथ, पुजारी के सिर के बालों में अपनी उँगलियाँ दे दीं—'तो अभी कौन बड़ी प्रतिष्ठा पाते हो, तुम ! बदनामी से डरते हो।'

पुजारी हँस दिया—'इस दुनिया में एक अनिल ऐसा व्यक्ति अवश्य होगा कि जिसे मेरा-तुम्हारा यह व्यापार भला नहीं लगेगा। वह कुपित होगा। वह निश्चय ही—'

इतना सुनकर, बीच में ही, रेणु ने झल्लाकर कहा—'वह कौन है ? बदमाश है, वह ! कमीना है, वह मेरा रुपया चाहता है। मेरा रूप चाहता है। वह स्वार्थी है। दम्भी है। क्रूर है, वह। आदमी बनकर भी कुत्ता………'

पुजारी का हाथ रेणु की बाँह पर रखा हुआ था, बात सुनी, तो वह उसकी बाँह को सहलाने लगा। कभी उसके हाथ की चूड़ियों में अपनी उँगलियाँ उलझाने लगा। उसी अवस्था में उसने रेणु का हाथ दाब कर कहा—'गुस्सा मत करो। मन शांत रखो। इस विषय को इतना गहन भी मत बना डालो।'

किन्तु रेणु ने उसी प्रकार लाल बन कर कहा—'यह तुम क्या कहते हो, पुजारी !

विषय तो यह गहन है। भारी है। मेरे लिये, एक पुजारी के लिये—इससे बड़ा और विषय क्या हो सकता है? नारी के इस जीवन में आकर ही तो मैंने इसका अर्थ समझा है। इस आयु में समझा है। अब तक सुनती आई थी कि वसन्त आता है। वह अपने जीवन के साथ एक अजीब प्रकार की मस्ती और मदहोशी लाता है। पर अपने इस यौवनकाल में, जीवन की इस चढ़ी दोपहरी में, मैंने समझा है कि बसन्त क्या है, उसका मर्म क्या है………'

उसी समय, पुजारी ने और अधिक कस कर रेणु का हाथ दाब लिया। पर उसी हाथ को अपनी छाती पर रखता हुआ बोला—'तो रेणु! लो मैं प्रस्तुत हूँ। तुम्हारे जीवन में वसन्त आए, हर्ष आए, मदहोशी आए, उसका स्वागत करने के लिये यह पुजारी,—यह तुम्हारा चिर साथी, आज स्पष्ट रूप से कहता हूँ, इसे पा लो। इसे भोग लो।'

लेकिन इतना सुनकर, रेणु ने एकाएक अपना मत नहीं दिया। उससे कुछ नहीं कहा गया। वह कमरे की छत की ओर देखने लगी। उसकी साँस भी तेज चलने लगी।

किन्तु पुजारी ने वह फिर टंकोरी—'बोलो, कहो कुछ! तुम्हें जो कुछ पाना है, सो पाओ।'

रेणु ने कहा—'पुजारी, यह मत भूलो कि तुम इस रेणु के केवल पति या साथी ही नहीं बने हो, इसके गुरु भी हो। यह तुम्हें जानती है। तुम्हारे मन की अवस्था भी पहचानती है। यह तुम्हें जीवित रखना चाहती है। अपने प्राण के समान तुम्हें भी सहेज कर रखना पसन्द करती है।'

पुजारी ने कहा—'और मैं देखता हूँ कि तुम विक्षिप्त हो, अपने पथ पर ही खो रही हो। तुम मुझे भी विक्षिप्त बना देना चाहती हो।'

इतना सुना कि जाने किस अपूर्व गद्‌गद भाव में रेणु ने तुरन्त ही तकिए से अपना सिर उठाया और वह पुजारी की बाँह पर रख दिया। उसने अपना मुँह पुजारी की छाती से सटा दिया। बाँह को पुजारी की छाती पर रखते हुए उसने कहा 'तो क्या तुम समझती हो, मैं जीवन-भर तुम्हारी अर्चना करना चाहती हूँ। मैं अब इस अजीब प्रकार की कल्पना में डूबी हुई हूँ। तुम्हारे पास जो संकल्प है, मैं उसकी पूर्ति बन जाना चाहती हूँ। मैं उस राजपूतानी के सदृश जो युद्धक्षेत्र में जाते हुए अपने पति के मस्तक पर तिलक लगाती थी, कमर में तलवार बाँधती थी, अथवा पति का मोह अपने से दूर करते हुए, उसे वीरता प्रदान करते हुए, स्वयं अपना सिर उतार कर पति को अर्पण करती थीं—हाँ, ऐसी ही एक अर्चना, अपूर्व साधना, एक तेजोमयी कल्पना में कई दिनों से अपने मस्तक में जागती हुई पाती हूँ। मैं तुम्हें जनता-जनार्दन

की जिस भक्ति भावना में डूबा हुआ पाती हूँ, उसी में लीन हुआ, उसीमें डूबा हुआ देखना, इस जीवन में पसन्द करूँगी, मेरे पुजारी! तुम जनता के पुजारी बनो, मैं तुम्हारी पुजारिन!—इतना कहते हुए, रेणु ने अपना सिर पुजारी की बाँह से उठा कर, उसकी छाती पर रख दिया। उसके कानों ने स्पष्ट रूप से पुजारी की छाती में उठती हुई धड़कन को सुना। उसी धड़कन पर अपना हाथ लगाते हुए, उसने फिर कहा 'पुजारी महाराज, इस रेणु ने निश्चय कर लिया है कि इसे माँ बनने की इच्छा नहीं। वेश्या-जीवन बिताने की भी चाह नहीं। तुम जिस पथ पर होगे, यह भी उसी पर चलेगी। यह जब तुम्हारी सुनी हुई बातों की स्वयं सिद्धा बनेगी। यह स्वीकार कर लेगी कि इसके लिये अपना युद्ध नहीं है। जब यह शरीर ही सामाजिक निधि है तो जमीन और सम्पत्ति भी जनता की है। यह उसी जनता को लौटा देगी। जब इसकी इच्छाएँ नहीं, तो धन की आवश्यकता ही नहीं।'

उसी समय पुजारी ने साँस भरी 'काश, यही सत्य हो! तुम्हारी जिह्वा पर यही भगवान् की वाणी हो।'

रेणु ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा, 'नहीं पुजारी, यही सत्य है। यही भगवान् की वाणी है। मुझे यही करना है। यहाँ से लौटकर मुझे ऐसे ही जीवन में पैर रखना है।'

पुजारी ने कहा—'मुझे प्रसन्न करने के लिये? मेरी बनने के लिये?' सुनकर रेणु जैसे लाल बन गई—'मैं शरीर का सौदा नहीं कर रही पुजारी! मैं तुम्हें नहीं बाँध रही, तुम स्वतन्त्र हो।'

किन्तु पुजारी ने फिर साँस भरी और छोड़ दी। उसके मन में बात थी कि क्या यह निभने वाली बात है? व्यावहारिक है! रेणु का यह यौवन, यह वसन्त-काल, बिना प्रभाव डाले टल जानेवाला है? रेणु के पास ऐसी साधना है। यह कोमल नारी, इतनी कठोर है। वह मौन ही रहा। उसके मन में यही डोलता रहा वह जैसे रेणु के रास्ते पर आकर किसी पाप का भागी बन गया। रेणु की मानसिक स्थिति को बदलने का अपराधी बन गया।

रेणु ने जैसे पुजारी के मन की बात को ताड़ लिया। उसने उसकी छाती पर से मुँह उठाया और ठीक उसकी साँसों के निकट अपनी साँस ले जाकर कहा—'तुम चिन्ता न करो! इतने लम्बे समय से, तुम्हारे सहवास में मैंने इतना सीख लिया है, इतना पा लिया है, कि मेरा मन पक गया है; मेरा यह शरीर भी कठोर बन गया है।'

यह सुनकर, पुजारी ने अपने दोनों हाथों से रेणु के दोनों गाल दबा दिए—'मेरी रेणु!'

उसी अवस्था में रेणु ने कहा--'मेरे पुजारी !'

पुजारी ने कहा--'तो तुमने पाया क्या ? खोगा क्या ?'

रेणु ने फिर अपना मुँह पुजारी के मुँह पर रख दिया और उसने कहा 'मैंने तुम्हें पाया है,--तुम्हें !'

सुनकर, पुजारी सूखे होठों से हँस दिया—'यह पुजारी, यह भिखारी,—बस !'

आल्हादित बनकर रेणु बोली—'हाँ, बस। मेरे लिये यही पर्याप्त है। इसी में मेरा भला है। यही मेरा चिर सोहाग है।'

किन्तु पुजारी ने अपने सूखे होठों पर जीभ फेर कर कहा--'कोरी भावना में व्यवहार नहीं होता, रेणु ! ऐसे तो स्थिरता का आभास भी नहीं मिलता। शायद जीवन का वास्तविक रूप नहीं दीख पड़ता।'

इतना सुनकर, रेणु ने पुजारी को छोड़ दिया। उसने फिर पूर्ववत् तकिए पर सिर रख लिया और कहा---'अब तक मैंने भी यही समझा। यही सुना। पर अब सोचती हूँ, आँधी सिर पर है। वह मुझे उड़ा रही है। देखती हूँ, उसका उतार भी निकट है। तब स्थिरता है। इस यौवन के बाद ही बुढ़ापा है। इस रेणु का रूप, यौवन, सभी-कुछ तो मिट जानेवाला है। तुम जो अपने जीवन में आनन्द पाते हो, मुझे वह प्रायः अभूतपूर्व लगा है। यह सच है कि मेरे यौवन की पुकार के सदृश, अनिल ने भी मेरे मानस में इच्छाओं का द्वन्द्व उठा दिया है। मुझे रोमांचित किया है। लगा कि जैसे मुझे तड़पने के लिये बाध्य किया। परन्तु---वह उठ कर बैठ गई और बोली---'परन्तु आज मैं इस रहस्य का उद्घाटन करती हूँ, मैं इस सत्यता को बताती हूँ, कि जब-जब तुम भी मेरे पास आए हो, मुझ से दूर हुए हो, तो निश्चय ही, एक अकल्पित भावना, एक अपूर्व सुगन्ध तुम मेरे चारों ओर फैला गए हो। हाँ, पुजारी, मैं उस सुगन्ध से परिप्लावित हुई हूँ। मैं मदहोश हुई हूँ। मैं एक अजीब प्रकार की भावना से भरी हुई, सदा ही, तुम्हारे फिर लौट आने की प्रतीक्षा करती रही हूँ। अनिल के समक्ष मैंने कभी भी अपने को क्षुद्र नहीं समझा। परन्तु तुम जब-जब मेरे पास आए मुझे दिखाई दिए, तो तभी-तभ मैं तिनके के समान, अथवा एक बालू के कण के समान, तुम्हारे रूप में किसी विशाल समुद्र के मध्य पड़ी हुई बूँद दीख पड़ी हूँ। मैं निश्चय ही, तुम्हारे समक्ष अपने को क्षुद्र मानती रही हूँ। जनता में तुम्हारे प्रति जो श्रद्धा है, उसका एक भाग भी, क्या मैं इस जीवन में प्राप्त कर सकती हूँ ?' इतना कहते हुए रेणु रुक गई। वह जलते हुए उस गुलाबी विद्युत-लैम्प की ओर देखने लगी। उसी ओर देखते हुए वह फिर बोली--'मेरा यह पुराना नौकर बाबा कि जिसने मेरा पालन-पोषण भी किया, एक बार नहीं, हजारों बार कह चुका है। मुझे बता चुका है कि पुजारी तो मनुष्यों में हीरा है। बाबा पढ़ा-लिखा नहीं, परन्तु समझता है। वह

कह चुका है कि जिस भावना को, मानव के जिस दर्द को पुजारी अपने हृदय में लिये फिरता है, उस दर्द से पागल हुआ दीखता है, वह क्या किसी और के पास है? पुजारी जनता के--इन्सान के--दर्द से तड़प रहा है। और इन्सान का गुलाम है। उसके पेट पर इन्सानों द्वारा प्रहार किया गया है। कहते हुए, रेणु ने पुजारी की ओर देखा। उसका स्वर रुक गया। लगा कि उसको कुछ हो गया। छाती का द्वन्द्व स्वर में आकर समाविष्ट हो गया। अपने मन की उस अवस्था में ही, कदाचित् रेणु ने यह नहीं देखा कि उसकी बात सुनने के साथ ही, पुजारी रो पड़ा है। उसकी आँखों में सागर का खारी जल उतर आया है। अतएव, रेणु ने अपनी बात फिर कही। वह बरबस ही, अपने उद्वेग को आँखों के आँसुओं में लेकर बोली--'तो पुजारी, ऐ मेरे दिल के मालिक, आज इतना और सुन लो, अगर मैं दुलहन बन कर किसी और घर जाती, तो सच, अधिक दिन जीवित न रह पाती, तुम्हारी वाणी में ही अपने को खोया हुआ पाती। मैं तुम्हारे आँसुओं के साथ.........'

एकाएक पुजारी ने फूट कर रोते हुए कहा--'रेणु।'

रेणु कटी हुई डाल के समान, पुजारी की छाती पर अपना मुँह पटक कर रो पड़ी--'मेरे पुजारी----!

पुजारी ने रेणु का मुँह दोनों हाथों से उठाया और अपने मुँह पर रखता हुआ, वह जैसे किसी बच्चे के समान रोता हुआ, अपने आँसुओं को रेणु के आँसुओं में सम्मिलित करता हुआ, रोते हुए बोला--'बाबा ने ठीक कहा। तुमने ठीक ही समझा, रेणु! मेरे इस जीवन में हर्ष नहीं। सुख नहीं। सन्तोष नहीं। पीड़ा है, व्यथा है, मानव की तड़प और चीख हैं। मुझे वह तड़पाती है। वह क्या मुझे चैन से बैठने देती है? और यही मैं उनसे कहता हूँ। मुझे इसी में लगे रहने दो। इसी में डूबने दो। मुझे यों ही मरने दो! मेरा यही नशा है। यही शराब है। मेरी यही नारी है। यही जीवन का लक्ष......'

किन्तु दिखता यह था, कि उन दोनों के आँसू, उन दोनों की पीड़ा, उन दोनों के मन का उद्वेग, जीवन के उन क्षणों में सचमुच ही, समान रूप से,--एक रूप से--एकात्मीयता के भाव से भरपूर हुआ, उन आँसुओं में भरा हुआ चीख रहा था, वह उन दोनों को उस शान्त रात्रि में, उस एकांत कमरे में, एक ही बिस्तर पर पड़े हुए और दोनों को आग का पतंगा बनाए हुए भी, यह कहने के लिये ऐसा उद्बोधन पाने के लिये, बाध्य कर रहा था कि यही है जीवन, यही है, इस जीवन की पुकार और टेक.........

पुजारी के समान, स्वयं रेणु ने रोते हुए, अविकल रूप से आँसू बहाते हुए कहा--'तुम मुझे भी वही पाने दो, पुजारी। उसी अपने पथ पर जाने दो। मैं

तुम्हारा साथ न दे सकूँगी, तो पीछे-पीछे चलने दो ! हमारा यहाँ विरह है। यहाँ मिलन ! हम एक-दूसरे के रहें, एक-दूसरे को समझते रहें, यह भी कम नहीं है, पुजारी ! तुमने कहा था, मुझे एक बार नहीं, अनेक बार सुनाया था कि जीवन तो आता और जाता है। यह चला ही जाता है तो इस जीवन में यही देखने दो। मैं तुम्हारे निकट पड़ी हुई, तुम्हारी गोद का आश्रय पाई हुई, आज भी अपने भगवान् को साक्षी करके कहती हूँ, मैं तुम्हारे रास्ते में पत्थर नहीं बनूँगी। मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी रहूँगी। मैं अपने पुजारी की,—अपने देवता की.........' और वह मानो निढाल बन गई, मर्माहत हो गई, अपनी उन भरी हुई तथा बहती हुई आँखों को पुजारी की बहती हुई आँखों पर उँडेल कर, उन्हीं पर मुँह ढाल कर, उस पुजारी को अपनी दोनों बाहुओं में भींच कर बोली—'तुम मेरे प्राण......मेरे......'

और तभी, इसी प्रकार, मानो उसी उद्वेग के साथ, उसी लगन और चेतना के साथ, पुजारी ने भी अपनी दोनों बाहें पसार दीं। रेणु उन बाहों में समा गई ! रोते हुए, उसने भी अपनी बात कही 'मेरी रेणु...मेरी रानी...'

जीवन के इस मधुर क्षण में यह कैसा उद्वेग था कि दोनों रो रहे थे ! दोनों की आँखों के आँसू बह रहे थे और दोनों के मन एक ही संकल्प में भरे हुए, जैसे आत्मा के विमान पर बैठे हुए, जाने किस लोक की ओर उड़ गए थे...... वे दोनों........

× × ×

प्रातः के समय घूमकर लौटने पर, शहर की ओर चलते हुए रेणु ने वहीं रास्ते में निश्चय किया कि वह अब मसूरी नहीं रहेगी, वह आज ही गाँव के लिये चल देगी। किन्तु होटल पहुँचते-पहुँचते दोनों थक गए थे। रात के जागरण से भी शिथिल पड़ गए थे। देखा, पुजारी बिस्तर पर जाकर पड़ गया और सो गया। इस प्रकार वह दोनों सो गए। दिन कट गया। किन्तु जब शाम आई, तो पुजारी के मन में अपने-आप ही कुछ आ-जा रहा था। रेणु चुप थी। वह जब से सोकर उठी, तभी से, जैसे पहिले से विपरीत हो, कुछ और बन गई। वह पुजारी के सामने भी अधिक विनम्र दिखाई देती थी लेकिन पुजारी के पास और कुछ नहीं था। वह केवल अपनी बीती हुई बात को लिये बैठा था और उसी को लक्ष्य कर बार-बार कहता था, 'मैं फिर आ गया। मैं जिस रेणु से दूर होने गया था, उसी के पास फिर लौटकर आ गया...'

दिन बीत गया। रात भी आ गई। किन्तु पुजारी और रेणु में अन्य दिनों की तरह न किसी विषय पर तर्कपूर्ण बात चली, न चलाई गई। पुजारी दिन भर पढ़ता रहा और लिखता रहा।

जब रात हुई, तो बाबा ने रेणु के पास आकर कहा––'बिटिया रानी ! आज तुम कहीं भी नहीं गईं ? दिन भर यहीं रहीं ?'

रेणु ने कहा––'कहाँ जाती बाबा, कल गाँव जाऊँगी ।'

बाबा ने कहा––'यहाँ अभी तो आई हो, बिटिया ! दिन ही कितने हुए ?'

यह सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा ।

अपने बिस्तर पर पड़ा हुआ पुजारी भी रेणु की बात सुन चुका था । बाबा ने उसकी ओर देखकर कहा––'क्यों पुजारी ! कल ही चलने का विचार है, क्या ? कुछ और नहीं रहोगे ?'

पुजारी चुप था । वह बात सुनकर केवल मुसकरा दिया था । वह तब एक बार बाबा की ओर देखकर फिर अखबार की ओर देखने लगा ।

बाबा ने फिर कहा––'यहाँ आए और न आए एक से रहे । न कुछ देख पाए, न घूम पाए ।'

यह सुनकर पुजारी फिर बाबा की ओर देखने लगा ।

अपनी बात कहने के बाद ही, बाबा दूसरी ओर चला गया । उसके जाने के बाद ही पुजारी ने रेणु की ओर देखा । प्रातःकाल ही रास्ते में बाबा ने उससे कहा था कि 'बिटिया ने उस दिन अनिल बाबू को फटकार दिया, वह भी अच्छा नहीं किया । वैसे अब दीखता है कि उससे सदा के लिये अपना सम्बन्ध तोड़ लिया ।'

इस बात को जब सुना, तो पुजारी को यह अच्छा नहीं लगा था । उसने उसी समय चाहा था कि रेणु से कहे, तुमने यह अच्छा नहीं किया । तुमने विवेक-रहित काम किया । तुमने व्यर्थ ही, और निरपराध ही अनिल बाबू का तिरस्कार कर दिया ।

किन्तु जिस बात को वह दो दिन से अपने मन में लिये रहा, उसे वह नहीं कह सका । वह सो गया । जब सोकर उठा, तो नित्य की तरह वह अपने सभी कामों से निवट कर कहीं जाने की तैयारी में लग गया । उसने अपनी किताबों को झोले में रख लिया । अपने बिस्तरे को बाँध लिया ।

रेणु सो रही थी । वह अभी नहीं जागी थी । जब पुजारी तैयार हो गया, तो उसने रेणु को जगाया । उसके जागने पर उसने कहा––'तुम अभी सो रही हो, उठो । सवेरा हो गया ।'

बात सुनने के साथ, रेणु ने जो पुजारी का बिस्तर बँधा देखा, तो उसने चकित होकर पूछा––'यह क्या है ? यह बिस्तर कैसे बँधा है ?'

'यही बताने के लिये तो तुम्हें जगाया है'––पुजारी ने कहा––'मैं जा रहा हूँ । मैं विशेष काम से अन्यत्र जा रहा हूँ ।'

'गाँव नहीं चलोगे ?'

'ना, रेणु ! मैं गाँव न जा सकूँगा। मैं दूसरी ओर जाऊँगा।'

यह सुनने के साथ रेणु उठ गई और बाहर चली गई।

जब वह मुँह-हाथ धोकर वापिस आई, तो उसे देखते ही पुजारी उठ खड़ा हुआ। वह जाने के लिये प्रस्तुत हो गया।

उसी समय कमरे में आए, बाबा की ओर देखकर रेणु ने कहा—'यह जा रहे हैं बाबा, कहीं अन्यत्र जा रहे हैं।'

सुनते ही बाबा ने पूछा—'पुजारी कहाँ ...... ?'

पुजारी बाहर की ओर देख रहा था। बात सुनकर उसने बाबा की ओर देखा।

बाबा ने फिर याचना-भरे स्वर में कहा—'तुम गाँव चलो पुजारी ! और कहीं नहीं।'

'यह कैसे होगा, बाबा ? मुझे जाना है।'

'आओगे, कब ?'

'यह भी ठीक नहीं। कोई निश्चय नहीं।'

'ओह, तुम यह भी सोचते हो ! अब तुम यह भी करना चाहते हो !' अधीर भाव में बाबा ने कहा—'तुम हृदय लिये हो, पुजारी ! कुछ सोचो—समझो। तुम जिन के पास उठे—बैठे हो। उनकी ओर भी देखो।'

पुजारी ने अपना बिस्तर उठा कर बगल में दबा लिया और झोला हाथ में लेकर वह रेणु की ओर देखकर बोला—'देवी ! बाबा कुछ और सोचता है। शायद समझता है कि पुजारी पत्थर है। यह हृदयहीन है। शायद यह हो। किन्तु सच यह है, मैं रात जहाँ जाना चाहता था, तब न जा सका था। अब जाऊँगा। तुम विश्वास करो, मैं अवश्य ही आऊँगा। एक-न-एक दिन जरूर मैं तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो जाऊँगा। मुझे याद है कि उस दिन तुमने एक दूसरी नारी के सम्मुख मुझे अपना पति स्वीकार किया। निश्चय ही, अब मुझे इसकी रक्षा करनी होगी।'

उस समय बाबा चला गया। पुजारी की बात सुनकर रेणु ने उसकी ओर देखा, उसने कहना चाहकर भी कुछ न कहा।

पुजारी ने फिर कहा—'मैं उस दिन जाकर भी तुम्हें फिर मिल गया। तुमने मुझे फिर खोज लिया, यह अच्छा हुआ। अन्यथा, हम दोनों के बीच में कोई भ्रम पड़ा रहता। जब मैं तुम्हारे इतने प्रयत्न और रातभर के परिश्रम को देखकर भी फिर जाने को उद्यत हुआ हूँ, तो चाहता हूँ, तुम एकमन होकर मेरी बात सुनो। तुम सत्य मानो कि मैं इस ब्रह्म मुहूर्त में निरी प्रसन्नता से भरा, तुमसे विदा ले रहा हूँ।

तुममें जो इस पुजारी के लिए मोह व्याप्त हो गया है, मैं इसी पर आश्रित हो, तुमसे कह चला हूँ कि तुम हँस कर, मुझे बिदा दो, और तुम स्वयं ही अपनी दिशा का निर्माण करो। तुमने जो अनिल से कह दिया मैं चाह कर भी, उस पर कुछ नहीं कहूँगा। किन्तु अपने जीवन में, तुम नित्य ही, जिस सत्य से चाह कर भी आँख नहीं फेर सकी हो, और उसके प्रति आकर्षित रही हो,—उसी को आधार बनाकर मैं चाहूँगा कि तुम अब अपना पथ चुनो, तुम अपनी दिशा की ओर देखो। इस पुजारी के अन्दर तुम सदा के लिये व्याप्त हो गई हो तो यह चाहता है कि इस निधि को सँजोए। दुरुपयोग करने का साहस न करे। इसी से, इसे यह आवश्यक हुआ है कि यह तुमसे दूर हो जाय। यह कहीं अन्यत्र जाकर तुम्हारी आवश्यकता को परख और अनुभव कर पाए।'

रेणु ने कहा—'तुम्हारे पास कुछ नहीं है। जेब खाली है।'

'सो मैं जानता हूँ, जिस दिन भी मुझे चाह होगी, वह तुमसे पुर जायगी।'

'अब भी तो चाहिए।'

'रेणु अब कुछ नहीं चाहिए। हाँ, कुछ नहीं।'

यह सुनने के बाद ही रेणु नीचे को झुक गई। वह अपूर्व श्रद्धा के साथ पुजारी के पैरों में सिर रख कर बोली—'अब मैं क्या कहूँ? तुम मुझे भूल नहीं जाओगे, मैं केवल इतनी आशा रखूँगी। मैं इसे संजोती रहूंगी। नहीं, मैं अब नहीं चाहूँगी कि तुम्हें रोकूँ, तुम्हें रुकने के लिये कहूँ। मैं तुम्हारे पथ का काँटा नहीं बनूँगी। वैसे मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, इस सत्य से आज क्या, मैं कभी भी मुँह नहीं मोड़ सकूँगी। पत्नी पति की आज्ञाकारिणी है, उसके पथ की शोभा,—मैं इसी एक अनुभूति पर अपना जीवन विसर्जित कर दूँगी।'

पुजारी ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'पुजारी तुम्हें सदा याद करेगा, रेणु! यह अपने जीवन की सारी शक्ति लगा कर, तुम्हारी इस कामना की रक्षा करेगा।'

उसने रेणु को ऊपर उठा लिया और द्वार की ओर देखकर कहा—'मैं जहाँ भी जाऊँगा, तुम्हें पत्र दूँगा।' वह मुसकराया और कमरे के बाहर को गया। द्वार के बाहर बाबा खड़ा था। उसे देखकर पुजारी ने कहा 'अच्छा, तुम भी आज्ञा दो, बाबा! मैं अब जाऊँगा।'

'तुम जा रहे हो पुजारी।' नितान्त दीनता के भाव में बाबा ने कहा—'अब बिटिया रोएगी। अब जाने कैसे-कैसे अपने दिन काटेगी। तुमने सब कुछ देखकर भी कुछ नहीं देखा। न तुमने देखना चाहा।'

पुजारी ने शीघ्रता से कहा—'मैंने कह दिया है, मैंने रेणु को समझा दिया है, बाबा अच्छा राम-राम !'

बाबा ने काँपते हुए स्वर में कहा—'राम-राम !'

पुजारी चला गया। वह दूर तक जाता हुआ बाबा और रेणु को दीखता रहा। जब वह अपने पथ पर अदृश्य हो गया, तो अपना मुँह गिराकर बाबा ने उदासीनता-भरे स्वर में रेणु को सुनाकर कहा—'पुजारी गया। जाने कहाँ गया। निश्चय ही यह किसी भारी सेवा और जन-कल्याण के हेतु ही हममें दीखने वाले पथ का पथिक बनने गया। वह आने के लिये कह गया है। वह......वह......'

सुनकर रेणु ने कुछ नहीं कहा। उसने अपनी उन सूखी और उदासीन आँख से सामने के नीले आसमान की ओर देख, अपना मुँह गिरा लिया और उसके बाद ही टप-टप आँखों से आँसुओं को बहाना आरम्भ कर दिया।

पुजारी चला गया। देर हुई कि वह एक पहाड़ को छोड़ कर दूसरे पर चढ़ गया। इतने बीच में ही, बाबा के मन में कई बार आया कि बिटिया से पूछे कि अब से क्या करना है। क्या गाँव चलना है ? परन्तु रेणु को अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ी देख, उसका साहस नहीं हुआ। और, पुजारी गया तो लगा कि जैसे वह कमरा ही सूना बन गया है। क्योंकि वह था तो कमरे में बातों का प्रसंग चल रहा था। शोर होता था। तभी एक बार बाबा ने रेणु के पास आकर पूछा, आज क्या खाना बनेगा, बिटिया ?'

रेणु ने बात सुनी और बाबा की ओर देखा। जैसे उसने कह देना चाहा कि अब क्या खाना बनेगा, पुजारी तो गया ! खाना तो उसके लिये बनता था। उसकी रुचि को देख कर बनवाया जाता था। परन्तु उसने बाबा से इतना नहीं कहा। उदास मन से, तथा उपेक्षा भाव में रेणु ने कह दिया—'कुछ बनवा लो।' जो बनवा लोगे सो ठीक है।

किन्तु बाबा ने कहा—'पुजारी था, तो तुम्हें भी रसोई का ध्यान तो रखना पड़ता था। अपने लिये न सही, पुजारी का ध्यान तो रखना पड़ता था, तब तो तुम्हें हाथ से बनाते भी अच्छा लगता था।' कहते हुए बाबा चला गया। वह रामदीन के पास जा बैठा। लेकिन अपने कमरे में अकेली रह गई रेणु के सामने बात आई, तो अब क्या करना होगा ? उसका मन अभी गाँव जाने के लिये प्रस्तुत नहीं था। मंसूरी में रहने भी अच्छा नहीं लगता था। परन्तु जिस पहाड़ पर चढ़ कर पुजारी गया, वह दूर तक जाता हुआ दिखाई देता रहा, तो रेणु के मन में बात थी कि पुजारी इन्हीं पहाड़ों में रहेगा। शायद अकेला रहेगा। इस पहाड़ी क्षेत्र में जन-सेवा का कार्य करेगा। एक दिन पुजारी ने अपना यह अभिमत भी प्रकट किया था। उसने रेणु से

कहा था—'यह पहाड़ी क्षेत्र नितान्त सरल और साफ है। यहाँ का व्यक्ति जितना निर्धन और असहाय है, हृदय से उतना ही उदार है। वह भावनामय है।'

उसी समय, रेणु को याद आया कि उसके बक्स में पुजारी की लिखी एक किताब है। उसे पुजारी नहीं ले गया है। अतएव वह उठी और बक्स में से उस कागजों के बड़े बण्डल को निकाल लाई। पलंग पर पड़कर वह उसे उलट-पुलट कर देखने लगी। उसे यह देखकर भी अचरज हुआ कि वह किताब स्वयं रेणु को ही समर्पित की गई थी। समर्पण की उस भाषा में पुजारी ने यह बात लिखी थी कि किताब का विषय, भावना और प्रेरणा का स्रोत उसे रेणु द्वारा ही मिला है। रेणु किताब के आरम्भ पर टिक गई और पढ़ने लगी। वह पढ़ती गई। उसी बीच में बाबा चाय बना कर रख गया। रेणु ने उसके एक-दो घूँट भरे और किताब के पढ़ने में लगी रही। दोपहर होते होते वह किताब का अधिकांश भाग पढ़ गई। इस बीच में कई बार उसकी आँखों में पानी आया, वह गालों पर प्रवाहित हुआ और पोंछ दिया गया। लेकिन जब बाबा भोजन लेकर आया, तो उसने किताब को अपने सिरहाने रख कर, खाने के लिये प्रस्तुत होते हुए, बाबा से कहा—'यह किताब पुजारी ने लिखी है। मेरी और अपनी कथा लिखी है। इस किताब में मुझे कितनी बड़ी बना दिया है कि बस !'

बाबा ने कहा—'बिटिया रानी, पुजारी गया तो है, पर क्या उसका मन तुम से दूर हो गया है ? न, वह मन तो यहीं छोड़ गया है।'

रेणु ने कहा—'मैं इस बात को जानती हूँ, बाबा ! मेरे प्रति पुजारी के अन्तर में क्या डोल रहा है, उसे भी मैं पहचानती हूँ। मैं पुजारी की हर एक गति-विधि को समझती हूँ।'

बाबा ने कहा—'और फिर भी पुजारी चला गया। यों वह अपना मुँह मोड़ गया।'

सुनकर, रेणु के होठों पर मुसकराहट आई—'बाबा, पुजारी जल्दी ही लौट आएँगे। वह जब मेरे पास बैठेंगे, तो बैठे रहेंगे। फिर गाँव में टिकेंगे।' उसी समय रेणु ने कहा—'पिछली रात में तुम तो सोते रहे। पर मैं और पुजारी क्या सो पाए थे ? हम दोनों रातभर हँसे थे और रोए थे। पिछली रात के क्षण हमारे लिये अपूर्व और सुखदायी थे। उन में नया अध्ययन था, नई सीख थी। पुजारी ने रात मुझे जो प्रेरणा दी, वह भी अभूतपूर्व थी। मैं रात ही समझ गई थी कि पुजारी जल्दी ही जायेंगे। कहीं भी चले जायेंगे।' कहते हुए रेणु ने साँस भरी—'और उनके लिये यही ठीक था, सुखकर था। बाबा, पुजारी को जिस बात में सुख मिले, शांति मिले, मेरे लिये अब वही विषय ठीक रहेगा। मैं उसकी पत्नी हूँ ना,—वे मेरे पति—तो पत्नी का कर्तव्य ही यह है कि पति का कहना माने, पति के निर्देशित किये पथ पर चले। उन्हीं की

अनुगामिनी बने ।' कहते हुए उसने मुँह में गस्सा लिया और तभी गिलास से पानी का घूँट भर कर बोली—'बाबा, मैं खा न सकूँगी । इच्छा नहीं है । अब मैं बस सो जाऊँगी ।'

बाबा ने कहा—'मैं जानता हूँ, तुम खा न सकोगी । पर खाओ, बिटिया ! थोड़ा तो खाओ । देखो, कल तुम्हें बुखार रहा । आज भी चाय के सिवा———'

उसी समय, उद्वेगपूर्ण स्वर में रेणु ने कहा—'बाबा, जानते तो हो तुम, पुजारी के बगैर मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता । और पुजारी को भय है कि कहीं मैं उसकी साधना को भंग न कर दूँ । उसे पथ-भ्रष्ट न कर दूँ । इस किताब में यही लिखा है । मैंने भी पुजारी के मन की बात को समझा है । इसलिये तो अब मैंने भी निश्चय किया है कि पुजारी की इच्छा सुनूँगी । वही मानूँगी । मैं अब इसी प्रकार जीवन का सन्तोष प्राप्त करने की चेष्टा करूँगी । मैं अभी और यहाँ पर रहूँगी । कल उस गाँव में भी जाऊँगी कि जहाँ हम सब गए थे और पुजारी को पा सके थे । अभी गाँव लौटने में शायद एक मास लगेगा । आज नहीं तो कल, मुझे यहाँ रह कर निश्चित रूप से शांति का आभास मिलेगा । यह खाने का थाल ले जाओ, रख दो । तुम और रामदीन खा लो ।'

बाबा ने थाल उठा लिया । वह लौट गया । रेणु फिर तकिये पर सिर रख कर पड़ गई । किताब पढ़ने लगी । किताब के उसी भाग में, एक पृष्ठ पर पुजारी कह रहा था, वह अपने पात्रों के कल्पित नाम रख कर बता रहा था' 'मालती जानती थी कि हरीश उसी के पास अपना मन छोड़ता है । उसी को अपनी मानता है । परन्तु मालती की परिस्थिति तो और थी । वह जमींदार की लड़की, बड़े घर की स्वामिनी, तो उसके निकट में आया महेश बाबू, भला इसे कब स्वीकार करता ! उसने मालती के पैसे से ही, उसे नई दुनिया का, वैभवपूर्ण जीवन का रस चखने के लिये उद्बोधित किया··· उसने विमला से कहा, यही है, जीवन······जीवन-भोग······जीवन का परम और श्रेष्ठ आनन्द ! लेकिन इसके विपरीत हरीश के पास थे आँसू, पीड़ा और जीवन की यातनाओं का द्वन्द्व ! बरबस, वह उसी का विमला के समक्ष वर्णन करता । वह कदाचित् अपने समान विमला को भी योग का पाठ पढ़ने के लिये कहता । किन्तु जब उसने देखा कि विमला उस पाठ को पढ़ना नहीं चाहती, वह महेश बाबू द्वारा बताई हुई दुनियाँ की ओर देखती है, तो हरीश सोचता, हाय ! हाय ! उसने अपने इस जीवन में एक सुन्दर खिलता हुआ खुशबूदार फूल देखा कि वह यों तोड़कर सूखा जा रहा है और थोड़ी देर बाद ही, जीवन की उठती हुई बदबू में फेंक दिया जाने वाला है···कदाचित् इसलिये, चेष्टा करके भी, विमला से दूर रहने का प्रयत्न करने पर भी, हरीश दूर न रह पाता । वह यदा-कदा विमला के पास जा पहुँचा । कभी दरिद्रों की सहायता के लिये विमला

से याचना करता। परन्तु कैसी अजीब बात थी कि विमला हरीश की गति-विधि के प्रति उपेक्षित बनकर भी और उससे दूर रह कर भी, जब हरीश को अपने पास आया हुआ देखती, तो वह तुरन्त विश्व भर की ओर से आँख मूँद कर, मानो अपने को सभी ओर से समेट कर, उस हरीश की सीमा में विलुप्त कर देती......उसी में खो जाने का प्रयत्न करती! अजीब बात थी कि महेश बाबू जितना प्रयत्न करके विमला को अपने अनुरूप बना पाते, उसके मन पर अधिकार बैठा पाते, तो हरीश के पहुँचने पर, वह काई पर चलने के समान फिसल जाते। वह तब खिसियाते। हरीश के पतन की भी कल्पना करते। शायद उसका अन्त चाहते।'

व्यथा के उस प्रवाह में बहते-बहते, जैसे पुजारी किनारे की तरफ जा रहा था। वह इसी प्रयत्न में लीन था कि वह कथा समाप्त करे और उसके मन की जो वास्तविकता है, इन्सान की जो व्यावहारिकता है, उसे कथा के अन्त पर चित्रित करे। परन्तु कैसी अजीब बात थी, कितनी रोचक और कितनी कठोर; कि हरीश नाम का वह कथा का नायक, जब-जब भी कथा की नायिका विमलाकुमारी के पास पहुचता, तो उसे यह समझाने का प्रयत्न करता कि मेरे पास भी प्रेम है, अर्चना है, भक्ति है। विमला! मैं तुम्हारा हूँ और मानो इतना सुन पाकर ही, वह विमला अपने में पूर्णता पाती. अपना जीवन सफल हुआ देखती। वह एकान्त मन को समझती कि हाँ, उसकी यही सार्थकता है। उसके जीवन का यही विनोद है। हरीश अपने मार्ग पर वह चले, वह स्वतन्त्र रहे, तो उसे यह भी भला लगता है। वह उसका बना रहे, यह भी जिन्दगी के लिये एक सन्तोषप्रद कल्पना है।

इसी स्थल पर लेखक ने प्रश्न किया—'क्या यह भी सत्य है? व्यावहारिक है? निभने वाला है? जीवन में ऐसे आदर्शों की भी साख है?' और उस लेखक ने विमला के मुँह से कहला दिया—'हाँ, क्यों नहीं? क्यों नहीं? हम दोनों इसी आदर्श पर चलेंगे! ऐसे ही जिएँगे! ऐसे ही मरेंगे.........'

कल्पना-लोक का वह चिर-पथिक, वह जीवन की पाठशाला का विद्यार्थी हरीश, कदाचित् ऐसा विश्वास अपने में नहीं पाता। रेणु के मन की ऐसी स्थिति को पाकर भी, इतना आश्वासन लेकर भी, वह जैसे नारी-लोक के एक सुहावने, अनुभूति-पूर्ण और यौवन से भरे जीवन की हत्या हुई पाता। निदान, वह विमला को उद्बोधन प्रदान करता, ए विमला रानी! तुम महेश बाबू को ग्रहण करो! उन्हें साथी चुन लो। महेश बाबू के पास उमंग है। जीवन को भोगने की इच्छा है। और मैं तो हूँ ही एक वीतरागी के सदृश, जीवन की दीनता और अयाचित भावना से बोझिल हुआ.....हाँ, मेरा-तुम्हारा साथ क्या निभ सकेगा? मेरी ओर क्या तुम्हें ऐसा सुहाग मिल सकेगा। भला मेरे पास सरसता कहाँ? जीवन को भोगने की कल्पना कहाँ? मैं

दीनों के दुःखों की कल्पना करता हूँ······स्वयं याचक बना हूँ······मैं स्वयं ही जीवन-आँगन के उजाड़ स्थल पर खड़ा हूँ······' इतना कहते हुए, हरीश की आँखें भर आईं और उसने विमला को सम्बोधित करके फिर कहा—'मैं इस कल्पना को भी नितान्त घिनौनी, बेहूदी और जड़ मानता हूँ कि महेश बाबू का प्रतिस्पर्धी बनूँ। न, तुम जहाँ रहोगी, मैं विश्वास रखूँगा, तुम मुझे न भूलोगी। इस हरीश नाम के व्यक्ति को भी याद रखोगी! और इस सम्बल को पाकर, तुम्हारे मन की इतनी सी भावना को ग्रहण करके ही, मैं अनुभव करूँगा कि मैं एक अकेला नहीं हूँ। मेरा भी एक साथी है। विमला का मन मेरे साथ है। वह मुझे बल देता है। प्रेरणा प्रदान करता है। वह मेरे कँटीले तथा पथरीलेपन को सुगम बनाने में मदद देता है। ऐसा आश्वासन ही, मेरे जीवन-लोक के अन्धकार में प्रकाश प्रदान करता है, विमला रानी! मुझे आशीष दो, मैं जनता की करुणा का पुजारी बनूँ! मैं अपने-आप को जनता-जनार्दन की झोली में डाल दूँ·········मैं उस करुणा के समुद्र में अपने-आपको डुबो दूँ। अपना अस्तित्व उसी में समाविष्ट कर दूँ······'

रेणु ने देखा कि कागज के उस स्थल पर कुछ धब्बे पड़े हैं। जैसे पुजारी की आँखों के आँसू टपक पड़े हैं और वह काली स्याही को फैला देने में समर्थ हो गए हैं। लेकिन उस समय तो स्वयं रेणु की आँखें भी भरी थीं। वे स्वतः ही उद्वेगपूर्ण थीं। उस स्थल पर, कागज के उस भाग पर वे भी टपक पड़ीं। शब्द मिट गए। आँसू बह गए।

तभी बाबा ने आकर पूछा—'बिटिया रानी, चाय लाऊँ?'

सुनकर, रेणु ने अपनी भरी हुई और बहती हुई आँखें बाबा की ओर उठा दीं।

बाबा ने कहा—'रो रही हो!'

'हाँ, बाबा! मैं रो रही हूँ।' उसने कहा—'मैं भावना के वेग में बह रही हूँ। पुजारी के साथ बह रही हूँ और रो रही हूँ।'

बाबा ने कहा—'पुजारी तो बहुत जल्दी रो पड़ता है। लगता है कि जरा-सी ठेस पर उसका मन तड़प जाता है। वह जवान बनकर भी, अभी बच्चा है।'

रेणु ने कहा—'और मैं! अभी मैं भी बच्ची हूँ, बाबा! पुजारी के समान ही बनी हूँ। अपने दिल के समान, उसने मैं भी वैसी बना दी हूँ।'

बाबा बोला—'बिटिया रानी, औरत की जात का दिल वैसे ही छोटा होता है। मुलायम होता है। करुणापूर्ण होता है। तुम्हें यही शोभता है।'

रेणु ने कहा—'न, बाबा! यह औरत-मर्द के दिल की बात नहीं, संगत की बात है। पुजारी का और मेरा साथ बचपन से हुआ है न, तो मैं उस पर अपना

प्रभाव नहीं डाल सकी, परन्तु उसका मुझ पर पड़ा है। पुजारी ने मुझे अपनी चेली बना लिया है।'

बाबा हँस दिया—'न जाने किसने किसको अपनी ओर किया है।' वह बोला—'बिटिया, पुजारी को तुमने भी अपनी मुट्ठी में कर लिया है। वह गया तो है, पर क्या देर तक कहीं रहने वाला है? देखना, वह तो जल्दी ही लौट आने वाला है। वह ऐसा पथिक नहीं जो न लौटे, मुझे तो लगता है, वह यहीं आकर मिल जाने वाला है।' कहते हुए बाबा लौट गया। वह फिर चाय लेकर आया। कुछ फल मिठाई भी लाया। उस सामान को छोटी मेज पर लाकर रख दिया। रेणु उठ कर बैठ गई। किताब रख दी। वह चाय पीने लगी। बाबा की ओर देखकर, वह उस किताब पर संकेत करती हुई बोली—'यहाँ से लौटते ही, मुझे यह किताब छपानी है। जल्दी ही यह छपाकर तैयार करनी है। यह पुजारी ने समाप्त तो कर दी है, मुझे भय है, उसके हाथ में आई, तो आगे भी और लिखी जा सकती है। और मैं सोचती हूँ, जो बात थी, पुजारी के मन की बात थी, वह सभी-की-सब इस किताब में आ गई है। मेरी कहानी भी आ गई है।'

बाबा ने कहा—'तो क्या लिखा है? पुजारी ने क्या कहा है?'

रेणु हँस दी—'अपने मन की बात! रेणु की बात। अनिल की बात। कहीं-कहीं तुम्हारा भी उल्लेख किया है। तुम्हें स्वामिभक्त और विश्वासी बताया है।'

चंचल बनकर, बाबा ने कहा—'न, आखिरी बात।'

खा-पीकर, रेणु फिर तकिए के सहारे पड़ गई। बोली—'आखिरी बात।' वह जैसे इठलाई, प्रसन्न बनी और गद्‌गद हुए कण्ठ से बोली—'रेणु की जीत······ पुजारी के मन की जीत। हाँ, बाबा। दोनों की जीत।'

बाबा ने कहा—'तो फिर हार किसकी?'

'अनिल की। किताब में लिखे महेश बाबू की।'

आँखों में हर्ष लेकर, बाबा ने कहा—'तो यह बात तो मैं बता देता, बिटिया रानी! मैं देर से मानता आया हूँ, कह भी चुका हूँ, अनिल बाबू तो मेहमान हैं, कुछ दिन रहने हैं। मैंने तो सुना है, प्रीत में भगवान् होते हैं······भक्ति के पैर बड़े होते हैं।'

उसी समय अँगड़ाई लेते हुए, मन में प्रसन्नता लिये, रेणु ने कहा—'बक्स से मेरी साड़ी निकाल दो। ब्लाउज़ भी। कहीं घूमने चलो। आज मौसम अच्छा है। सुहावना है।'

बाबा ने कहा—'यही मैं कहता था। पर डरता था।'

रेणु ने हँसते हुए पलंग छोड़ दिया। वह शीशे के समक्ष जा खड़ी हुई

और बालों में तेल डाल कर, कंघा करती हुई बोली—'सुनते हो बाबा, किताब का नाम क्या है ?'

बाबा ने कहा—'क्या ?'

'पुजारी ।' वह बोली—'पुजारी ने लिखा है, वह अन्त में गाँव में पहुँच गया और विमला के (यानी मेरे) द्वार पर जाकर खड़ा हो गया ।'

हर्ष भाव में बाबा ने कहा—'वाह-वाह !'

रेणु ने कहा—'किताब में पुजारी ने स्वीकार किया है, लिखा है, भावनाओं के इस जीवन में, इस शरीर रूपी खोल में, कुछ विचारों को छोड़ भला और क्या रखा है ? विचारों का द्वन्द्व ही जीवन है । परख का नाम ही कसौटी ।'

बाबा ने कहा—'तो पुजारी परख रहा है, कसौटी पर घिस रहा है,—तुमको ।'

कंघा करते हुए, रेणु ने कहा—'हाँ, बाबा !' वह बोली—'जब पुरुष किसी नारी की माँग पर झुकता है, उसे परखता है, तो क्या सरल होता है, वह सुप्राप्य होता है ? न, वह तो अपने गुरुत्व और अहं के भारीपन को लिये, पूरा दार्शनिक बन जाता है । अपना अस्तित्व भी बड़ा स्वीकार करता है । वह घमण्डी नहीं, पर जिद्दी अवश्य बनता है ।'

बाबा ने कहा—'पर पुजारी तो ऐसा कुछ नहीं है, बिटिया रानी ! वह सरल है, साफ है ।'

रेणु ने कहा—'न, बाबा ! वह भी है । मैं जानती हूँ । समझती हूँ ।' शीशे के सामने से हटकर बोली—'पर कुछ हो, पुजारी कुछ हो, मेरी तो बात एक है,—एक प्रण—वह मेरा पति है । मेरा आराध्यदेव ।'

बाबा ने गद्गद् स्वर में कहा—'तुम जीती रहो बिटिया रानी ।'

रेणु ने कहा—'कुछ रोकर भी आनन्द आता है । मन हल्का होता है ।' उसने साड़ी बदल ली । नया ब्लाउज पहन लिया । अभी धूप थी, इसलिये चेस्टर बाबा ने ले लिया । उसने रामदीन से भोजन तैयार रखने के लिये कह दिया । दोनों चल दिये । बाजार में पहुँच गए ।

रेणु ने कहा—'बाबा, गार्डन में चलेंगे ।'

'हाँ, हाँ, वहीं चलेंगे, बिटिया चलो !' वे फिर गार्डन की ओर चल दिए । वहाँ पहुँच कर देखा कि अनेक परिवार थे । बच्चे खेल रहे थे । रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहिने हुए युवतियाँ इधर-से-उधर फिर रही थीं । उस सुहावने दृश्य को देख, बाबा ने कहा—'यही स्वर्ग है ।'

रेणु ने कहा—'और नरक ?'

'हाँ, इसी के पास नरक भी है, बिटिया रानी।'

किन्तु रेणु ने कहा—'इस स्वर्ग-नरक की बात ने हमें कुछ दिया नहीं है, बाबा। कुछ लिया है। इन्सान को भरमाया है। इस माया में ही दुःख का भण्डार भरा है। स्वार्थ और अहं अपना मुँह खोलता है।'

सुनकर, बाबा मौन रह गया।

रेणु ने कहा—'अपनी पुस्तक में इस पर भी खूब लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि नारी माँ बनती है, पत्नी बनती है, बहिन कहलाती है, पर क्या वह इसके योग्य है। वह अपना ही स्वार्थ देखती है। इन्सान को विभाजित करने, दूर-दूर करने में नारी अपना सबसे बड़ा योग प्रदान करती है। वह अपने सभी पदों को भ्रष्ट करती है। दूसरों के बच्चों को कंकड़-पत्थर के तुल्य मानती है। दूसरे के भाई को हीन समझती है। दूसरी नारी का पति उसकी दृष्टि में जैसे कायर या रहस्य-मय लगता है। उसे वह मदान्ध भेड़िया भी दिखाई देता है......मानो इन्सान के रूप में भी जानवर......'

बाबा ने सांस भरकर कहा—'बिटिया रानी, पुजारी ने सभी-कुछ देखा और अनुभव किया है। वह द्वार-द्वार भटका है। सभी प्रकार के व्यक्तियों से मिला है। उसका ज्ञान अपार है।'

रेणु ने कहा—'इन्सान की अवस्था को परखा है। शिष्य बन कर चला और गुरुत्व प्राप्त करने की स्थिति में आ गया है।'

बाबा ने आल्हादित बनकर कहा—'वह पुजारी,—वह महान्—वह जागरूक—'

और बाबा की उस भावना में कितनी श्रद्धा थी, उसका आभास पाकर रेणु को कितना सुख मिला, वह शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता......वह सच्ची और सुन्दर भावना........'

× × ×

तीन-चार दिन और रह कर रेणु ने मसूरी से अपने गाँव के लिए प्रस्थान कर दिया। गाँव में जाकर, उसने फिर अपने को बँधे-बँधाए कामों में लगा दिया। गाँव में ऐसे भी व्यक्ति थे, जिन्होंने उससे प्रश्न किया, पुजारी नहीं आया ? कहाँ गया ? वह क्यों चला गया ? तो सदा की भाँति उस समय भी रेणु ने प्रसन्न भाव में कह दिया। जो पुजारी का काम है, वह वही करने गया है, कहीं गया है।

इस प्रकार गाँव में लौटे रेणु को एक मास से ऊपर हो गया। वह प्रतीक्षा करती कि पुजारी का पत्र आयेगा, अथवा स्वयं लौट आयेगा। परन्तु न पत्र आया,

न पुजारी आया। इसी विचार को लेकर यदा-कदा बाबा पूछता—पुजारी का पत्र आया, बिटिया रानी ?'

तो बिटिया रानी हँस कर कह देती—'बाबा, पुजारी पत्र नहीं देगा ! वह स्वयं आयेगा।'

'पुजारी आयेगा ?—क्या आयेगा ? 'बाबा उत्साह मात्र में कहता। लेकिन रेणु कहती—'हाँ, क्यों नहीं आयेगा, पुजारी ! वह जरूर आयेगा। एक-न-एक दिन वह तुम्हें यहीं बैठा दिखाई देगा।'

बिटिया से ऐसी विश्वास की बात सुनकर बाबा चुप हो जाता। वह अपना मुँह लटका लेता।

किन्तु इस सबके साथ, रेणु के जीवन में नवीन परिवर्तन आरम्भ हुआ, उसे देख, कोई भी चकित होता। कोई भी उसे पागल कहता, कोई भी मूर्ख। रेणु ने शनैः-शनैः अपने कई बक्सों में भरे हुए कपड़े गरीबों को बाँट दिए। जिन साड़ियों की खरीद में कई हजार रुपये लगे थे, और समय-समय पर जिन्हें पहन कर वह सजती और रूप की परी-सी दीख पड़ती थी, वही सब अब बाँट दी गई थीं। जो नौकर वर्षों से उसके यहाँ रहते थे, वे सभी, एक-एक वर्ष का अधिक वेतन देकर पृथक् कर दिए गए थे। बस, बाबा था, और मुंशी था ! बाबा किसी प्रकार भी अपनी बिटिया से दूर न हो पाया। जब उससे भी कहा, तो वह रो पड़ा, वह रेणु के पैर पकड़ कर गिड़गिड़ाता हुआ बोला—'तुम्हारे बाबा की कोई ख़ैर नहीं है, इस घर के अतिरिक्त जिसका कोई घर नहीं है, उसे मत दूर करो, बिटिया रानी ! फलस्वरूप बाबा रहा, रहता रहा।

बात-की-बात में यह चर्चा गाँव में और आस-पास में फैल गई। जो जमींदार के घर के शुभचिन्तक थे, वह सभी आते और रेणु को समझा कर लौट जाते। वह उसे जमींदारी की आबरू रखने और ऊँच-नींच समझने की बात भी कह-सुन जाते।

गाँव में जो जमींदार का ऊँची बुर्जी का महल था और उसके साथ ही दीवानखाना था, शनैःशनैः वह सभी रेणु ने खाली करवा दिया था। महल में जो वर्षों से अमीरी का सामान जुटा आ रहा था, वह बाँट दिया गया था। जो रेणु के लिये आवश्यक था, वह सब मन्दिर के पास पुजारी की कोठरी में पहुँचा दिया गया और उस महल और दीवानखाने में अस्पताल खोल दिया गया। उसमें स्त्रियों के लिये अलग विभाग रखा गया। निर्धन और अशक्त रोगियों के ठहरने के लिए भी उसी में प्रबन्ध किया गया। लेडी डाक्टर, नर्स और कम्पाउण्डर नियत कर दिये गए।

उन दिनों रेणु अधिक व्यस्त थी। इस प्रकार धीरे-धीरे पुजारी को आए भी कई मास हो गए थे। इतने बीच में रेणु ने जाने किस दैवी प्रेरणा से प्रेरित हो, एक

नये जीवन में पदार्पण कर लिया था। उसके जीवन का एक बँधा-बँधाया कार्यक्रम बन गया कि वह प्रातः उठती और स्नान करने के बाद मन्दिर में जाती और प्रतिमा को प्रणाम करती। फिर अस्पताल जाती। वहाँ स्वयं बाहर से आए हुए और टिके हुए मरीजों को देखती, उनकी आवश्यकताएँ पूछती और उन्हें दूर कराने की आज्ञा देती। तब दोपहर होते-होते वह घर लौटती, अब बाबा भी अशक्त और पराश्रित हो चला था। इसलिये अस्पताल से लौटकर रेणु को खाना बनाना पड़ता। उसे अपने अतिरिक्त बाबा को भी खिलाना पड़ता। कभी-कभी बाबा सकुचाता, वह कुछ कहता, तो रेणु समझाती, 'जिस रेणु को तुमने पाला, गोद खिलाया, उससे क्या इतनी भी आशा नही कर पाओगे, बाबा ! यह तुम्हारी बेटी है, यह तुम्हारी गोद खिलाई है।'

यह सुनकर बाबा निरुत्तर हो जाता। तब वह जाने कितनी अगाध ममता के साथ रेणु की ओर देखता रह जाता।

खा-पीकर रेणु को फिर जमींदारी का हिसाब देखना पड़ता था। वहीं मन्दिर में मुंशी के बैठने के लिये कमरा नियत कर लिया था। वही जमींदारी का आफिस था। रेणु ने जमींदारी की आय का आधा भाग अस्पताल के नाम लिख दिया था। जो संचित कोष था, उसमें से लगभग दो लाख रुपया अस्पताल के खोलने और सामान जुटाने में व्यय हो गया था। जो शेष बचा था वह शहर के बैंक में अस्पताल के नाम जमा करा दिया गया। रेणु ने आरम्भ में ही अस्पताल को ऐसी स्थिति में बना दिया था कि यदि जमींदारी की आय उसे उपलब्ध न हो, तो वह संचित धन के सूद से सुगमतापूर्वक चलता जाय और अपना काम करता जाय।

अन्त में, जो आय बचती, वह स्कूलों आदि पर व्यय होती। जहाँ पानी का कष्ट था, रेणु ने ऐसे अनेक स्थानों पर कुएँ बनाने का प्रबन्ध करवा दिया था। उसके पास जो रिक्त समय बचता था, वह स्वयं पढ़ने और दूसरे घरों में जाकर उनकी स्त्रियों को पढ़ाने में बीतता था। स्त्रियों के रहन-सहन और बच्चों के पालन-पोषण की ओर भी उसका विशेष ध्यान था। न केवल वह बातों से बताती बल्कि कार्य रूप में दिखा कर भी वह उन्हें समझाती थी।

फलस्वरूप जो व्यक्ति उस जमींदार की बेटी और गाँव की मालकिन से दूर-दूर भागते और डरते थे वह अब निःशंक उसके पास आते और बात करते। देश में कानूनन जमींदारी का अन्त हो रहा था, परन्तु रेणु ने स्वतः ही उसका विभाजन कर दिया। जमींन किसानों को दे दी। उसके अधिकार भी दे दिये। एक बड़ा भू-भाग अपने पास रखा और स्वतः ही उस फार्म पर खेती का काम करवाने लगी। रेणु ने आमदनी रखने के लिये कई फैक्टरियाँ चालू करा दीं। काम बढ़ गया। आय भी पहिले से बढ़ गई।

एक खद्दर की धोती पहने हुए, पैरों में चप्पल डाले, वह गाँव की ज़मींदारिन रेणु बात-की-बात में उन आस-पास के बीसियों गाँवों में देवी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। जो भूखा या अपाहिज होता, वह और कहीं न जाकर सीधा उसके पास जाता और अपना कष्ट सुनाता। वहाँ यह सम्भव ही नहीं था कि कुछ सुना जाता और टाल दिया जाता। वह वहाँ अवश्य पूरा किया जाता था।

जब-कभी गाँव का चौधरी या अन्य कोई शुभचिन्तक रेणु से आकर कहता कि 'बिटिया—रेणु कुमारी, तुमने काम तो सचमुच ही बड़ा किया है। ऐसा कोई त्याग नहीं करता। पर बताओ तो, तुमने क्या ऐसे ही रहना चाहा है? अविवाहित ही? यह हमसे नहीं देखा जाता।'

तो, यह सुनकर रेणु अपना ही उत्तर देती। वह उनसे कहती—'मेरा विवाह हो गया है? वह देर से हुआ है?'

'किसके साथ? कब? पति कहाँ है?'

'जब आयेंगे तो तुम्हें दिख जायेंगे। अब जल्दी ही आयेंगे?'

'वह जाने कब आयेंगे! इतनी उमर हुई। जिसने तुम्हें यह सब सिखाया और सुझाया, दिखता है, अब वह पुजारी भी नहीं आयेगा। वह दूर गया। वह शायद इस गाँव को भूल गया।'

यह सुनकर रेणु मौन रह जाती। वह गम्भीर हो, उस विषय को दबा जाती। लेकिन जब वह अकेली और एकान्त होती, तो पुजारी के चित्र को देखकर कहती—'क्यों पुजारी, यही सत्य है! लोगों का कहना ही ठीक है क्या? तुम नहीं आओगे? मैं तो कहती हूँ, तुम आओगे, जरूर अपने वचन को निभाओगे।'

यह देख, बाबा का मन अटपटा हो उठता। वह अब भी किसी गहरी उमस से भर अपने-आपको मुरझा कर रह जाता।

रेणु की अनेक बार की अनुनय विनय पर अनिल फिर आने लगा है। वह आता है, कुछ देर बैठता है और चला जाता है। वह अब विवाहित हो गया है। एक बार अपनी पत्नी को लेकर भी वह रेणु से मिलने आया। वह रेणु को समझाता और फिर अपने पिछले जीवन में लौट जाने के लिये कहता। जिसे सुनकर रेणु हँसती और कहती मेरे जीवन का यह परमसुख है, अनिल बाबू! जो पुजारी से पाया है। यह उसी ने प्रदान किया है।'

यह सुनकर अनिल नहीं बोलता। वह तब दूसरी बातें करने लगता।

तभी एक दिन एकाएक ही, रेणु बीमार पड़ गई, वैसे ही वह काफी क्षीण और दुर्बल हो गई थी। जब वह रोग की भयंकरता में फंस गई, तो एक दिन बाबा से बोली—'बाबा, पुजारी अब भी नहीं आया। तुम्हारी बात ठीक निकली। वह नहीं

आयेगा। अब मैं और नहीं बचूँगी। मैं मर जाऊँगी। पुजारी आये तो कहना, 'निर्मोही! ऐसा भी क्या, एक बार तो आता! तू एक बार तो रेणु को अपने दर्शन दे जाता......'

इतना सुनने के साथ, बाबा रोने लगा और हिचकियाँ भरने लगा।

रेणु की बीमारी की चर्चा गाँव में और उसके आस-पास में फैल गई थी। नित्य ही सैकड़ों स्त्री-पुरुष आते और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर रेणु के जीवन के लिये प्रार्थना करते।

गाँव के चौधरी और रेणु के अपने आदमी जितने थे, उन्होंने निश्चय कर लिया कि ज़मींदार की बेटी स्वस्थ हो, तो वह यज्ञ करेंगे और मन्दिर का महोत्सव मनाएँगे।

रेणु को तो स्वस्थ होना था और वह हुई। उसने स्वयं भी महोत्सव के लिए अपनी अनुमति दे दी। उत्सव के दिन आस-पास के गाँवों से हजारों व्यक्ति आये। अपनी पत्नी सहित अनिल बाबू और उसके दिवंगत जागीरदार साहब की पत्नी भी आई। रेणु अभी पूर्ण स्वस्थ नहीं थी। वह अभी चारपाई पर पड़ी थी। किन्तु उसकी भक्त और प्रेममयी जनता मन्दिर के दर्शन करने के साथ उसे भी देखना चाहती थी। आगन्तुकों के लिये भोजन का प्रबन्ध था। परन्तु उस जनता को रेणु का दर्शन करना अभीष्ट लगता था। वह जन-समुदाय रेणु को देखे बिना अभी रुका हुआ था। उधर प्रतिमा का पूजन भी अभी सम्पन्न नहीं हुआ था। यह सुन, रेणु ने प्रतिमा के सामने जाना और पूजन करना स्वीकार कर लिया। वह अनिल बाबू और उनकी स्वामिनी के हाथ का सहारा लेकर प्रतिमा के सामने पहुँची। देखा, प्रतिमा पर सौंदर्य की छटा थी। वह जैसे मुसकरा रही थी। वह जाने कैसी अलभ्य और दर्शनीय बनी थी। रेणु को जीवन में पहली बार, उसी में पुजारी की छाया दिखाई दी। वह तब जिस भावना पर टिकी थी, वह उसके रोम-रोम में झंकृत हुई लगती थी, जैसे वह उस प्रतिमा में भी समाधिस्थ हो गई थी।

यह देखते ही रेणु ने हाथ जोड़ कर कहा—'देव, तुम्हारा पुजारी आज भी नहीं आया। उसने नहीं आना चाहा। मैं अशान्त हूँ। मैं तुम्हारी किस तरह अर्चना करूँ। तुम्हें पुजारी सजाता था, वही श्रद्धा और भक्ति के साथ तुम्हारे चरणों को पखारता था। मेरे देव·········'

उसी समय एक व्यक्ति उन हजारों आदमियों की भीड़ से निकल, प्रतिमा के सामने आया और उस हाथ बाँधे खड़ी और आँखों से आँसू बहाती हुई रेणु की ओर देखते ही बोला—'रेणु!'

'कौन, पुजारी' सुनते ही रेणु ने कहा। उसने उस ओर देखा कि सिर और

दाढ़ी के बढ़े हुए बाल, पैरों में घोंटों तक की चढ़ी हुई धूल और मिरजई पहने, सच, वह पुजारी था। जो उसकी ओर देख रहा था और मुसकरा रहा था। उस रूप में पुजारी को देखते ही, जाने कितने हर्ष से भर रेणु अवाक् रह गई। वह दीवार का सहारा पाकर खड़ी हो गई और एकटक हो पुजारी की ओर देखती-की-देखती रह गई।

तभी पुजारी ने आगे बढ़ कर अपार ममता लिये हुए स्वर में कहा—'रेणु तुम ऐसी········'

तब छूटते ही, रेणु कटी डाल के समान पुजारी की छाती से लग गई और रोती हुई बोली—'पुजारी तुम—तुम——'

'हाँ, रेणु देवी, मैंने सब सुना। तुम्हें बहुत कष्ट हुआ।' कहते हुए उसने रेणु के सिर पर हाथ रखा।

उसी समय, रेणु नीचे झुक गई और निःशङ्क भाव में पुजारी के पैरों को पकड़कर बैठ गई।

यह देख पुजारी ने उसे ऊपर उठा लिया। वह तब प्रतिमा की ओर देखते हुए बोला—'अब तुम्हें पुजारी के पैर नहीं पकड़ने होंगे, रेणु कुमारी हाथ पकड़ना होगा। तुमने सोचा था, पुजारी भूल गया। पुजारी पत्थर बन गया।' कहते हुए उसने तब प्रतिमा के और समीप जाकर उसी ओर देखते हुए रेणु से फिर कहा—'पुजारी कृतघ्न और कायर नहीं है रेणु देवी! आज यह प्रतिमा साक्षी है, जो हँस कर और मुसकराकर हमको आशीष देती है कि हम-तुम पति-पत्नी युग-युगान्तर तक एक-दूसरे के प्रति समर्पित और जागरित होते रहें। बताओ, इससे अधिक तुम्हारे जीवन-कल्याण के इस उत्सव पर मैं तुम्हें और क्या अर्पण करूँ, रेणु कुमारी! हाँ, इससे अधिक क्या?······'

उसी समय बाबा आ गया। देखते ही रेणु ने कहा—'बाबा! जाओ, जनता से कह दो, रेणु के पति आ गए। रेणु की साधना पूर्ण हुई।'

चकित हो, बाबा ने पास खड़े पुजारी को देखकर कहा—'पुजारी,—रे परमात्मा!'

पुजारी ने कहा—'हाँ, बाबा, मैं आ गया। तुम्हारे पास आ गया।' उसके मुख पर अलौकिक आनन्द छाया हुआ था।

सुनते ही, बाबा जाने कितने गहरे उल्लास से भर कर, तुरन्त बाहर लौट गया। उसने मन्दिर के द्वार पर खड़ी हुई भीड़ को लक्ष्य कर चिल्लाकर कह दिया—'भाइयो, तुम्हारा आशीष फल गया। तुम्हारे जमींदार की बेटी रेणु देवी के जीवन का साथी लौट आया। रेणु कुमारी का पति आ गया। तुम्हारा पुजारी, तुम्हारा चिर-परिचित देवता।'

यह सुनना था कि लोग हर्ष से भर गए और रेणु के साथ पुजारी को देखने के लिये उत्सुक हो उठे।

उसी समय मन्दिर के अन्दर खड़े हुए अनिल और उसकी स्वामिनी के साथ नेक अभ्यागतों ने रेणु को बधाई दी। जिसके उत्तर में रेणु के मुँह पर मुसकान के साथ लाली दौड़ गई। उस क्षण एकबारगी उसकी देह में जैसे बिजली-सी काँप उठी और वह लजा गई।

तभी बाबा ने आकर कहा—'आओ, बिटिया, बाहर आओ! तुम अपनी जनता से मिलो। पुजारी, तुम भी!'

और वह जैसे बाहर पहुँचे कि भीड़ ने हृदय से, पुजारी और रेणु की जय से आकाश को गुँजा दिया। प्रतिमा का पूजन होने लगा और घण्टे-घड़ियाल के सुरभित नाद से मन्दिर का कोना कोना झंकृत हो, आनन्द से भर उठा।

समाप्त